

ॐ संतो पर गमाऽथ  
किं वी धन्य पुस्तकं

रत्नावली-नाटिका

भोज-प्रबन्ध

नैपथीय-चरित्त सर्ग १



के बाद रजोरी की मालीगुम्फ सूची (गुप्त २६२), केजीमरार के गुप्त सिक्कों का संवत् (गुप्त २६९) तथा मादक से प्रयुक्त छद्मों के मादक स्थान-निर्देशन मद्रि (गुप्त २६८) दिये गये हैं ।

इस संस्करण की संपादन करने में मादक से केजीमरार के अर्थों और द्विती के सभी उपलब्ध दस्तावेजों में महायत्न भी है, इसलिए वह उन सब संस्करणों के विद्वान् मादकों के प्रति कृतज्ञ है ।

संपादक प्रयत्न करने पर भी मुद्रण में कुछ असुविधाएँ रह गई हैं । इनके लिये हमें भेद है । पाठकों से क्या प्रार्थना है कि उनका आरम्भ करने से पूर्व अन्त में दिये गये धुद्धि-यत्र से देखकर पाठ शुद्ध कर लेन की कृपा करें ।

यदि यह संस्करण अपने पाठकों की आवश्यकताओं को पूर्ति कर सका तो संपादक अपने प्रयत्न को मार्गिक समझेगा । मादक को विद्वान् अध्यापकों तथा छात्रों से अग्रिम संस्करण में अभीष्ट सुधारों के लिए सुझाव पाकर अत्यधिक प्रसन्नता होगी ।

१८ सितम्बर १९६०  
३०१, जगिता शास्त्री रोड, मेरठ । }

शिवराज शास्त्री



तर्जिता —	सादरणी भी जाती ।
गान्धारी	दुर्योधन की माता ।
माता—	कवच की माता ।
दुःशापा	जयद्रथ की पत्नी, दुर्योधन माता की बहिन ।
सप्तगन्धा—	गन्धर्वा, गन्धर्विण्य की पत्नी ।
विद्विषा —	कीरत तप की दासी ।

### क्रुद्ध अन्य महेनिन पात्र

भीष्म, द्रोण, अश्विमेधु, वचसप, धृष्टकेतु, दुःशासन, जयद्रथ, विदुर, दुर्योधन आदि ।

## विषय-सूची

भूमिका	४६
मूल-पाठ तथा हिन्दी अनुवाद	२-२६
श्लोकों की वर्णानुक्रमसूची	२६
वेणीसद्वारस्थ गुभापित	२६
नाटक में प्रयुक्त छन्दों के लगभग स्वतन्त्र-निर्देश सहित	२६
व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ	२६
सुविषय	

संस्कृत कवियों के विषय में विश्वसनीय जानकारी का अभाव—संस्कृत कवियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान होता है, वेणीसहस्र नाटक के रचयिता भट्टनारायण के विषय में भी वही मान है। भट्टनारायण के जीवन, मध्यम अथवा अग्रिम कालिक कविधियानियों का सम्बन्ध में कोई निश्चित तथा विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध नहीं है। संस्कृत के प्राचीन कवियों ने अपने विषय में अत्यन्त हीन रचना है।

भट्टनारायण के विषय में वेणीसहस्र की प्रस्तावना से प्राप्त जानकारी—संस्कृत नाटककारों की प्रायः यह वृद्धि रही है कि उन्होंने अपने नाटक की प्रस्तावना में पूर्ववर्ती कविता और अपने कृत तथा विद्वाना आदि का बड़ा विचार है। परन्तु भट्टनारायण ने अपने नाटक की प्रस्तावना में भी अनेक कोई विविध विचार नहीं दिया है। वेणीसहस्र की प्रस्तावना से नाटक के विषय में केवल यही सूचना मिलती है कि यह नाटक विद्या भूषणनारायण कवि भट्टनारायण की कृति है। यह भट्टनारायण कौन था, वहाँ का रहन-सहन था, उसने किस कृत में काम दिया था आदि प्रश्नों का हमें उसकी रचना में कोई उत्तर नहीं मिलता।

भट्टनारायण के नाट्य में बहानुवर्त्तकों (characters) में उपलब्ध जानकारी—परन्तु यह कुछ मोलाना की बात है कि बहानु के पात्रों के सम्बन्ध में संस्कृत भाषा में निरुद्ध कल्पित ऐतिहासिक लेख (character) मिलते हैं, जिनसे किसी भट्टनारायण के विषय में कुछ प्रकाश पड़ता है। यहाँ यह बहानुवर्त्तकों ऐतिहासिक और न बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं है, और न ही उनके आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि इसमें भट्टनारायण का हाथ है या नहीं, यह वेणीसहस्र का रचयिता भट्टनारायण

हो है, फिर भी भट्टनारायण के समय के लिए ये अन्य प्रमाणों से  
 परिष्कार पर पहुँचे हैं उनका इस चर्चा में सम्मेलन होना है। इनसे  
 निश्चाय होता था, जहाँ है कि इन लोगों का भट्टनारायण केगीर्ण  
 रक्षित हो सकता है। यह स्मरणयोग्य है कि इन ऐतिहासिक लेखों में  
 नारायण को बड़ी भी बड़ी भयवा किसी घटक का रक्षित नहीं  
 गया है।

‘क्षितिशवंशावलीचरितम्’ के अनुसार भट्टनारायण मूल रूप में ।  
 गुजरात का निवासी क्षत्रियवंशीयोंका नारायण शास्त्र था। यह वह  
 सैन्य-वंश के प्रवर्तक ‘आदिसूर’ के निम्नवत् पर अन्य चार शास्त्रों के  
 कर्त्तव्य से जाकर बंगाल में बन गया था, जहाँ आदिसूर ने उसे कोई-  
 अनुष्ठान कराने के लिये दक्षिण में पाच गांव दिये थे। धीरे-धीरे वह ग  
 इतनी बड़ी हो गई थी कि भट्टनारायण को एक राजवंश का प्रवर्तक  
 जाने लगा था।

परम्परा के अनुसार भट्टनारायण कलकत्ता के वर्तमान ‘टंगोर’ का  
 आदि पुरुष माना जाता है, परन्तु इसके लिये कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं

‘क्षितिशवंशावलीचरितम्’, ‘बंगराजपटक’, ‘राजावली’ तथा ‘दक्षिणरा  
 षट्ककारिका, आदि वस्तुनिष्ठ करने वाले ग्रन्थ इस बात में तो एका  
 कि भट्टनारायण अन्य चार शास्त्रों के साथ कान्यकुब्ज से गौडदेश (वा  
 आया था। लेकिन भट्टनारायण के कान्यकुब्ज से गौड आने के कारण  
 विषय में उनकी अपनी अपनी अलग कथा है।

क्षितिशवंशावलीचरित के अनुसार आदिसूर मूढ़ राजा था, इस  
 रंगवासी वैदिक विद्वानों द्वारा उसके लिये यज्ञ करने से निषेध कर दे  
 आदिसूर ने कान्यकुब्ज के राजा से योग्य वैदिक शास्त्र भेजने की प्र  
 की थी। दूसरी कथा के अनुसार कभी बंगदेश में अनावृष्टि हुई  
 यज्ञ द्वारा वर्षा प्राप्त करने के लिये कान्यकुब्ज से पाच शास्त्र निम्नित  
 गये थे। ‘बङ्गराजपटक’ के अनुसार ‘आदिसूर’ ऐसा यज्ञ करना चाहत  
 जिससे भगवान् प्रसन्न हो जायें। उसके राज्य में रहने वाले शास्त्र

न बता सके तो

के अनुसार बगदेन पर आने वाली विपत्तियों के कारण देवकर मूर ने उनके निवारण के लिये 'अन्युद्देश' से पौत्र ब्राह्मण भेजे। एक कथ के अनुसार इन ब्राह्मणों ने धार्मिक उत्सोहन के कारण कान्यकुब्ज प्राण किया था।

महानारायण की जाति—कुछ विद्वानों ने महानारायण की जाति के सम्बन्ध किया है। कुछ लोगों ने बेलीसंहार की प्रस्तावना में नारायण द्वारा अपने लिये प्रयुक्त 'मृगराजसदमण' शब्द से निर्दिष्ट 'राज' उपाधि में 'मिह' का सकेन देवकर उसे शत्रिय माना है। दूसरे उसके नाम के 'महु' अक्ष से उसे ब्राह्मण बताते हैं। कुछ विद्वानों ने महानारायण आन्तरिक प्रमाणों—जैसे, विद्वपक पात्र का अभाव, कर्ण तथा शरणा के कलह में अश्वत्थामा के प्रति कवि की सहानुभूति और तृतीय में राक्षस-राज्य के संवाद में 'ब्राह्मणमोक्षितं सत्त्वतः। गल हरद्विगुणि' इय सदस्य द्वारा ब्राह्मण जाति की श्रेष्ठता के प्रति कवि की प्रशंसा, आदि—से बेलीसंहार के कवि को ब्राह्मण सिद्ध किया है।

परन्तु लक्ष्य यह है कि न तो 'मृगराज' उपाधि से महानारायण की जाति निर्दिष्ट किया जा सकता है और न ही अन्य दिये गये प्रमाणों में उसे जाति निर्दिष्ट किया जा सकता है। 'कवेर्नृराजसदमणः' इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि स्वयं को 'कविमिह' (कवियों में मिह के रूप में) बतलाना चाहता है। दूसरे यदि हम महानारायण के समय में अथवा उसके पूर्व काल में शत्रियों के प्रचलित नामों पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि उस काल में शत्रियों के नाम के अन्त में 'मिह' प्रायः नहीं आता था। महानारायण के ब्राह्मण होने के पक्ष में बेलीसंहार से दिये गये आन्तरिक प्रमाणों में भी कोई बल नहीं है, क्योंकि उस काल में ब्राह्मण की श्रेष्ठता पर अश्वत्थामा आदि के प्रति ब्राह्मण-धर्मविलम्बी प्रत्येक मनुष्य का, चाहे उसकी जाति या वर्ण का था, समान विश्वास था।

विषी विशेष प्रमाण के अभाव में भी, केवल 'श्रुतीराजराजसोवर्ति





बेलीसंहार और रत्नावली में ही दिये हैं। भट्टनारायण वैदिक से मल्लो भाति परिचित था। प्रचलित परम्परा के अनुसार वह चार प्रयोगों के साथ यज्ञ कराने के लिये गौड़ देरा गया था। इसकी पुष्टि इसी होनी है कि उसने गुरु को यज्ञ का रूपक दिया है।<sup>१</sup> छठे अङ्क में द्वारा गुप्तचरों को दिये गये निर्देशों से कवि का अर्थशास्त्र तथा राज-दन्धः ज्ञान परिलक्षित होता है। भट्टनारायण का कदाचित् भाषा पर फार नहीं स्वीकार किया जा सकता है। उसकी भाषा अनेक स्थलों पर नीय व्याकरण से असम्मत है। स्वयं काव्यालङ्कारभूतवृत्ति के रचयिता बेलीसंहार के तीन स्थलों पर भट्टनारायण के प्रयोगों को व्याकरण-पद्धत करने का प्रयत्न किया है।<sup>२</sup> यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता बेलीसंहार में व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ भट्टनारायण के असाधारण के हैं अथवा प्रचलित प्रयोग-पद्धति (Colloquialism) अपनाने के वश महाभारत के प्रभाव से।

## (२) भट्टनारायण का समय

भट्टनारायण का समय निर्धारित करने में आन्तरिक साक्ष्य का अभाव—जब क अवने समय के विषय में कोई साक्षात् उल्लेख नहीं करता है तो समय निर्धारित करने के लिये दो उपाय अपनाये जाते हैं—प्रथम यह है कि क्या लेखक ने किसी पूर्ववर्ती लेखक अथवा घटना का उल्लेख किया है जिससे उसके काल की पूर्व-सीमा निर्धारित की जा सके। भट्टनारायण ने बेलीसंहार में कोई ऐसा संकेत नहीं दिया है जिससे हम से यह जाना जा सके कि उसके समय की पूर्व सीमा क्या है।

महार १।२५

‘कि सभमेण’ २.१६ (इस संस्करण में ‘भीरु कि सभमेण’ पाठ दिया गया है); ‘सयमयितुमारब्धः’ (इस संस्करण में ‘सद्यन्तुमारब्धः’ ३४); ‘पतिव वेत्स्यसि शिती’ (इस संस्करण में ‘पतिव द्रव्यमि’ ३४१)।

भट्टनारायण का समय निर्धार करने में बहुत शक्य— दूसरा उपाय यह कि यह देखा जाय कि उस लेखक या उगकी कृति का किन पाद्यों लेखकों सम्बन्ध किया है अथवा उगकी कृति में वर्णित किसी घटना विशेष का क्या है अथवा उसके किसी अंश को उद्धृत किया है। इस प्रकार किसी लेखक की कृति का समय निर्धारित करने के उपाय का बड़ा माध्यम रहने है। प्रसार के साक्ष्य से किसी लेखक अथवा कृति के समय की उत्तर सी निर्धारित हो जाती है। सौभाग्य से भट्टनारायण के समय की उत्तर सी निर्धारित करने के लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। काव्यालङ्कारसूत्रकृति का वामन ने अपने ग्रन्थ में कितने ही उदाहरण वेणीसंहार से लिये हैं अ वेणीसंहार के कुछ प्रयोगों को व्याकरणमन्त्र सिद्ध करने का प्रयत्न किया है ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन, दशरूपक के टीकाकार धनिक, काव्यप्रकाश रचयिता मम्मट, सरस्वती-कण्ठाभरण के लेखक भाजदव तथा दूसरे अनेक शास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में गुरु शेष, अलङ्कार तथा सन्ध्याङ्ग आदि के अने उदाहरण वेणीसंहार से लिये हैं। जिन लेखकों ने राणीसंहार को उद्धृत किया है, उनमें सबसे प्राचीन काव्यसूत्रालङ्कारकृति का रचयिता वामन हैं। वामन का समय ईसा की आठवीं शताब्दी के मध्य भाग कहा जाता है। काव्यमीमांसा पण्डितों में प्रचलित परम्परा के अनुसार यह वामन कश्मीर के राजा जयारी (७३६-८१३ ई०) का मंत्री था। वामन ने अपने ग्रन्थ में भवभूति का भी उद्धृत किया है। भवभूति काव्यकुब्ज के राजा यशोधर का आधिपत्य, जिसे ७४० ई० के लगभग काश्मीर नरेश मुत्तापीड ललिताशिरय ने परास्त किया था। इसलिये काव्यालङ्कारसूत्रकृति का लेखक वामन आठवीं शताब्दी के प्रथम भाग के पश्चात् ही रहा होगा। काव्यालङ्कारसूत्रकृति और काविका कृति के लेखक वामन एक नहीं हो सकते, क्योंकि काविका का समय ६५० ई० से बाद नहीं हो सकता है। इसलिये भट्टनारायण का समय ईसा की आठवीं शताब्दी के मध्य भाग से पूर्व होगा। लेकिन वह वामन से किनसे पहले हुआ है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

द्वितीय महोदय ने भट्टनारायण का समय ईसा की छठी या सातवीं शताब्दी

माना है। कुछ लोग प्राचीन परम्परा पर विश्वास करके भट्टनारायण को सेन-  
वश के प्रवर्तक आदिशूर का समकालीन मानते हैं और आदिशूर का समय  
ईसा से पूर्व ३०० वर्ष मानते हैं। प्रो० विल्सन ने बेणोसंहार का समय ईसा  
की ८वीं या ९वीं सताब्दी माना है। उनके मत का आधार यह है कि  
अधुनजल के अनुसार आदिशूर ईसा की १३वीं सताब्दी में वर्तमान राजा  
बलालमेन से पूर्व २३वीं राजा था, यदि मध्यवर्ती राजाओं के राज्यकाल की  
अवधि १०० वर्ष मान ली जाय तो आदिशूर का समय ८वीं या ९वीं सताब्दी  
मानना उचित ही होगा। बनिधम महोदय ने सेनवश का शासन-काल ६५०-  
११०० ईस्वी माना है। एक अन्य स्रोत के अनुसार भी आदिशूर का समय,  
यदि आदिशूर और शूरसेन एक ही व्यक्ति हो तो, ६५० ई० के आसपास सिद्ध  
होता है। ह्यांगमांग के वर्णन के अनुसार शूरसेन नेगल के राजा अशुवर्मव  
(६४४-६५२ ई०) की बहिन भोगवती का पति था। इसलिये आदिशूर और,  
परिणामस्वरूप, भट्टनारायण का समय ७वीं सताब्दी का उत्तर भाग माना जा  
सकता है। भट्टनारायण सम्भवतः भबभूति का समकालीन रहा हो।

भट्टनारायण काल का परवर्ती प्रतीत होता है। बाणभट्ट ने हर्षचरित  
की प्रस्तावना में पूर्ववर्ती कवियों के उल्लेख में भट्टनारायण और भबभूति का  
उल्लेख नहीं किया है। इसलिये सम्भव है कि भट्टनारायण बाण के परवर्ती  
हुंवा हो। दूसरे, भट्टनारायण की भाषा और शैली में भी यही प्रतीत होता  
है कि वह बाण का परवर्ती था।

इस प्रकार भट्टनारायण का समय वहीं ६५० ई० और ७५० ई० के  
मध्य मानना बिल्कुल उचित और सम्भव प्रतीत होता है।

### (३) भट्टनारायण की रचनायें

भट्टनारायण की इन समय केवल एक कृति बेणोसंहार उपलब्ध है।  
परन्तु गुप्तादिन-सदृशों में भट्टनारायण के नाम में उद्धृत कुछ ऐसे श्लोक मिलते  
हैं, जो बेणोसंहार में नहीं पाये जाते। इसलिये यह सम्भव है कि भट्टनारायण  
की कोई अन्य रचनायें भी रही हों। प्रो० फ्रेडरिक्सन ने किसी हरिवंश  
द्वारा प्रतिनिधि की गई दशकुमारचरित की एक पाण्डुलिपि के आधार पर

## ( १ ) मधुसूत माहिम में भट्टनारायण का स्थान

भट्टनारायण प्राचीन आलोचकों की दृष्टि में—वेदों के पहले महाकाव्य था। प्राचीन जनश्रुति के अनुसार वेदों, गुरु, शीघ्र, अथर्वानुशास्त्र तथा वेदों के गीतों के उदाहरण के लिए प्रायः भट्टनारायण के वेणीसंहार का उदाहरण दिया है। इनमें प्राचीन हास्य है कि प्राचीन आलोचक उनकी दृष्टि में अत्यन्त प्रभावित थे। प्रायः ही यह भी माना जाता है कि प्राचीन आलोचकों के अनेक कालिदास आदि प्राचीन कवियों की तुलना में प्रभाव भी है। उन प्राचीन भट्टनारायण की प्रशंसा में किसी का मुख नहीं गुला है, अतः प्रसन्न मन की काव्यालोचकों में उनकी दृष्टि में बोल प्रशंसित करते उसकी निम्ना भी है।

भट्टनारायण अपनी दृष्टि में—भट्टनारायण के अपने विषय में कोई विमिश्र सूचना नहीं दी है। लेकिन वेणीसंहार की भूमिका में जो सूचना मिलती है, उससे प्रतीत होता है कि उसे अपने काव्य पर गर्व था। उनमें स्वयं की 'कवेर्भृंगराजलक्ष्मणः' कहा है। यदि वेणीसंहार के कुछ लक्षणों में छोटे बड़े के अन्त में पाया जाने वाला ध्रुव, जिसमें कवि ने काव्यकर्म की उपालम्भ दिया

१. ए. पी. गजेन्द्रगडकर, दी वेणीसंहार : ए. विट्ठल स्टडी, पृ० २१, २२।  
वही, पृ० २३।

है, भट्टनारायण की ही रचना हो तो प्रबल है कि उसे विपरीत परिस्थितिओं में भी अपने इस 'महान् प्रबन्ध' की अमरता की वाचना थी ।'

भट्टनारायण कवि के रूप में—भट्टनारायण ने अपने नाटक बेणीसहार में किसी एक रीति का अनुसरण न करके भाव और परिस्थिति के अनुसार गौड़ी और उर्दूबी दोनों रीतियों का उपयोग किया है । यद्यपि अनेक आलोचकों ने कथावस्तु की सिध्दता और संवादों की नीरसता तथा उनकी भाषा की क्लृप्तता के कारण बेणीसहार को कटु आलोचना की है, परन्तु उसके कवि-पक्ष की शुद्धता के विषय में सभी एक मत हैं । भट्टनारायण के काव्य में ओज, शक्ति, गति तथा प्रभावोत्पादकता है । उसकी भाषा में जीवापन है जिससे वह भाव और रस के अनुरूप बन जाती है । भट्टनारायण बीर, बीभर्त, करुणा और गूँझार रस की अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से सफल रहा है । बीररस में उसकी पदयोजना ममाम्मबहुल और ओजपूर्ण है ।

भट्टनारायण की एक अन्य विशेषता यह है कि वह कवि और अर्थ की योजना की कला में निपुण था । उसकी अक्षरयोजना भाव के अनुरूप होती है । 'नखदसुजधमितचण्डगदाभिषात' इत्यादि श्लोक में समुक्त अक्षरों की योजना भीम के क्रोध और उत्साह को प्रकट करने में सर्वथा सफल रही है । इसी प्रकार 'मन्दायस्तालंवाग्धः' इत्यादि श्लोक में अक्षरों की योजना ऐसी है कि पाठक को दुन्दुभि के बजने की अनुभूति होने लगती है ।

भट्टनारायण ने छन्दों का भी समुचित प्रयोग किया है । 'कुह घनीक पदानि रत्नैः रत्नैः' २।२० में द्रुतविलम्बित, 'अर्धवावा रजमुपगती' इत्यादि ४।१५ में मन्दाकान्ता तथा 'मम हि नयसा दूरेणात्नः' इत्यादि ६।२४ में हरिणी छन्द का प्रयोग परिस्थिति और भावों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति में अत्यधिक सहायक हुआ है ।

१ काव्यालापमुभाषितव्यसनिनस्ते राजहता गता-

इहा मोक्षयः सयमायता गुह्यनदध्याध्यासु वाच- सताम् ।

सालंकाररसप्रसन्नमधुशकाराः बबोना गिरः

- प्राप्ता नागमयं तु भूमिवलये जीयात्प्रबन्धो महान् ॥

भट्टनारायण ने अनेकविध अलङ्कारों का भी समुचित प्रयोग किया है। नाभिप्राय पदों और वाक्यों के प्रयोग के लिये भट्टनारायण विशेष रूप से उत्प्रेक्षनीय है। भट्टनारायण ने अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का भी अच्छा प्रयोग किया है। उसके कुछ अर्थान्तरन्यास तो वाग्निदीप्त के अर्थान्तरन्यासों के समान संग्रहणीय हैं। उगने संस्कृत साहित्य को अनेक सूक्तियाँ भी दी हैं, जो मदमर पर उद्धृत किये जाने पर वक्ता के वचन को गौरव प्रदान कर सकती हैं। (देखिये, पृ० २६६)

भट्टनारायण नाटककार के रूप में—नाट्यकार के रूप में भट्टनारायण को मफल नहीं कहा जा सकता है। भट्टनारायण का सब से बड़ा दोष यह है कि उसने अपने नाटक की कथावस्तु का आधार महाभारत की विस्तृत तथा प्रमिश्र कथा को बनाया। महाभारत की कथा को नाटक के क्लेश्वर में सीमित करने के लिये उसे वर्णनात्मक शैली का आश्रय लेना पड़ा। जिससे उसमें गतिहीनता तथा शिथिलता आ गई। दूसरे अपने युग के प्रभाव के कारण उसने दीर्घ-गमागयुक्त शैली का आश्रय लिया, जिसपर कथमय स्वादात्मक भाग में, जिसके कारण उसकी भाषा नाटक के उपयुक्त नहीं रही। भट्टनारायण का एक अन्य दोष वर्णनों तथा पात्रों के चित्रण में अनुपात का अभाव है, जिससे नाटकीय प्रभाव मट्ट हो गया है।

इन दोषों के रहने हुए भी केर्लीमहार को एकदम असफल कृति नहीं कहा जा सकता है। भट्टनारायण चरित्र-चित्रण करने में, जो नाटक का एक आवश्यक गुण माना जाता है, पूर्ण सफल रहा है। उसके पात्र महाभारत की अनश्रित कथा के लोक-विकल्पान् व्यक्त हैं। इसलिये भट्टनारायण की यह सीमावर्ती कि वह अपने पात्रों को अपने नाटक की कथावस्तु के अनुकूल संश्लेष चित्रित नहीं कर सकता था। फिर भी, उसके चरित्र-चित्रण में जिसदला प्रकाशनीयता है।

केर्लीमहार के तीसरे अष्ट में भट्टनारायण को नाटकीय व्यापार की दृष्टि में सर्वोपरि सम्मना मिली है। अश्वत्थामा और कर्ण का बाहुसह नाटकीय व्यापार के लिये यहाँ अत्यन्त प्रदान करना है। (आगे 'केर्लीमहार की ... देखिये)

भट्टनारायण पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव—भट्टनारायण अवश्य ही ने पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों से परिचित रहा होगा और उनका भट्टनारायण पर प्रभाव पड़ा होगा। लेकिन भट्टनारायण की रचना पर पूर्ववर्तीों का कोई स्पष्ट प्रभाव लक्षित नहीं होता।

भट्टनारायण की अन्य कवियों से तुलना—यह स्पष्ट है कि भट्टनारायण में दास जैसी स्वाभाविकता तथा सरलता, बाण जैसा परिष्कार और भवभूति : उदात्तता नहीं है। भट्टनारायण कला की दृष्टि से हर्षवर्धन का समकक्ष नहीं कहा जा सकता। भट्टनारायण की द्वितीय श्रेणी का ही कवि तथा प्रकार कहा जा सकता है। भट्टनारायण की तुलना मुद्राराक्षस के रचयिता पद्मदत्त से भी जा सकती है। इन दोनों की भाषा में ओश तथा गति है। य की दृष्टि से भट्टनारायण भवभूति के समीप है। शैली की दृष्टि से भी भट्टनारायण और भवभूति में समानता है, लेकिन काव्य-कला दृष्टि से भट्टनारायण की भवभूति से कोई तुलना नहीं हो सकती। प्रकृति भव्यता और मानव-हृदय के चित्रण में भट्टनारायण में भवभूति जैसी उद्भूतना नहीं पाई जाती।



भाग २—वैष्णवनिर्देशः

(१) वेणीमहाराय की कथाप्रसंग

पुत्रों तथा—बीर और वीरर इतिनापुर के राजा ने मन्त्रों  
द्वारा वे पाण्डु की अज्ञान दृष्टि के कारण उसका मेरु की भाँति पुरा  
इतिनापुर के राजा मित्रावर्धन पर आधीन हुआ था। इसने उसका पिता  
विवादात्त राज के कारण उसका ही राज्यसत्ता में और न जाने में ही  
और ईर्ष्या प्रभाव हो गई थी। बीरवा में उद्भूत दुर्भीष्ट इतना ही नहीं  
प्रचार पाण्डव राजकुमारों को राज्यभूमि करना चाहता था। पाण्डवों  
हस्तप्रस्थ में अपना गया राज्य अर्थात् नष्ट किया था। मेरु दुर्भीष्ट  
आने वाला धनुष की सहायता में पाण्डवों में उद्भूत दुर्भीष्ट को धूम-धूम  
परजित करने लगे। अन्य पाण्डवों को और उनकी पत्नी द्रौपदी को मारना  
करा दिया। भरी राजसभा में द्रौपदी के वस्त्र तथा केतु भीतर  
आमागित किया गया और पाण्डवों को १३ वर्ष तक वन में गया गजानन  
में रहने के लिये विवश किया गया।

समय को आते समय पाण्डवों ने कौरव राजकुमारों में प्रसिद्ध सेने प्रणिजा की। पाण्डव राजकुमारों में बन्धु पवन-शुभ भीम ने प्रणिजा की कि वह दुःशासन के वसःस्थल से दधिर का पान करेगा और दुर्धन जंवाओं को छोड़ कर उनके दधिर में हीरकी की लुनी लेनी को दधेगा। माटक, जैसा कि इसके शीर्षक 'वेणीमहा' में स्पष्ट है, हीरकी की लुनी के सहार (बीजने) की घटना में सम्बन्ध है।

वनवास की रातें तूरी कर निगे के बार गूधिरिहिर इच्छा को दून बन  
सन्धि के लिये दुर्गोपग के गाथ धनमा है । इन समाचार को सुनकर भीम  
द्रौपदी दोनों ही रुष्ट होते हैं, क्योंकि वे दोनों बीरवों को वसजित करके ।  
अपमान का बदला लेना चाहते हैं । यहीं से नाटक का आरम्भ होता है ।

प्रथम अङ्क—मङ्गलसाधन के पत्रात् गुरुधार श्लिष्ट पद्य द्वारा इस

दूत बनकर गये हैं। गुणधार के इस वचन को लेकर ही कुछ भीमसेन का कराया गया है, जो पाण्डवों को लाशाग्रह में डालने वाले, त्रिप देने तथा द्रौपदी के वस्त्र एवं केसों को छींचने वाले कौरवों के साथ सन्धि करना चाहता। भला उसके जीवित रहते अपकारी और स्वस्थ कैसे रहते हैं ?

प्रभावना के बाद नेपथ्य से इस उक्ति को दोहराता हुआ भीम महर्षि के श्रोत्र की मुद्रा में मग्न पर प्रविष्ट होता है। सहदेव गुणधार के वचन का अनुकूल अर्थ कहता वर उसे शान्त करना चाहते हैं, परन्तु भीम को शान पर विश्वास नहीं होता कि धर्मराज और उसके भाई औरवों का न चाहेंगे। उसे अपने बड़े भाई की सहनशीलता और निस्तेजस्विता दर होता है और वह बड़े भाई की आज्ञा के उल्लङ्घन का पाप स्वीकार करके कौरवों का विनाश करने के लिये एक दिन के लिये उन सब से पृथक् होना चाहता है। वह आयुध छारण करने के लिये अस्त्रागार की ओर जाना चाहता है, परन्तु शोध के आवेष्ट में द्रौपदी की अनुशासना में पड़ना पड़ता है।

द्रौपदी को उसी दिन दुर्योधन की पत्नी भानुमती के हाथों नये अपमान घुँट पीना पड़ा था। द्रौपदी, सुभद्रा आदि सपत्नियों का साथ माता गान्धारी पाद चन्दना करने के लिये गई थी। वही भानुमती ने हँसकर द्रौपदी से कहा कि 'उमने सुना है पाण्डव लोग पाँच पाँच लेकर सन्धि कर रहे हैं। लिये द्रौपदी को अपने केश बीच सेने चाहियें।' द्रौपदी की सती के मुख से द्रौपदी के इस नये अपमान को जानकर भीमसेन का क्रोध और भी भड़क उठा है। भीम और द्रौपदी दोनों ही सन्धि के प्रस्ताव से रूढ़ हैं। भीम द्रौपदी को सान्त्वना देता है कि वह अवश्य ही अपनी कदवती हुई बुझाओ से भाई गई भारी गदा के आघात से दुर्योधन की जाँघों को चूरा करके उसके पैरों और चिबने दधिर से ताल हुए हाथों से उसके केशों को संवारेगा।

इसी बीच नेपथ्य में नगाड़े की ध्वनि होती है और धराराया हुआ कञ्जुशी भीमसेन को सूचित करता है कि दुरात्मा दुर्योधन ने भगवान् धनुर्देव की आज्ञा का प्रयत्न किया, परन्तु भगवान् अपने विस्मरण से उसे पराजित करके और सन्धि के प्रयत्न में असफल होकर शिविर में वापिस लौट आये हैं।

इस घटना से अगन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर ने कीरवों के मिश्र युद्ध की घोषणा कर दी है। रणकुन्दुभि का शब्द मुनकर भीम प्रमत्त होता है। भीम सहदेव युद्धभूमि जाने के लिये द्रौपदी से बिदा लेते हैं। द्रौपदी उनके को वामना करती है और प्रार्थना करती है कि वह युद्धभूमि से लौटकर पुनः मान्यता दें और क्रीडावेश के कारण युद्धभूमि में अपने शरीर को न करें। इस पर भीमसेन पाण्डवों की युद्ध-निपुणता से द्रौपदी को आश्चर्य करता है।

द्वितीय अङ्क—युद्ध आरम्भ हो चुका है। भीष्म तथा अभिमन्यु के कुछ प्रमुख योद्धा मारे जा चुके हैं। भानुमती अपने पति की 'विजय-म' कामना से सत करना चाहती है। उसने रात्रि में दुस्वप्न देखा है, जिससे आपङ्कित है। सभी के आग्रह पर वह दुस्वप्न को सुनाती है, जिससे वे प्रसन्न हो जाते हैं। उसका शमन किया जा सके। स्वप्न में उसने देखा कि मरुत ने तीनों को मार डाला है। इसके द्वारा गाढककार ने भाषणा की सूचना दी है। राजा छिन्नर भानुमती के स्वप्न के विषय में सुनता है। पहले तो वह भी चरित्त होता है, पर बाद में घबराहट जाती है। सूर्य पूजा करती हुई भानुमती की दासी उपो ही निशी दूधनी परिचर्या में व्यस्त रह आर्यगण लेकर रानी के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। सूर्य-पूजा के बहो अभ्यास आता है, और दुर्योधन तथा भानुमती राजमहल में बने जाते हैं। यही उनमें प्रेमालाप होता है। इसी बीच जयद्रथ की माता आकर पताचर देती है कि अभिमन्यु के वध में दुःभी अर्जुन ने जयद्रथ का वध करने में प्रसिद्धा की है। राजा को जयद्रथ की रक्षा का उपाय करना चाहिये। दुर्योधन उनके भय को दूर करने तथा युद्ध के लिये प्रेरणा करता है।

तृतीय अङ्क—इस अङ्क के प्रवेशक में राधा-नाथनी के द्वारा युद्धभूमि की भीषणता और द्रोण के वध की सूचना दी जाती है। इसी अवसर पर विदुर के द्वारा तो मरुत अर्जुन के वध की सूचना दी जाती है। दुर्योधन अर्जुन के वध की सूचना देते हैं। इस पर कर्ण दुर्योधन को यह समझा देता है कि द्रोण ने स्वयं को द्रोण दिया था, और इसी लिये वे मारे गये। द्रोण अर्जुन के वध की सूचना देते हैं।

ममत्त्व दृष्टी का राजा बनाना चाहते थे और अब अभ्यासमा के मारे जाने से बृद्ध शासन होश का सन्तुलन करना स्वयं है यह सोचकर ही होश ने दुर्गो होकर सन्तुलन दिया था। इसी बीच हुए और अभ्यासमा दुर्गोचन के जगमाने है और अभ्यासमा दुर्गोचन से उसे सेनापति बना देने की कहना है, जिन से वह पिता की मृत्यु का बदला ले लेंगे। पर दुर्गोचन ने कलं की सेनापति बनने का सचन दिया है। अभ्यासमा और अधिक बृद्ध होश है, कलं और अभ्यासमा से बालबुद्ध होगा है। अभ्यासमा तब तक के लिये सन्तुलन न उठाने की प्रतिज्ञा करता है जब तक कलं जीवित रहेगा। इसी बीच नेपथ्य से भीम की मर्त्योक्ति सुनाई देती है कि दुःशामन उसके मुकुटछत्र में आवृद्ध हो गया है, और वह उसका भूत पीने जा रहा है, यदि कोई वीरव दत्ता कर गके तो बदे। दुःशामन की विजितगन अवस्था को सुनकर अदवायामा सन्तुलन बहण करना चाहता है, पर आकाशवाणी के द्वारा जयसवाया की यह चेतावनी दी जाती है कि उसे अपनी प्रतिज्ञा को गन्धित नहीं करना चाहिये। अदवायामा की इस बात का दुःशामन है कि वह दुःशामन की रक्षा नहीं कर पाता और देवता भी पाण्डवों के पक्षपाती है।

चतुर्थ अङ्क—दुर्गोचन का मारवि मुद्र से प्राप्त और प्रकृतित दुर्गोचन को मुद्रस्थल से दूर ले आकर उसके रथ को एक बट-दृष्ट की छाया में लडा कर देता है। केनका प्राप्त होने पर दुर्गोचन को दुःशामन के वध का पता चलता है। कलं का सेवक सुन्दरक दुर्गोचन को शोकता हुआ वहीं पहुँचता है और उसे कलं के पुन वृत्तसेन के वध की सूचना देता है और मुद्रस्थल की गतिविधि से अवगत कराता है। सुन्दरक उसे पुन-वध से निराश और क्रुद्ध होकर प्राणों का मोह रवान कर मुद्रभूमि की अति दृष्टे कलं का सन्देश देता है। दुर्गोचन भी अपने मित्र अङ्गराज कलं की सहायता के लिये पुन. मुद्रभूमि के लिये प्रस्थान करना चाहता है, किन्तु इसी बीच धुनछत्र और गान्धारी वहाँ आ पहुँचते हैं।

पञ्चम अङ्क—पुर्वो के विनाश से व्याकुल हुए धुनछत्र और गान्धारी दुर्गोचन को पाण्डवों से सन्धि कर लेने के लिये समझाते हैं, परन्तु दुर्गोचन ने इसके लिये तैयार नहीं होता। वह पाण्डवों से अपने भाई दुःशामन का प्रति-

घोष सेना बाह्य है। इस पर भूतनाथ गुप्त उगार डाल गल्लियों का बरतना मुझसे देता है, पगल अविमानों दुर्गन्ध इसे भी शरीर का नहीं बरत

इसी बीच कर्ण ने विचार की सूचना मिलती है और दुर्गन्धन म आने की संवारी करता है। सभी भीम और अर्जुन गगनमणि से दुर्गन्धन पगल बूझने हुए वही पटुन जाने है। बीच भूतनाथ और गल्लियों को करते समय बहूनिर्मों का प्रयोग करता है। दुर्गन्धन भीम को पटुन और दोनों में वायुद्व होता है। दुर्गन्धन भीम को इन्द्राद के विषे मन है, किन्तु अर्जुन भीम को रोगता है। इसी बीच वेदना में बीच और अ विषे युधिष्ठिर को आका मुनाई पहनी है कि अब वृद्ध-प्रवाति का ग गया है, इसलिये सेनायें वाणिज्य सौदा भी जायें। अब युधिष्ठिर की आ पालन करने के लिये वह वाणिज्य सौदा पहने है।

भीम और अर्जुन के वाणिज्य सौदते २ रंग स्थान पर अभिरामा भी जाता है। भूतनाथ दुर्गन्धन को अभिरामा का उदरर स्वागत करने का देता है। अभिरामा जाने ही दुर्गन्धन के विष वरुण की निदा करने है, जिस पर दुर्गन्धन उसके दृष्ट होकर उपालम्भ करता है कि अस्वस्थ वरुण के वध की ही प्रतीक्षा क्यों की; उसके वध की भी प्रतीक्षा कर लेये, कि दुर्गन्धन और कर्ण में कोई अन्तर नहीं है। इस पर अभिरामा भयम होकर चला जाता है, परन्तु भूतनाथ उसके प्रति आने और गान्धा वात्सल्य की तथा उसके रिता के अपमान की याद दिलाकर धातुय विहित धित दुर्गन्धन की बात का बुरा न मानने का संजय द्वारा भेजता है।

यह अङ्क—अङ्क के प्रारम्भ में युधिष्ठिर को चिन्तित अवस्था में दित गया है। भीम ने प्रतिज्ञा की है कि वह आज दुर्गन्धन का वध करके प्रतिज्ञा पूर्ण करेगा अन्यथा स्वयं आत्मघात कर लेगा। यह समाचार आ दुर्गन्धन सुपचार एक जलाशय में जाकर छिप गया। बहुत लोगने पर भी न समने से युधिष्ठिर अत्यधिक चिन्तित है। इसी समय एक पुरुष देता है कि दुरात्मा दुर्गन्धन का पता लग गया है, दुर्गन्धन और

का गदा मुड़ हो रहा है । हम मुड़ से भीम को विजय निश्चित है । इसलिये कृष्ण भगवान् ने सन्देश भेजा है कि युधिष्ठिर राज्याभिषेक की तैयारी करें और द्रोपदी अपने बेसी-मंहार का उरगम मनावे ।

राज्याभिषेक की तैयारी के लिये पुरोहितों तथा अन्य कामचारियों को आज्ञा दे दी जाती है, परन्तु इसी समय घटनाएँ एक नया मोड़ ले लेती हैं । दुर्योधन का एक दिन चार्वाक नाम का राजसूय मुनि का वेद पाठण करके युधिष्ठिर के पास आता है । वह इस बात का खोम रखता है कि वह भीम और दुर्योधन का गदा-मुड़ देखकर समन्तगच्छ से आ रहा है, उसे इस बात का दुःख है कि शरद् ऋतु की प्रचण्ड धूप के कारण वह अर्जुन और दुर्योधन के गदा-मुड़ को पूरा नहीं देख सका है । युधिष्ठिर अर्जुन और दुर्योधन के गदा-मुड़ की बात सुनकर चौंकाता है । अधिक पूछने पर पता चलता है कि कृष्ण के भाई बलराम द्वारा दुर्योधन को मृत संकेत कर देने पर गदा-मुड़ से भीम मारा गया है । युधिष्ठिर और द्रोपदी शोकाभिभूत हो जाते हैं और मरने की तैयार होने हैं । चार्वाक धूपके से चिन्ता तैयार करके उसे प्रश्वसित करने के लिये वहाँ से चला जाता है ।

इसी बीच नेपथ्य में बीमाहल गुनाई पड़ता है । युधिष्ठिर इसे दुर्योधन का भागमन समझता है । द्रोपदी छिपने की चेष्टा करती है । दधिर से जयपथ चारीर वाला भीम मञ्च पर आता है और द्रोपदी के बेसी को बाँधने के लिये उसे पकड़ लेता है । युधिष्ठिर उसे दुर्योधन समझकर सदना चाहता है । अन्त में बाल्मविकला का पता चलता है । द्रोपदी प्रसन्नता से बेसी बाँधती है । बामुदेव और अर्जुन मञ्च पर आते हैं । चार्वाक नकुल द्वारा पकड़ लिया जाता है । युधिष्ठिर भीम और अर्जुन का आतिथ्य करने ह्वित होते हैं और भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी कुतर्कना प्रकट करते हैं । अन्त में भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है ।

## (२) कथावस्तु का स्रोत—महाभारत

रामायण और महाभारत ये दोनों कौरवाया काव्य संस्कृत के अनेक काव्यों तथा नाटकों के उपजीव्य रहे हैं । महुनारायण के बेसीमहार नाटक की

कथावस्तु भी महाभारत में ही गई है। भट्टनारायण ने अनेक कवियों की भाँति महाभारत के किसी आख्यान को गंजकर महाभारत की मुख्य कथा की जगह नाटक का आधार बनाया है।<sup>१</sup> वेणीमहार का प्रारम्भ भवभूति की सन्धि-प्रयाण से होता है, जो महाभारत के उद्योगपर्व में आया है। नाटक की समाप्ति युधिष्ठिर के राज्याभिषेक पर होती है, जो महाभारत के द्वापारपर्व में आया है। इन प्रकार वेणीमहार में महाभारत के उद्योगपर्व से लेकर द्वापारपर्व तक की घटनाओं को नाटक की आवश्यकतानुसार मान-समान-सूचक संक्षिप्त, परिवर्तित तथा सजोड़ित करके आनाया गया है।

### (३) वेणीसंहार की कथावस्तु पर खान का प्रभाव—

#### परिवर्तन और उनका नाटकीय प्रभाव

मूल स्रोत का प्रभाव— वेणीमहार के प्रायः सभी प्रधान पात्र, केषव दुर्योधन की पत्नी भानुमती को छोड़कर, महाभारत में मिले गए हैं। बड़े तौर पर, घटनाओं के सूक्ष्म विस्तारों और छोटी घटनाओं को छोड़कर वेणीसंहार की मूल घटनाएँ महाभारत से ली गई हैं।

महाभारत के मुख्य कथानक को चुनकर भट्टनारायण ने उसे अपनी कवि-प्रतिभा द्वारा रोचक नाटक का रूप दे दिया है। परन्तु महाभारत की प्रसिद्ध कथा को नाटक का विषय बनाने में कुछ अनुविधानें भी थीं। महाभारत की कथा लोक-प्रसिद्ध थी, इसलिये भट्टनारायण इच्छानुसार नाटक की आवश्यकतानुसार कथा में आमूल परिवर्तन नहीं कर सकता था और न ही महाभारत के प्रसिद्ध पात्रों के चरित्र-चित्रण में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकता

१ सङ्कृत के महाकाव्य और नाटक, जिनकी कथावस्तु महाभारत से ली गई है, निम्नलिखित हैं:—

२ — कुमारसम्मन, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित।

— मध्यमव्यायोग, यज्ञराज, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, उदमङ्ग, बालचरित (भास के नाटक); अभिज्ञानशाकुन्तल और राजशेखर का-  
यालभारत।

दा । दमनिने महाभारत की कथा सुनने से उहाँ 'उदात्तकथा' के कारण नाटक के मोहग्रिप्त होने की आशा की जा सकती थी'। वहीं दूसरी ओर यह हानि भी हुई है कि कवि की उदात्त कथाओं में परिवर्तन और परिवर्धन की पूरी छटा न होने से अनेक अनापदनेक कथ पों की भी रचना देना पडा है, अगले नाटक मानु-संक्रान्ति में दिग्विपत्ति के दोष में दूरात हो गया है ।

आदमान में दिये गए परिवर्धन — बेलीसहारा के कथानक की महाभारत की कथा से तुलना करने पर महुनापदनेक द्वारा भूम कथा में दिये गये परिवर्तनों तथा परिवर्धनों का आमाकी से पता लग सकता है । महाभारत की कथा में दिये गये कुछ महत्वपूर्ण परिवर्धन निम्नान्वित हैं—

नाटक के प्रथम अङ्क में पाँच गाँवों की लड़ों पर मण्डि का प्रभाव लेकर कथानक कथित गये हैं । दुर्घोषन भगवान् कृष्ण की पकड़ने का प्रयत्न करता है, परन्तु वह अपना विश्वरूप प्रकट करके उसे अभिभूत कर देने है । महाभारत की कथा में पाँच गाँवों की लड़ों पर मण्डि का प्रभाव प्रथम मध्य के आदमान में दिया गया है । उसके अनन्तर होने पर स्वयं भगवान् कृष्ण मण्डि करने का प्रयत्न करते हैं । दुर्घोषन श्रीकृष्ण की पकड़ने का प्रयत्न रचना है, परन्तु आ आने पर भुगदा उठे दगड़ते हैं । महाभारत में भगवान् ने आने विश्वरूप का प्रदर्शन दुर्घोषन पर अपनी शक्ति का प्रभाव डमाने के लिये किया है, न के उसके उन्हें पकड़ने के प्रयत्न को विफल करने के लिये । सम्मेलन, महु-पादपन की यह परिवर्तन करने की प्रेरणा आल के दूतवापर से मिली है ।

महाभारत में अश्वत्थामा और कर्ण का कथन, जो इस नाटक के तृतीय अङ्क में दिया गया है, कर्ण और कृप के मध्य प्रारम्भ होता है, परन्तु अश्वत्थामा उगे आने ऊपर से नेता है । महाभारत में कर्ण और अश्वत्थामा का कलह द्रोणाचार्य के मध्य से शुरू होता है । नाटक में अश्वत्थामा और कर्ण का कलह का कारण कर्ण द्वारा द्रोणाचार्य की निन्दा है तथा यह घटना

। तद्वत् कविद्विप्रमानुरोधाद्वा उदात्तकथावस्तुगौरवाद्वा नवनानादमोहनकृतद्व-  
लाद्वा मयद्विप्रत्यक्षान् दीक्षमानमभ्यर्चये । बेलीसहारा, पृ० ८ ।



श्रीराचार्य की मृत्यु के पश्चात् दिखलाई गई है। नाटक में महाभारत के कथा-क्रम में एक अन्य परिवर्तन यह किया गया है कि महाभारत में चार्वाक राक्षस मुष्णिष्ठिर की भाषा में प्रवेश उसके हस्तिनापुर में प्रवेश करने के पक्ष-वर्जित किया गया है और वहाँ चार्वाक का उद्देश्य मुष्णिष्ठिर की निन्दा का है। परन्तु नाटक में मुनिवेश्वरजी चार्वाक के माघ मुष्णिष्ठिर की भेंट पर दिखलाई गई है। नाटक में चार्वाक की संवसारणा नाटक के घटना-क्रम-एक नया मोड़ देने के लिये की गई है।

महाभारत में अज्ञानता में धिरे हुए दुर्योधन का पता लग जाने पर युधिष्ठिर का व्यवहार वही पटुच गये हैं और दुर्योधन को मुट के लिये मुष्टिष्ठिर । लज्जारा गया है तथा युधिष्ठिर द्वारा दुर्योधन को यह सूट दी गई है कि इन्द्रमुट में कोई भी भी पाण्डव से लड़ सकता है । नाटक में दुर्योधन को के लिये लज्जारा तथा कोई भी भी पाण्डव से इन्द्रमुट का प्रस्ताव भीम दिया गया है, जब कि युधिष्ठिर अग्न्य स्वन पर है ।

हवादार में गुनग उद्गायनायें—भट्टनागयण ने नाटक की आवश्यकता के अनुसार वैष्णव आश्वान के घटना-क्रमों में ही हेर फेर नहीं किया गया अतः कई सर्वथा गुनग उद्गायनायें भी थी हैं। सर्व प्रथम द्रोपदी के महार की घटना, जिस पर नाटक का नाम पड़ा है, बलि की सर्वथा मौजूदगी है। महाभाग में भीच द्वारा दुर्गोवन के उद्धार की प्रतिज्ञा का बयान दिया गया है, लेकिन उनके स्थिर हैं द्रोपदी के भोग सवारने का न उल्लेख अतः भानुवती द्वारा द्रोपदी में भोग लक्षण मर्यादा प्रत्यक्ष की गयी है। दुर्गोवन की गयी भानुवती, पाश्चात्यक, गुनग वृद्धि-वर्धन तथा उनकी गयी और वस्तुवत्, बेटी एवं गयी आदि छोटे पान बलि की अपनी उद्गायनायें हैं।

[illegible]

एक वर्णनों का नाटकीय प्रभाव — ऐसा कि पहले कहा जा चुका है कि बेलीसंहार की कथा महाभारत की प्रसिद्ध कथा है। नाटककार की रीतिरिवाज और निपुणता इस बात से है कि उसने महाभारत की विवृत कथा को नाटक के बेहमियान ६ अङ्कों के बनेबुर में अनुपमा से सीमित करके उसे प्रभावपूर्ण और रोचक बना दिया है। महाभारत की कथा को रोचक नाटक में प्रस्तुत करने में भट्टनारायण ने जो प्रतिभा दिखलाई है, वह सर्वथा अचमकीय है। उसने महाभारत की कथाओं पटनाओं के सम और मयोग में जो परिवर्तन किये हैं तथा नाटक की प्रभावपूर्ण बनाने के लिये जो नई उद्भावनायें की हैं, उससे नाटकीय व्यापार को रसित तथा पात्रों के चरित्र को अभिव्यक्ति का अवसर मिला है।

संभव और दुष्पु के मध्य प्रवृत्तियों को एक में मिश्रकर न केवल कवि ने निवृत्ति का भी है, अरिपु इसने 'मृत्युति' के लिये पृष्ठभूमि भी प्रदान की है तथा इससे बुद्धिद्वि, भीम तथा दुर्योधन के चरित्रों की अभिव्यक्ति के लिये भी अवसर मिला है। भानुमती द्वारा होरदी से उत्तमम्भूषक प्रदान किये जाने की घटना ने, जो कवि की अपनी कल्पना है, भीम के क्रोध को और भी बढ़ा दिया है, जो द्रुपद-संहार द्वारा 'बेली-संहार' का काव्य का बीच मिला हुआ है।

हिनीय अङ्क में भानुमती के स्वप्रवर्णन तथा वात्स्य द्वारा दय-दय के मङ्गल में बाकी घटनाओं की सूचना मिलती है। इस अङ्क में बालोद्यान का दय पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती अङ्कों में विवृत उत्तमम्भूषण परिस्थितियों से मेल प्रकार की बीमम परिस्थिति का वर्णन करके दयों के सामने मुख्य परिवर्तन उपस्थित करता है। इस अङ्क से दुर्योधन के चरित्र के दूसरे पक्ष पर प्रकाश पड़ता है। इस अङ्क में कञ्चुकी की 'मर्ग मयम्' आदि वक्ति द्वारा महाकाव्यमय की योजना ने नाटकीय स्थिति उत्पन्न कर दी है।

तृतीय अङ्क के प्रवेचक में दधिरात्रि और उसकी पत्नी की अवतारना करके कवि ने होनाचार्य, भूरिथवा और यदोत्कथ आदि बीरो के वध की सूचना दे दी है और साथ ही दुःशासन के दधिर-पान के अवश्य हृत्प को

देनिये, बेलीसंहार पृ० २६।

अन्तःप्रविष्ट राक्षस द्वारा किया गया सूचित करके भीम के चरित्र की कर सी है ।

द्रोणाचार्य के वध की जानकारी पाठक को यह जिज्ञासा होती है अश्वत्थामा जैसे पराक्रमी वीर ने अपने पिता के अनुचिन मरण का बदला न लिया? उसने भीम से दुःशासन की रक्षा क्यों नहीं की? कवि ने अश्वत्थामा के कलह और दुर्योधन द्वारा कर्ण के पथपातपूर्ण व्यवहार के । कर्ण के जीवित रहते राक्षस त्याग का चित्रण करके तथा आकाशसंकारिणी की योजना करके अश्वत्थामा के ब्रह्मतेज तथा स्वामिभक्ति की रक्षा की है ।

चतुर्थ अङ्क लम्बे वर्णनात्मक संवादों तथा भाषा की विलम्बता के यद्यपि नीरस हो गया है; तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सुन्दर अवतारणा करके कवि ने महाभारत की सम्भी कथा को एक छोटे से अचतुरता से समेट दिया है । मुडभूमि से भेजा गया कर्ण का संदेश और पर दुर्योधन की प्रतिक्रिया दुर्योधन के चरित्र का उद्घाटन करती है । अन्त में धृतराष्ट्र और गान्धारी का मञ्च पर प्रवेश दुर्योधन को कर्ण की सह करने से रोक देता है, जिससे पाण्डवों के लिये कर्ण के वध का मार्ग प्र हो जाता है ।

पाँचवाँ अङ्क, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कवि को अपनी उम्मी है । इस अङ्क से न तो कथा आगे बढ़ती है और न ही नाटकीय व्यापार गति भिन्नती है, परन्तु इससे नाटकीय व्यापार में गति-रोध उत्पन्न हो है । परन्तु इसे धृतराष्ट्र और गान्धारी की शास्त्र-भावना, दुर्योधन की स्व मान तथा अपने दिवंगत भिय कर्ण के प्रति अनुपम प्रेम एवं अश्वत्थामा आत्माभिमान की अभिव्यक्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहा जा सकता है ।

कवि ने गुरु अङ्क में दुर्योधन का सर्वज्ञ और द्रुपद का प्रस्ताव भी मुख से कराकर सर्वथा उचित किया है, क्योंकि नाटक में व्यापार का मुख्य रूप से भीम ही है । भीम की अनन्यदिनगामिनी दुर्योधन-वध की प्रीति, आर्वाक की अवतारणा ने मुग्धहृद के भ्रातृप्रेम की अभिव्यक्ति का अ किया है । आर्वाक के हृदय की यो- - - - -

नया मोड़ मिला है और बबि ने कदम रस की अभिव्यक्ति के लिये इसका अच्छा उपयोग किया है।

## (४) वेणीसंहार की घटनाओं का स्थान, समय तथा अवधि

वेणीसंहार की घटनाओं का स्थान—वेणीसंहार नाटक की घटनाओं का स्थान प्रसिद्ध कुण्डलेश है, जिसे नाटक में समन्तरस्थल कहा गया है। लेकिन प्रत्येक अङ्क के व्यापार का स्थल अलग-अलग है। कभी कभी एक अङ्क में निबद्ध व्यापार के भी स्थानों में परिवर्तन हुआ है। प्रथम अङ्क का व्यापार पाण्डवों के शिविर के किसी एक भाग में प्रारम्भ होता है, जो द्रौपदी की चतुःशाला से बहुत दूर नहीं है। बाद में व्यापार का केन्द्र द्रौपदी की चतुःशाला हो जाती है। द्वितीय अङ्क के व्यापार का केन्द्र दुर्योधन के प्रासाद का अन्तःपुर उससे सलग्न बालोद्यान तथा द्वाप्रासाद है। तृतीय अङ्क का व्यापार युद्धक्षेत्र के किसी भाग में प्रारम्भ हुआ है और बाद में एक वटवृक्ष के अधोभाग में स्थानान्तरित हो गया है। चतुर्थ अङ्क में वस्तुतः कोई नाट्य-व्यापार नहीं है लेकिन प्रारम्भ में अङ्क का दृश्य स्थल युद्ध-क्षेत्र है और बाद में दृश्य-स्थल वहाँ से कुछ दूर स्थित कोई सघन छाया वाला वटवृक्ष हो गया है, जो सम्भवतः तृतीय अङ्क में उल्लिखित वटवृक्ष ही है। पञ्चम अङ्क के व्यापार का स्थान भी यही वटवृक्ष है। छठे अङ्क के व्यापार का केन्द्रस्थान युद्धभूमि से कुछ दूरी पर स्थित युधिष्ठिर का शिविर है। इस प्रकार नाटक के व्यापार का दृश्य-स्थल युद्धभूमि, दुर्योधन का राजमहल और उनके ही समीपवर्ती अन्य स्थान हैं। नाटक के व्यापार के दृश्य-स्थलों में ऐसी दूरी अथवा विषमता नहीं है जिसके कारण नाटकीय व्यापार में या उसके प्रभाव में बाधा पड़े।

वेणीसंहार नाटक की घटनाओं का समय और अवधि—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नाटक की कथावस्तु में १८ दिन चलने वाले महाभारत-युद्ध की घटनाओं का समावेश हुआ है। नाटक के प्रारम्भ में कृष्ण द्वारा सन्धि कराने के प्रयत्न का उल्लेख हुआ है। सन्धि कराने के प्रयत्न की घटना वास्तविक युद्ध प्रारम्भ होने से एक या दो मास पूर्व हुई होगी। महाभारत के

अनुसार कुछ महत्त्वपूर्ण दिन बताए गए हैं। इन प्रकार कागज में निर्दिष्ट समय निर्दिष्ट घटनाओं का समय समझने में मदद मिलेगी। निर्दिष्ट माहों में इन घटनाओं को बार-बार की अवधि में निर्दिष्ट कर दिया है।

प्रथम अष्टक चौथे माहों की शुरुआत में निर्दिष्ट करने के लिए कुछ समय में हुए इष्ट के समाचार तथा दुर्घटनाओं द्वारा निर्दिष्ट करने वाले अनेक माहों के समय में जोड़ाविष्ट भीमकेन के रज्जुमय पर प्रवेश के आरम्भ होता है। तथा दुर्घटना द्वारा की गई युद्ध-भोगना पर समाप्त होता है। इन प्रकार प्रथम अष्टक महाभारत युद्ध के प्रथम दिन की घटनाओं का निर्दिष्ट है।

द्वितीय अष्टक का व्यापार भीम तथा अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् प्रारम्भ होता है। महाभारत के अनुसार भीम और अभिमन्यु का वध क्रमशः युद्ध के १०वें और ११वें दिन हुआ था। इन प्रकार द्वितीय अष्टक में महाभारत युद्ध के १४वें दिन की घटनाओं का समावेश हुआ है।

तृतीय अष्टक का व्यापार पटोमन्थ की मृत्यु के पश्चात् उक्त दिन प्रारम्भ हुआ है जिस दिन शेष का वध हुआ था। महाभारत के अनुसार यह घटना युद्ध के १५वें दिन हुई थी। इन प्रकार द्वितीय और तृतीय अष्टक की घटनाएँ लगातार दिनों की घटनाएँ हैं। अतः और पञ्चम अष्टक में भी उन्नीस दिन की घटनाएँ हैं।

षष्ठ अष्टक में उल्लिखित घटना, साकृति और दुर्घटना के वध की घटना महाभारत युद्ध के १८वें दिन हुई थी। इसलिये पाचवें और छठे अष्टक की घटनाओं में दो दिन का मध्यान्तर समझना चाहिये।

इस प्रकार नाटक में महाभारत युद्ध की पहले, चौदहवें, पन्द्रहवें और अठारहवें दिन की घटनाओं का समावेश किया गया है। प्रथम अष्टक की घटना का समय युद्ध के प्रथम दिन का पूर्वार्द्ध है और व्यापार की अवधि लगभग प्रातः ८ बजे से ११ बजे तक रही होगी। द्वितीय अष्टक की घटना का समय युद्ध के १४वें दिन का पूर्वार्द्ध है और अवधि लगभग प्रातः ८ बजे से ११ बजे तक। तृतीय अष्टक की घटना का समय युद्ध के १५वें दिन का मध्यार्द्ध है।

४ अष्टक की घटना का समय उन्नीस दिन का अपराह्न भाग है और पञ्चम

का समय उसी दिन की सन्ध्या है । पष्ठ अङ्क की घटना का समय पुनः १५वें दिन का उत्तरार्ध है ।

कवि ने एक अङ्क में एक दिन से अधिक की घटनाओं का समावेश के 'कालगत अन्विति' (Unity of time) का पूरा पूरा पालन किया है ।

### (५) वेणीसंहार का नाट्यशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण

संस्कृत नाट्यों के प्रकार—संस्कृत काव्यों का प्रयोग की दृष्टि से हृदय और अङ्ग दो भेदों में विभाजन किया गया है ।<sup>१</sup> हृदय काव्यों को नाट्य, रूपक भी कहा गया है ।<sup>२</sup> हृदय काव्यों के लिये आत्रवत्त हिन्दी भाषा एक शब्द प्रचलित है, परन्तु संस्कृत के नाट्यशास्त्र काव्यशास्त्री ग्रन्थों में नाट्य और हृदय काव्य के एक विशेष प्रकार के लिये प्रयुक्त हुआ है । हृदय-काव्य फिर रूपक और उपरूपक दो भेद किये गये हैं । संस्कृत के नाट्यों का अर्थ रस माना गया है और उनके वस्तु (कथानक), नेपा (नायक) और र के आधार पर और आगे उप-भेद किये गये हैं । रूपक के १० और उपरूपक के १८ प्रकार होते हैं ।<sup>३</sup>

संस्कृत नाट्यों का रचना-विधान (Structure of Sanskrit Dramas)—संस्कृत नाट्यों की सादा रचना लगभग एक ही प्रकार की है

हृदयव्यवहारभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् । साहित्य दर्पण, ६।१

अवस्थानुहतिर्नाट्यं रूपं हृदयतयोपपत्तेः ।

रूपकं तत्तन्मारीणां दशधैव रसाध्ययम् ॥ दशरूपक १।७

नाटकमयं प्रकरणं भाग्यव्यायोगसमवधारद्विधाः ।

ईहामृताद्भुतीश्वरः प्रहसनमिति रूपकानि दश ॥

नाटिका चोटकं षोडशी सट्टकं नाट्यरामकम् ।

प्रस्थानोद्गायककाव्यानि प्रेक्ष्यं चोत्तरं तथा ॥

सनापकं योगदितं धिस्तकं च विलासिका ।

दुर्मेलिका प्रकरणी हस्तीचो भानिनेति च ॥

• प्राहुरूपकाणि मनीषिणः ।

सर्वेषां सद्यः नाटककम्मतम् ॥ साहित्य दर्पण ६।१-६

संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ नाट्यी (नाट्यशास्त्र) में होता है। नाटक के रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत करने समय नर्तकों का स्तब्ध हो जाने का निमित्त की जाति के विने पुत्रों का विनाश होता गया है। इसे पूर्णरूप में कहा जाता है।<sup>१</sup> के पश्चात् गृध्रपाद अथवा नागमन स्थापक कवि तथा कृति का वर्णित है और प्रायः नाटक के प्रयोग के समय की भी सूचना देता है।<sup>२</sup> वह नर्तक पारिवारिक या मार्ग का विद्वान् के साथ कर्त्ताव्य में विनोदित हुआ कि वस्तु अथवा विनी प्रमुख पात्र की सूचना दे देता है।<sup>३</sup> गृध्रपाद के दृश्य का नाम को नाट्य-शास्त्र के पाठों में आनुग या प्रत्यावर्तन कहते हैं।

वस्तुतः नाट्य-व्यापार प्रत्यावर्तन के पश्चात् प्रारम्भ होता है।<sup>४</sup> व्यापार से सम्बद्ध घटनाओं को दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। घटना तरल और मुख्य पात्र (नायक) से सम्बद्ध होती है और विनोद व रङ्गमञ्च पर अभिनय किया जाता है, उभरा समावेश अङ्क में किया जाता एक अङ्क में प्रायः नायक से सम्बद्ध एक दिन की घटना रखी जाती है परन्तु जो घटना नीरस, अङ्क में अदर्शनीय तथा अधिक समय तक घटने ल होती है अथवा जब दो अङ्कों में निवृत्ति की गई घटनाओं के मध्य अधिक ल अवधि का अन्तर होता है तो उनकी वेदमञ्च सूचना दे दी जाती है।<sup>५</sup> प्रकार घटनाओं की सूचना नाटक के विनाश भाग में दी जाती है, 'अर्घोपक्षेपक' कहते हैं।<sup>६</sup> यदि मूल से ही प्रारम्भ कथा प्रारम्भ हो जाती है

१ साहित्य दर्पण ६।२२; दशरूपक ३।२

२ केवल भास के नाटक और दक्षिणी भारत में प्राप्त कुछ अन्य नाटकों पाण्डुलिपियाँ इसके अपवाद हैं।

३ दशरूपक ३।३-८; साहित्य दर्पण ६।२७, २८, ३१, ३२

४ दशरूपक ३।३६, ३७

५ साहित्य दर्पण ६।२१, २२

६ अर्घोपक्षेपक २ प्रकार के होते हैं— विष्कम्भक, प्रवेशक, चूल्हा अङ्कावतार और अङ्कमुख (अङ्कात्म्य)। अर्घोपक्षेपक के दो भेद पात्रों की कवि, नाट्यशास्त्र में स्थिति और अङ्क से सम्बन्ध के आधार पर मिले हैं। देखिये, साहित्यदर्पण ६।२४-६०

स्तावना के तुरन्त बाद अङ्क रखा जाता है। लेकिन यदि अभिनेय घटना परिस्थितियों को मुखोप बनाने के लिये कुछ पूर्ववर्ती घटनाओं की सूचना आवश्यक होती है तो प्रस्तावना और प्रथम अङ्क के मध्य में विष्कम्भक की योजना की जाती है। प्रथम अङ्क के आदि में आवश्यकतानुसार केवल विष्कम्भक का ही प्रयोग किया जाता है। दो अङ्कों के मध्य में विष्कम्भक या अन्य अर्थोपक्षेपकों—अधिकतर प्रवेशक—का प्रयोग किया जाता है।

वैलीसंहार में प्रस्तावना के तुरन्त बाद प्रथम अङ्क प्रारम्भ हो जाता है। इस विष्कम्भक के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती है। प्रथम और द्वितीय अङ्क के मध्य में विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है और द्वितीय तथा तृतीय अङ्क के बीच में प्रवेशक का। दोप अङ्कों के मध्य कोई अर्थोपक्षेपक नहीं रखा गया है।

संस्कृत के कुछ नाटकों में अङ्क के मध्य में मुख्य पात्र के चरित से सम्बद्ध विघटनाओं को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है (उदा०, उत्तररामचरित सप्तम अङ्क, प्रियदर्शिका तृतीय अङ्क)। अङ्क में आये नाटक को 'महाङ्क' कहते हैं।

संस्कृत के प्रत्येक नाटक का अन्त भी, प्रारम्भ के समान, पद्यमय शीर्षचन से होता है, जिसमें लोक अथवा आद्यवदाता राजा या स्वयं कवि 'कल्पाय' की कामना प्रकट की जाती है। पारिभाषिक शब्दों में इस पद्य को 'रत्नवाचय' कहते हैं।

संस्कृत नाटकों में भाषाओं की विविधता। संस्कृत नाटकों में एक अन्य विशेषता यह भी है कि उनमें संस्कृत के अतिरिक्त कई प्रकार की प्राकृतों का उल्लेख किया जाता है। नाट्य-शास्त्र के नियमों के अनुसार राजा, देव, मन्त्री, ह्युग आदि उत्तम पात्रों की भाषा संस्कृत होती है और अन्य पात्रों की भाषा कुल। उत्तम स्त्री पात्रों की भाषा शायः शौरसेनी होती है और नीच पात्रों की भाषा मागधी। पद्य में शौरसेनी-प्राकृत-भाषी पात्रों को महाराष्ट्री प्राकृत के प्रयोग विधान है। जो नीच पात्र जिस देश का हो, उसे उस देश की भाषा बोलने विधान किया गया है।<sup>१</sup>

---

१ जानकारी के लिये साहित्यदर्पण, ६।१५८-१६६ देखिये।



धारणा की दृष्टि में संसार का विभाजन—सङ्गमज्ज की भाँति

विचार में पापों के संसार को संसार के भागों पर भी इस प्रकार से किया जाता है। जो कचन मज्ज पर उल्लिखित सब पापों तथा पापान्त्रियों को गुप्ताने का होता है उसे सर्वभाष्य वा 'अवधार्य' व संस्कृत भाषाओं में लेने संसार में पहले 'अवधार्यम्' मद् सङ्गमज्ज नि होता है। (उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० २१)। जो कचन किसी को का नहीं होता, उसे अवधार्य वा 'अवधार्यम्' कहते हैं।<sup>१</sup> २ में पहले 'अवधार्यम्' वा 'अवधार्यम्' मद् सङ्गमज्ज निर्देश दिया रहता संवाद निवर्तमान होता है। निवर्तमान की प्रकाश का होता है—

(१) अवधार्य और (२) अवधार्य।

जब 'निवर्तमान' पर में अवधार्य पापों को हटाकर दो पाप वर्गों परस्पर सम्मिलित करते हैं, उसे 'अवधार्य' कहा जाता है।<sup>२</sup> ऐसे पहले 'अवधार्य' वा 'अवधार्यम्' निर्देश दिया होता है। जब कोई और को मुझपर या दूसरे स्थान पर आकर किसी दूसरे पाप का रा करता है, उसे 'अवधार्य' कहते हैं<sup>३</sup> और ऐसे कचन से पहले 'सा' वा 'अवधार्य' निर्देश दिया रहता है।<sup>४</sup>

कुछ संस्कृत भाषाओं में ऐसा भी पाया जाता है कि कोई पाप र

१ सर्वभाष्यं प्रवृत्तं स्यात् । साहित्यदर्पण ६।१३८

२ अवधार्यं यत्तु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम् । साहित्यदर्पण ६।१३७

३ उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० २१९ पर अवधार्यता की उक्ति।

४ उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० २२ पर सङ्गमज्ज की उक्ति।

५ निवर्तमानकरणान्तरावधार्यान्तरा कथाम् ।

अन्योन्यामन्वयं यस्याजनान्ते अवधार्यम् ॥ साहित्यदर्पण ६।१

६ उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० २४ पर शीपदी की उक्ति।

७ " " " " सङ्गमज्जपरिचितम् ।<sup>५</sup>

रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्त्य प्रकाशयते ॥ साहित्यदर्पण ६।१३८

उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० २२ पर।

ताज के बिना ही आवाज की ओर मुन उठाकर प्रश्नोत्तर करता है । इस  
के प्रश्नोत्तरात्मक संवाद को 'आवाजभाषितम्' कहते हैं और संवाद में  
'आवाजभाषितम्' या 'आवाजे' निर्देश मिलता रहता है ।<sup>१</sup>

लोसंहार : नाटक, कथक का एक भेद — वेणीसंहार कर्कों के एक भेद  
की कोटि में आता है । कवि ने स्वयं वेणीसंहार को नाटक कहा है ।  
शास्त्रियों के अनुसार नाटक का कृत स्वात होता है । नायक धीरोदात्त  
है और कोई एक रस भङ्गी होता है । यद्यपि कुछ नाट्यशास्त्रियों  
का मत यह है कि नाटक में भङ्गार भयवा और रस  
अन्यतर मुख्य होना चाहिये, लेकिन सब नाट्यशास्त्री इस मत से सहमत  
हैं, क्योंकि यदि इस सिद्धान्त को अस्वीकार कर लिया जाय तो  
रसमभरित' आदि नाटकों की खेती में नहीं जा सकेंगे । आनन्दवर्धन  
स्वीकार किया है कि नाटक में किसी एक रस की प्रधानता होनी  
चहिये ।<sup>२</sup> नाटक पाँचों छन्दों से युक्त होता है । नाटक में कम से कम पाँच  
अधिक से अधिक रस भङ्ग होते हैं । विष्णुनाथ ने साहित्यदर्पण में नाटक  
तत्त्वज्ञान इस प्रकार दिया है—

नाटकं स्वातकृतं स्वातस्त्रयगुणसमन्वितम् ।

वितासदर्पादिगुणवद् भूतं नानाविभूतिभिः ॥

मुक्चदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।

पञ्चाङ्गिका दशपरिवास्तथाङ्काः परिवीरिताः ॥

किं वरीवीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते ।

धुत्वेवानुक्तमन्यथै सत्सयादाकाशभाषितम् ॥ साहित्यदर्पण ६।१४०  
उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० ४६ और २३६ पर कञ्चुकी की उक्ति में  
तर्दिर्द कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृति वेणीसंहारं नाम नाट्यं  
प्रयोज्यमुच्यते ॥ वेणीसंहार पृ० =

एक एक भवेदङ्गी भङ्गारो और एक ना । साहित्यदर्पण ६।१०

प्रसिद्धेऽपि प्रवक्ष्याना नानारसनिरन्धने ।

एको रसोऽङ्गीकृतं ग्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ॥ ध्वन्यालोक १।२१

प्रधानवर्गो शब्दविधीभोजनं चकारान् ।

दिग्दोष विचारितो वा दृष्टव्योऽसौ सः ॥

एक एव प्रवेश्यो भूक्तो नीर एव वा ।

अन्नमपि रसा न चैकादो विधीभोजनम् ॥

—रसाः पञ्च वा दृष्टा न्याय्यगुणगुणाः ।

गोप्यप्राप्तमात्रं तु भक्षणं नय नीतिनम् ॥ ३१७-११

वेणीसंहार की कथावस्तु महाप्रारम्भ में ली गई है। नाट्यगीत गुम्फिर धीरोदात्त नायक है, और प्रधान रस १<sup>२</sup> एक स्वयं पौरो मन्त्र से युक्त है और ६ अङ्गों में समाप्त हुआ है। वेणीसंहार में और रस अतिरिक्त कथन, भूक्तार और भीमका रसों को भी अभिव्यक्ति हुई है। १ प्रकार वेणीसंहार में नाटक के प्रायः सभी संशय घटने हैं।

वेणीसंहार में अर्थप्रवृत्ति, अवस्था और मन्त्र का विचार—पहले कहा जाता है कि सशक्त स्वयं का आशय रस होता है। रस की अभिव्यक्ति लिये किसी तरह कथा का महाराज लिया जाना है। स्वयं की कथा और रस में गति तथा सहृदय की उत्पत्ति बनाये रखने के लिये नाटककार को कथावस्तु के क्रमिक विकास और सुश्रुतिता की ओर भी ध्यान रखना होता है रस और कथा (वृत्त) दोनों के सम्यक् विकास के प्रयोजन से नाटककारों मार्गप्रदर्शन के लिये अर्थप्रवृत्ति, कथावस्था और मन्त्र तथा मन्त्रों<sup>३</sup> विचार किया गया है, जिससे कवि उन्हें जानकर रसाभिव्यक्ति के लिये उचित यथावयव संनिवेश कर सकें।<sup>३</sup>

किसी नाटक की कथावस्तु की घटनाओं दो प्रकार की होती हैं—

(१) आधिकारिक, (२) प्रासङ्गिक। मुख्य घटनाओं को, जो अधिक

१ आगे 'वेणीसंहार का नायक' दीर्घक देखिये।

२ 'वेणीसंहार का मुख्य रस' दीर्घक देखिये।

३ रसव्यक्तिमपेक्ष्यधामज्जाना संनिवेशनम्।

न तु केवलया शास्त्रस्थितिसंपादनेच्छया ॥ साहित्यदर्पण ६।१२०

एतन्नाति) अथवा अधिकारी से सम्बन्ध होती है, आधिकारिक कहते हैं ।  
 अधिकारिक कृत के पुनः तीन भाग होते हैं— (१) बीज, (२) विन्दु और  
 (३) कार्य । प्रागैहिक कृत भी दो प्रकार का होता है— (१) पताका, जो  
 न नाटक से वर्षात् दूर तक चलता है, (२) प्रकरी, जो कृत केवल एक भाग  
 तक चलता है । कार्य (प्रयोजन) की लक्षणा से बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी  
 और कार्य इन पाँच को 'अर्थ-सूक्ति' कहा जाता है । पताका और प्रकरी का  
 रसक कणक में होना अनिवार्य नहीं है ।

कार्य का हेतुभूत जो कृत होता ता वह दिया जाता है, वह बीज के  
 भाग अनेक प्रकार से विस्तार पाया होता है, इसलिये 'बीज' कहा जाता है ।  
 शीतलहार नाटक में शीतली के वेशसमयन रूप कार्य का हेतु प्रथम अङ्क में  
 अनिरुद्ध भीमसेन के शोध से उपनिषद् युधिष्ठिर का उत्साह जो अङ्क १  
 श्लोक २४ में अभिव्यक्त हुआ है, 'बीज' है । अवान्तर प्रयोजन की सम्पत्ति पर  
 प्रप्त होती हुई कथा को जोड़ने वाले भाग को 'विन्दु' कहते हैं । वेणीसंहार  
 में द्वितीय अङ्क में दुर्घोषन की शृङ्गार-वेष्टाओं से विच्छिन्न होता हुआ मुख्य-  
 नायक दुःसला और जयदल की माता के प्रवेश से पुनः युक्त जाता है, क्योंकि

अधिकारः कलसाम्बमधिकारी च सत्प्रभुः ।

सविभुसमधिकारिण कृतं स्वादाधिकारिकम् ॥ दशरूपक १।१२

बीज, विन्दु और कार्य को यद्यपि किसी नाटकनाटक सम्बन्धी ग्रन्थ में स्पष्ट  
 रूप से आधिकारिक कृत नहीं कहा गया है, परन्तु ये कृत के भाग ही  
 प्रतीत होते हैं ।

बीजविन्दुपताकाप्रकरीकार्यसप्तधाः ।

अर्थप्रवृत्तयः पञ्च ता एताः परिवीक्षिताः ॥ दशरूपक १।१३

अल्पमात्र समुद्दिष्ट बहुधा वदिसर्पति ।

पलस्य प्रथमो हेतुर्वीजं तथामिषीयवे ॥ साहित्यदर्पण, ६।६५-६६

यथा च वेणीसंहारे शीतलीवेशसमयनहेतुर्धर्मप्रोक्षोषभित्तुधिष्ठिरोत्साहो  
 बीजम् । दशरूपक १।१७ पर चर्चक की टीका ।

अवान्तरार्थविन्दोरे विन्दुरन्धेदकारणम् । दशरूपक, १।१७

वागोदान की वदना के कारण गार्डन का पालन पुत्र की प्रगति से हुट्ट है परन्तु जगद्वय की माता द्वारा सर्वज्ञ की वदना वप की प्रगति का न करने से गार्डन का पालन पुत्र पुत्र की वदनाओं की ओर निरन्तर दृष्टिसे द्वितीय अष्ट में पुत्रपत्नी और जगद्वय की माता के हाथ की गमयता चालिसे ।<sup>१</sup> साहित्यदर्पणकार के अनुसार वेणीसंहार में भीव का चरित वर्णन है ।<sup>२</sup> तृतीय अष्ट में अरन्धता का शोक तथा नि और उगता वपु के साथ वपु की 'पताका' कहा जा सकता है, जो मुख्य अन्तर्गत की प्रगति से वह प्रासङ्गिक वृत्त ही है । चतुर्थ अष्ट में पुत्र के पुत्र-प्राप्तन की भी 'पताका' से सम्मिलित किया जा सकता है । पञ्चम में धुनराष्ट्र द्वारा दुर्वोधन की लक्ष्य के लिये गमयता और वपु अष्ट चार्याक का रूप 'प्रकरी' कहा जा सकता है । वेणीसंहार में दुर्वोधन का 'कार्य' है, जिसकी सूचना वपु अष्ट के श्लोक ३७ में दी गई है ।

फलाधी द्वारा प्रारम्भ कार्य की पाँच अवस्थाएँ होती हैं—(१) आरम्भ (२) यत्न, (३) प्राप्तिप्राप्ता, (४) नियतापत्ति और (५) फलागम ।<sup>३</sup> कार्य । पहली अवस्था 'आरम्भ' होती है, जिसमें दय-प्राप्ति की इच्छा प्रकट जाती है ।<sup>४</sup> वेणीसंहार में कार्य की 'आरम्भ' अवस्था भीमसेन की 'चञ्चलपु भ्रमिस्तपण्ड' इत्यादि चित्तियों में परिलक्षित होती है । कार्य की दूसरी अवस्था 'यत्न' है । यत्न की प्राप्ति न होने पर उसे प्राप्त करने के निदेश

१ मिलाइये, ए० बी० गजेन्द्रगडकर, दी वेणीसंहारः ए क्रिटिकल् स्टडी पृ० ११६ । -

२ व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते ।

यथा—रामचरिते सुभीवादे, वेण्यां भीमादे; वाकुन्तसे विद्रुपकस्य चरितम् साहित्यदर्पण ६।६७ ab और वृत्ति ।

३ अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारम्भस्य फलाभिनिः ।

आरम्भयत्नप्राप्तिप्राप्तानियतापत्तिफलागमः ॥ दशरूपक, १।१६

४ भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये । साहित्यदर्पण, ६।७१

उपाय विद्या जाता है, उसे 'प्रदान' या 'प्रदान' कहते हैं ।<sup>१</sup> वेणीसहार में  
इलीय अक्षु में अष्टम की माता द्वारा कल्पित पाण्डवों, विद्योपन अर्जुन, का  
राक्षस कार्य की 'प्रदान' अवस्था है । 'प्राप्त्याया' या 'प्राप्तिमय' कार्य की  
इलीय अवस्था है, जिसमें पञ्च-प्राप्ति के उपाय और उपाय माने गये विद्या  
का विचार करने पर पञ्च की प्राप्ति सम्भव प्रतीत होने लगे ।<sup>२</sup> वेणीसहार  
पृ० ११४ पर भीमसेन की 'मोक्ष मद्भुजपञ्चरे . निपत्तिः सरस्वती कीरतः'  
इति उक्ति, पृ० ११९ पर अदवायाया की 'सर्वथा वीर्यं दुःसामयानां नित्यं भीमिन'  
इति उक्ति और पञ्च अक्षु में दशक २, ३, ४ और ६ में दुर्योधन की मृत्यु  
की सम्भावना कार्य की 'प्राप्त्याया' अवस्था है । जब अपाय के दूर हो जाने  
पर पञ्च-प्राप्ति निश्चित हो जाती है, तो वह कार्य की 'निपत्ति' अवस्था  
है ।<sup>३</sup> वेणीसहार में अपाय में छिपे हुए दुर्योधन का पना मग जाने पर  
राक्षस द्वारा भेजा गया कृष्ण का सन्देश और युधिष्ठिर द्वारा समारम्भ की  
दौरी का आदेश (पृ० २३४, २३९) कार्य की 'निपत्ति' अवस्था की  
सूचित करता है । जब समस्त पञ्च-प्राप्ति हो जाये, कार्य की उत्तम अवस्था की  
'पञ्चायम' या 'पञ्चयोग' कहते हैं ।<sup>४</sup> वेणीसहार में दौरी का वेश-समय  
कार्य की 'पञ्चायम' अवस्था है, जिसका पृ० २८२-८३ पर दशक संख्या ४२  
में उल्लेख हुआ है ।

पञ्च अर्थ-प्रकृति और पञ्च कार्यविशेषों को ध्यानकर उनके आधार पर  
नाट्य-शरीर का एक तीखे प्रकार में विभागीकरण किया गया है, जिसे सन्धि  
कहते हैं ।<sup>५</sup> एक सन्धि में एक प्रयोजन से अन्वित कथाओं का एक अवान्तर

१ प्रदानस्तु कलावासी व्यापारोऽतिस्वराम्भितः । साहित्यदर्पण, १।७२

२ उपायापायद्वयम्या प्राप्त्याया प्राप्तिमयः । दशरूपक, १।२१

३ अयायाभावतः प्राप्तिनिपत्तिः सुनिश्चिता । दशरूपक १।२१

४ सावस्था पञ्चयोगः स्याद् यः समस्तकलोदयः । साहित्यदर्पण १।७३

५ अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थापञ्चविधाः ।

दयामध्येन जायते मुखाद्याः पञ्च सन्धयः ॥

अन्तरेकार्यसम्बन्धः सन्धिरैवान्वये सति । दशरूपक १।२२-२३



प्रथम अङ्क में भीम की भावना एवं उल्लाह में पूर्ण  
 भट्टनारायण ने विरोधी परिस्थितियों के समर्थ की योजना में नाटक में  
 सहायता माँगी है । प्रथम अङ्क में भीम की जोधपूरा वृत्तियों और  
 मान-अन्ध को बनाहट के विराध में युधिष्ठिर की शिवरता और साहि-  
 त्य नाटक को उल्लेखनापूर्ण परिस्थिति में साहि-सावध सिद्ध होनी है ।  
 जोधी परिस्थितियों का यह समर्थ ही नाटक का आन है, जिसमें नाटक  
 म-विधोर हो जाता है । द्वितीय अङ्क भी प्रथम अङ्क के विरोध में ही  
 आ गया है । तृतीय अङ्क में भीम, कश्यप और वीररत्न को एक दूसरे के  
 दोष में रक्खा गया है । इसी प्रकार पञ्चम अङ्क में कश्यप और वीर का  
 प्रण हुआ है ।

भट्टनारायण ने प्रथम और द्वितीय दोनों ही अङ्कों में बड़ी चतुरता में  
 मन्त्र पर दोहरे दृश्य की योजना की है । प्रथम अङ्क में शीघरी रत्नमञ्च  
 प्रविष्ट भीम और सहदेव के वार्तालाप को सुनती है और भीम के  
 प्रविष्ट होने पर प्रथम होनी है । द्वितीय अङ्क में दुर्वाचन मानुमनी और  
 की गन्धी के वार्तालाप को सुनकर मन्त्र के प्रसन्न को माझी-पुत्र पाण्डव  
 मन्त्र गमककर कोषावेष्ट में आकर मानुमनी को दण्ड देने का निश्चय  
 ला है, परन्तु भीमार्थ से उगे मन्त्रस्थिति का पना चल जाता है और एक  
 ही दुर्घटना होने से क्षान-क्षान बच जाती है । नाटक रसाचित् दुर्वाचन के  
 दोष भी—

दिष्ट्यार्थश्रुतविप्रलम्भजनितकोषारहं नो गतो

दिष्ट्या नो परधं स्वार्थकथने किञ्चिन्मया ध्याद्वतम् ।

नो प्रत्यापयितुं विमूढदूरधं दिष्ट्या कथान्तं यता

मिम्यानुविनयानया विरहितं दिष्ट्या न नार्तं यम् ॥

वेणीसंहार २।१२



इन शब्दों में सन्तोष का अनुभव रहेगा ।

द्वितीय अङ्क स्वयं में यद्यपि महान् नाटकीय सम्भावनाओं से भरपूर परन्तु मुख्य नाटकीय व्यापार की गति और प्रभाव देने की दृष्टि में कुछ भी महत्त्व नहीं है, प्रत्युत युद्ध-व्यापार की पृष्ठ-भूमि में, जो कि न के समग्र शरीर में ओत-प्रोत है, दुर्योधन की वाप चेष्टायें सर्वथा अनर्ग हैं । प्राचीन नाट्य-शास्त्रियों ने भी बेलीमहार के इस स्थल को 'अकाण्ड-श' नामक रस-दोष के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है ।

रस की अभिव्यक्ति, संवादों की चुरता और चरित्र-चित्रण में उभार दृष्टि से यही बात बेलीमहार के तृतीय तथा पञ्चम अङ्कों के विषय में जा सकती है । तृतीय और पञ्चम अङ्क स्वयं में सुन्दर नाट्य कृति हैं, परन्तु मुख्य व्यापार की प्रगति के विचार से ये दोनों ही अङ्क निरर्थक हैं ।

चतुर्थ अङ्क को किसी भी प्रकार स्थापनीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह अब सुन्दर के लम्बे २ नीरस संवादों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । यह अङ्क नाटकीयता की सम्भावनाओं से सर्वथा शून्य है ।

षष्ठ अङ्क युधिष्ठिर के भ्रातृ-श्रेम और बन्धु-रत्न की अभिव्यक्ति दृष्टि में प्रगमनीय है । यह अङ्क नाटकीय व्यापार से भी भरपूर है । किराचारिक के हृदय की अवनारम्भा से मुख्य व्यापार की परिणति में अन्तर्गत वाता उपस्थित की गई है ।

• बेलीमहार में नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन—जैसा कि पहले लिखा गया है कि बेलीमहार नाट्य-शास्त्र तथा अलंकार-शास्त्र के लक्षणों का अभिव्यक्ति प्राप्त है । इनमें यह महत्त्व ही अनुमान किया जा सकता है कि बेलीमहार में नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन से पालन किया गया होगा । यद्यपि यह विचार है कि बेलीमहार नाटकीय नियमों को ध्यान में रखकर लिखा गया है । परन्तु नाटकीय नियमों को विशेष ध्यान में रखते हुए ही यह नाट्य नाटकीय नाटकीयता से रहित हो गया है ।

[illegible]

केजीमंदार की भाषा और शैली—केजीमंदार गद्य में कृत्रिम लक्ष्य का साहचर्य है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि अट्टनारायण अपने प्रशस्तिपत्रों के अनुगुण कृत्रिम शैली का अनुसरण करना। अट्टनारायण की भी उनके समकालीन वशिष्ठभूति के समान है। अट्टनारायण ने ओजपूर्ण समास-बहुवचनी, प्रवादकृत्यपूर्ण समास-रहित चर्चाओं और मध्यममात्रावादी शीलों रीतियों का प्रयोग किया है। (ऊपर पृ० XV भी देखिए)

बेनीमहार में अरिच-बिरय—मट्ठापायस में बेनीमहार में अरिच-  
की बत्ता में मिद्धहृन्ना का अरिचय दिया है । यद्यपि उसके पास मट्ठा



भीम के मुखाबले में दुर्योधन भी कोई कम बर्णित और रोपपूर्ण नहीं है।  
 दृढनारायण ने दुर्योधन का चरित्र-चित्रण करने में और उसके अनेक रूपों का  
 दर्शन करने में अधिक प्रयत्न किया है। द्वितीय अङ्क में जहाँ हमें दुर्योधन के  
 इङ्गारी रूप का दर्शन होता है, वही उसके विपत्ति में भी अत्यन्त और अपने  
 स्व के गर्वित और रूप का भी दर्शन होता है। स्वप्न-दर्शन एवं ध्वजमङ्गल के  
 पदोक्त से आशङ्कित धानुमती को आश्चर्य करते हुये यह बहता है— 'स्व-  
 योधनकेसरीन्द्रशृङ्गिणी धाङ्कास्पद कि तव'।<sup>१</sup> दुर्योधन सबकुछ ही वीर-सिंह है।  
 वह अपने धनु का प्रत्यक्ष में ही अहित करना चाहता है।<sup>२</sup> भीम द्वारा यह  
 स्ताव करने पर कि वह शस्त्र धारण करके कोई-ये भी पाण्डव से द्वन्द्व युद्ध कर  
 जाता है, वह प्रियसाहस भीमसेन से ही युद्ध की याँग करता है— 'कण-  
 धासनवधात्सुखावेव युष्मि मम । अश्रियोऽरि शिरो मोदु स्वमेव प्रियसाहसः ॥'  
 बेलीसंहार १।११)। दुर्योधन केवलमात्र बर्णित एवं अभिमानी नामक ही  
 नहीं है, उसके जीवन का एक अन्य कोमल रूप भी बेलीसंहार में प्रस्तुति  
 आता है। वह एक सच्चा और भावुक मित्र भी है। वह भङ्गराज कर्ण का  
 मित्र मित्र है और मित्र की विपत्ति उसे अपनी विपत्ति अनुभव होती है।  
 वह कर्ण की मृत्यु होने पर अपने प्रिय अनुज दुर्वायन के वध को भी भूलकर  
 अपने मित्र के घातक के कुल को नष्ट करने का निश्चय करता है।<sup>३</sup>

१. बेलीसंहार, २।१६

२. प्रत्यक्ष हतवान्धवा मम परे हन्तु न योग्या रहः ।

किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यत्न प्रयासं रणे ॥ बेलीसंहार ५.६

३. क्षोधाभि योच्यमपि सनुहन् न वसत,

दुःशासनं तमघुना न च वन्धुवर्गम् ।

येनातिदुःपवमसाधु इतं नु कर्णो,

वर्णीमि तस्य निघ्नं समरे कुलस्य ॥ बेलीसंहार २।१६



। वह द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन के मन की द्रोण और अश्वत्थामा के प्रति विपात्त कर देता है ।

। चुराष्ट्र एक पुत्र वरमन पिता है । वह युद्ध में पराजय और पुत्र-विनाश को देखकर अपने एवमात्र अविग्रित 'त्र दुर्योधन को बचा लेने के लिये उसे दुष्टिष्ठिर से संधि कर लेने की मन्नट उता है । जब दुर्योधन सन्धि के प्रस्ताव से सहमत नहीं होता है तो चुराष्ट्र उसे सत्रु के प्रति कण्ट का अवलम्बन करने का सुभाष देने में भी सफल नहीं करता ।

द्रौपदी रोष<sup>१</sup> और प्रतिमोघ की भावना में भरी हुई क्षत्राणी है, जिसे दुष्टिष्ठिर के सन्धि प्रस्ताव और भी उत्तेजित कर देते हैं । उसी अवधान के अन्तर्गत को पार करने में एवमात्र भूमि का सफारा प्रतीत होता है । बेलीसंहार में द्रौपदी का दूसरा रूप— पति की सुरक्षा के विषय में स्त्री-सुलभ सहज आशंका और पनि-प्रेम भी प्रकट हुआ है ।

। भानुमती एक आदर्श हिन्दू स्त्री के रूप में चित्रित की गई है । वह केवल सुन्दरी ही नहीं है, अतिसद्गुणिनी भी है । पनि की विजय-मङ्गल की कामना के लिये वह व्रत और उपवास रखकर देवों का आराधन करना चाहती है । एक धर्मभीरु हिन्दू स्त्री के समान वह मनुष्यों और निमित्तों में विश्वास रखती है ।

गान्धारी पुत्र-वरमन माता है । उसे डभी में मनोव है कि उसका एक पुत्र तो बच जाय । पुत्र की रक्षा के सामने उसे राज्य या जय हेष है— 'स्वयं पि तावदेकोऽयमात्म्युगलरय मार्गोऽदेशक' । तस्मिन् जीव । कि मे राज्येन जयेन वा ।' (बेलीसंहार पृ० १८२) ।

बेलीसंहार का नायक— बेलीसंहार में महाभारत के कई प्रमुख पात्र नायक हैं और भट्टनारायण उनमें से किसी एक के चरित्र का इतनी प्रमुखता से विवर्ण नहीं कर सारा है कि उसे असद्विग्रह रूप से नाटक का मुख्य नायक माना जा सके । इसलिये यह प्रश्न विवादास्पद एवं जटिल हो गया है कि

येणीसंहार में मुख्य नायक कीन है। इसी और पर येणीसंहार में मुख्य नायक के दावेदार तीन व्यक्ति हो सकते हैं—दुर्योधन, भीम और युधिष्ठिर।

कवि दुर्योधन के चरित्र के विषय में विद्वेज कवेन्द्र प्रसिद्ध होता है। दुर्योधन का नाटक के प्रथम अङ्क में उल्लेख हुआ है। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम अङ्क में वह रङ्गमञ्च पर उदयित रहता है और पष्ठ अङ्क में उसका बार बार उल्लेख किया गया है। वह कीरर्षी का भूर्त्तामित्रित्व का भी है। इस प्रकार नाटक में दुर्योधन को दिये स्थान को देखो हूँ। दुर्योधन को मुख्य नायक का पद दिया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने, जो येणीसंहार को कर्ण-रस प्रधान दुःस्वप्न नाटक (tragedy) मानते हैं, दुर्योधन को येणीसंहार का मुख्य नायक मानते हैं। परन्तु दुर्योधन को मुख्य नायक मानने में भारतीय नाट्यशास्त्र के इस प्राचीन विद्वान् ने विरोध बढ़ा है कि कर्ण भी अधिकारी का वध नहीं दिखाना चाहिये, क्योंकि छठे अङ्क में दुर्योधन के वध की सूचना दी गई है।

भीमसेन भी नाटक के प्रथम, पञ्चम तथा पष्ठ अङ्क में रङ्गमञ्च पर उपस्थित रहता है। तृतीय और चतुर्थ अङ्क में भी नेपथ्य से बहो-गई उमर गवोक्तियों तथा सुन्दरक द्वारा वर्णन किये गये उसके पराक्रम से निरन्तर उसकी सत्ता का भान बना रहता है। द्वितीय अङ्क में कञ्जुड़ी के 'भजन भज भीमेन' इस वचन से पाठक का ध्यान भीम की ओर आकृष्ट होता है। नाटक

१ रामचन्द्र राव : ट्रेजेडीज् इन् सस्कृत, प्रोसीडिन्ग् आफ एट्थ् ओरियण्टल कान्फेरेन्स, १९३१ पृ० २६६ और आगे, पाण्डेय तथा ध्यास : सस्कृत साहित्य की रूपरेखा, द्वितीय संस्करण १९४८, पृ० २१३-१४।

२ अधिकारिवध कापि । दशरूपक, ३।३६; अधिकृतनामकवधं प्रवेशकादिना प न सूचयेत् । वही, घनिक की टीका ।

मुख्य प्रयोजन दोपदी का केस-संयमन भीम द्वारा ही सम्पन्न किया गया है । प्रचार भीम, दुषोघन के अनन्तर दूसरा पात्र है, जो सारे नाटक में छाया है । इस कारण प्रो० ए. बी. गजेन्द्रमहकर ने भीम को बेणीसहार का नायक माना है ।<sup>१</sup> लेकिन भीम को नाटक का मुख्य नायक स्वीकार करने की प्राचीन नाट्य सांख्यिक परम्परा भाड़े जाती है । नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों अनुसार नाटक के नायक को धीरोदात्त—महासरथ, सतिगम्भीर, क्षमावान्, विरघ्न, स्थिर, निगूढाहङ्कार और दृढवत् होना चाहिये ।<sup>२</sup> लेकिन भीम तीव्रत प्रचार का नायक है । सारा नाटक उसकी गर्वोत्तियों से गुँज रहा है । चूतराह और गान्धारी के सम्मुख भी वह बाएँ पर खड़ा रहने का प्रयत्न करता है । महाङ्कार, रोष एवं उच्छृङ्खलता उसका स्वभाव है । इसलिये भीम परम्परा के अनुसार भीमसेन को नाटक का मुख्य नायक स्वीकार नहीं जा सकता ।

अब मुख्य नायक पद का अधिकारी केवल युधिष्ठिर रह जाता है । प्राचीन नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों तथा प्राचीन अलङ्कारिकों के मत के अनुसार युधिष्ठिर । बेणीसहार का मुख्य नायक है । युधिष्ठिर धीर, प्रमान्य तथा अविचरघ्न एक है । कवि को भी बड़ाबिड़ युधिष्ठिर को ही मुख्य नायक मानना अभीष्ट है । संस्कृत नाटकों की यह परम्परा है कि नाटक के उपसंहार में अन्तिम पद की कामना 'जो प्रायः भरतनाम के रूप में होती है' मुख्य नायक के मुख पर कलाई जाती है । बेणीसहार में यह कामना युधिष्ठिर में कलाई गई है । निम्न, युद्ध की समाप्ति पर अनु-वय रूप कार्य का मुख्य-फल 'राज्य की प्राप्ति' युधिष्ठिर को होती है । युधिष्ठिर के आदेश के बिना युद्ध ही प्रारम्भ नहीं हो

१ बी बेणीसहार : ए बिटिकल स्टडी, पृ० ६२, ६३ ।

२ महासरथोर्ध्वगम्भीरः क्षमावानविरघ्नः ।

स्थिर निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढवत् ॥ दण्णवन्द्यः २



सकता था। इसलिये नाटक का मुख्य व्यापार वस्तुतः युधिष्ठिर की इच्छा अर्थात् भीम और अर्जुन आदि पाण्डव युधिष्ठिर के आदेश में ही चलता है। युधिष्ठिर को मुख्य नायक मानने में केवल एक बाधा है, और वह यह कि कवि ने युधिष्ठिर को नाटक में बहुत ही अल्प स्थान दिया है और युधिष्ठिर चरित्र के विकास की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। युधिष्ठिर का उल्लेख केवल प्रथम और पञ्चम अङ्क में हुआ है और रङ्गमञ्च पर प्रवेश तो केवल छठे अङ्क में ही हुआ है। युधिष्ठिर के प्रति किये गये इस अग्न्याय के लिये वही अमुपास-हीनता की भावना ही उत्तरदायी है।

बेनीसंहार का रस-जैसा कि पहले (पृष्ठ २५) में कहा गया है, बेनीसंहार में वीर, भीमरस, करुण और शृङ्गार रस की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। मैक्सिम बेनीसंहार के मुख्य नायक के समान, उसके मुख्य रस का प्रभुत्व विधादास्य बन गया है। प्रथम अङ्क में वीर रस की प्रधानता है तो द्वितीय अङ्क में शृङ्गार रस की। तृतीय अङ्क में वीर और भीम करुण रस समान रूप पाया जाता है। तृतीय अङ्क के प्रवेशक में भीमरस रस की भी व्यञ्जना है। चतुर्थ अङ्क में मुद्ररस के युद्ध-बर्णन में पद्यों वीरों के पराक्रम का हुआ है, मैक्सिम वृषसेन की मृत्यु और उस पर वचन और दुर्घोषन की प्रतिनिधि के बर्णन में करुण रस की प्रधानता है। पञ्चम अङ्क में धुनराष्ट्र और गान्धा के युध विजय तथा दुर्घोषन के बर्णन की मृत्यु पर किये गये शोक प्रकाशन करुण रस है, मैक्सिम अश्व के अन्त में दुर्घोषन और भीम की उत्ति-प्रत्युत्ति में वीर रस पाया जाता है। वह अश्व में करुण रस की प्रधानता है। भीम की दुर्घोषन समझ कर युद्ध करने के लिये उसने युधिष्ठिर की उत्ति-वीरता का प्रदर्शन किया। इन प्रकार बेनीसंहार नाटक में वीर और करुण रस निरन्तर चलते हैं। अन्तिम अङ्क में बेनीसंहार को करुण-रस प्रधान नाटक माना है। परन्तु

सिंहार को बीर-रस का माहव माना जाता है । कुछ आधुनिक आलोचकों ने सिंहार का झड़ी रस भी मानने हैं ।

बेनीसंहार में प्रकृति-वर्णन—बेनीसंहार में प्रकृति-वर्णन की ओर कवि का ध्यान नहीं दिया गया है । परन्तु फिर भी द्वितीय अंक में प्रधान-विराजित सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है । द्वितीय अंक में बायाँ पक्ष पर प्रकृति के बरतोर रूप का वर्णन किया है । उपयुक्त पक्षों की योजना विचारों को उद्भास देने में पूर्ण रूप से सफल नहीं है ।

बेनीसंहार में सामाजिक अवस्था—बेनीसंहार की कथावस्तु महाभारत के अन्तिम अङ्क पर आधारित है और बेनीसंहार मुख्य रूप से घटना-प्रवाह का है, इसलिये बेनीसंहार में यह माना नहीं की जा सकती कि इससे कवि समाज के सुधार की अवस्थाओं पर अधिक प्रकाश पड़ेगा । परन्तु फिर भी पद्य भाषा (द्वितीय और तृतीय अंक) से कवि के समय की सामाजिक अवस्था का कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है । आनुमती के स्वयंसेवकों की घटना से प्रतीत है कि उस समय भी समाज में, विशेषतः किशोरों में साहस और निमित्त-विचार दिया जाता था और लोगों का यह विश्वास था कि देवाराज्य के अन्तिम आदि द्वारा उनके बुरे प्रभाव को दूर किया जा सकता था । अन्तिम अङ्क से भी लोग भावी घटनाओं का अनुभव करने थे । स्वयं-सहायता का साहस समझा जाता था । युवकों की वन-वर्षा किया जाता था । यह युवावस्था की भी प्रथा प्रचलित थी । ब्राह्मणों को अवश्य सम्मान दिया जाता था । कभी-कभी विधवा पति की मृत्यु के पश्चात् सती भी हो जाती थी ।

बेनीसंहार में प्रयुक्त छन्द—महाराष्ट्र ने बेनीसंहार में १८ प्रकार के छन्दों का उपयोग किया है जिनमें प्रमुख श्लोक, वसन्तविराजित, शार्दूलविक्रीडित, रसमन्दार हैं । (बेनीसंहार में प्रयुक्त छन्दों के सङ्ग्रह पृ० २६८-२७०) ।

बेणीसंहार का उत्तरवर्ती नाटकों पर प्रचार—महाराष्ट्र के बेणीसंहार ने केवल नाट्यशास्त्र तथा अन्धकार-शास्त्र के विद्वानों की ही आकृष्ट नहीं की है, प्रायुक्त उनके दरबर्ती कवि एवं अन्य व्याख्याकार भी उसमें प्रभावित हैं। अमरकोष के प्रसिद्ध टीकाकार शीर स्वामी ने बेणीसंहार में अनेक उद्धरण दिये हैं। श्री चनावरी के प्रसिद्ध कवि रामदेव के नाटक बाबरामाया बेणीसंहार का अनुकरण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। रामदेव रावण के मुख से कहलाई गई 'अराममन्दमलं भुवनमल निर्वानरम्' इति (अंक ८, ५७) उक्ति में 'अराममन्दमलं भुवनमल निर्वानरम्' इति (बेणीसंहार ३, ३४) का स्पष्ट अनुकरण प्रतीत होता है। इसी प्रकार कर्ता हरषापदण्डतने यप्रानुमत्ता ननु : इष्टा यत्र परीक्षिता य य इह यं य वक्ता य यः' इत्यादि परशुराम की उक्ति में बेणीसंहार में अश्वत्थामा 'कृतमनुमतं दृष्टं वा वैरिदं गुरुपातकम्' (अंक ३, ३४) इस उक्ति की प्रतीति प्रतीत होती है।

—डा० शिवराम शास्त्री

धर्मदृष्टारायणप्रणितम्

## वेणीसंहारम्

जगद्धरकृतटिप्पण्या भाषान्तरेण च समेतम्



# पुष्पगोविन्दम्

सप्तमस्कन्धः विष्णुसंहिता ॥ १० ॥

—

## प्रथमोऽङ्कः

विष्णुः प्रोक्तवान्महादेवो मधुरम्

अथोक्तवान्महादेवः स भविष्यमुक्तः ।

विष्णोः प्रोक्तं नो नमस्तुभ्यमात्मनः मम

प्रणीतं । कुम्भान्तरात्प्रवृत्तं योऽनुचितम् ॥

अथोक्तवान्महादेवो विष्णुः स भविष्यमुक्तः

कुम्भान्तरात्प्रवृत्तं योऽनुचितम् ।

अथोक्तवान्महादेवः स भविष्यमुक्तः

कुम्भान्तरात्प्रवृत्तं योऽनुचितम् ।

कुम्भान्तरात्प्रवृत्तं योऽनुचितम् ।

कुम्भान्तरात्प्रवृत्तं योऽनुचितम् ।

इह तावन्निविष्टं प्राणिनामिदं विष्णुः स भविष्यमुक्तः ।

मार्गानुमेताह—निविष्टं गतिः । अथ कुम्भान्तरात्प्रवृत्तं योऽनुचितम् ।

करोतु । कीदृशीम् । अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम

अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम

अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम

अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम

अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम

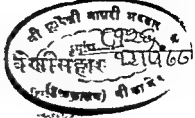
अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम

अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम

अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम

अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम

अथ सत्तः समादा. मयस्तुभ्यमात्मनः मम



## प्रथम शङ्ख

(बार-बार) हराये गये भी इन धीरों द्वारा लिखे गये मनु वाणी, चन्द्रनाभी किरणों द्वारा मध्य भाग में, मानो, व्यास, (अन्यः) द्वितीय दुई किरणों वाणी, विष्णु के चरणों में कितेरी गई, यह गुणनों की मज्जालि हूँ इस सभा के नेत्रों की अचली सजने वाली सकलता प्रदान करे ॥१॥

मनुष्यनाम् । पुनः कीदृश । तन्मित्रमुकुलः प्रवृत्तवर्तिनाम् । अक्षोप्रेक्षित  
 वारणमाह— अन्तः अन्त्यन्तरे इत्योः करेः चन्द्रकिरणं, छुति इव । तथा च  
 मुक्ताकरमरकादिव प्रवृत्ततेति भावः । मकरन्दः पुष्परसः इत्यमरः । अत्र  
 हिमपरवरत्नार्णवमुकुलमभेदेन निम्नाक्षरप्रकाश्यानि कुमुदानि योग्यतया विवक्षि-  
 तानि केचिन् । सामान्यतः पुष्पाभीह विवक्षितानि । प्रवृत्तपारैरुत्थोप्रेक्षितो-  
 ज्यवरस इव । अत्रथा चोत्प्रेक्षाया अग्रतः । उत्प्रेक्षा च—अन्वयैव स्थिता  
 वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा । अन्वयोत्प्रेक्षणे वा तु ताम्रप्रकाशं विवर्तयाम् ॥ इति  
 लक्षिता । इवशास्त्रोत्प्रेक्षाभिध्वजः । तथा च रक्तोः मग्नः पञ्च ध्रुव प्रायो  
 मूलमित्येषमादिभिः । उत्प्रेक्षा व्यज्यते तस्मैरिव तस्मैरपि तावत् ॥ इत्यपरे ॥  
 मधुवतो मधुकोरो मधुनिह इत्यमरः । भानुः करो मरीचि इति च । मिश्री  
 वारितसंगती इति च । मरः सधिति मयति इति पाश्चत्यः । [वागिनिमुञ्जः  
 प्रवृत्तिः] ली मुतावञ्जलिः पुमान् । इत्यमरः । इह नान्दी त्रिभिः इतीकैर्दादश-  
 पदा । तदुक्तं संगीतसर्वस्व—प्रशस्तपदविन्यासा चन्द्रतरोत्तनान्विता । आसीर्वा-  
 दपरा नान्दी योग्येय मङ्गलान्विता ॥ नाचिद्वादापदा नान्दी नाचिदपदा  
 तथा । मूत्रपार पठेदेना मध्यम स्वरमाधितः ॥ चन्द्रमरीत्तनं यत्र तदधीनो  
 रलो मग्नः । प्रीति चन्द्रमसि स्त्रीता रक्तोत्तरिति भातुनिः ॥ इति । तत्रापि पद  
 केचन विमलमन्तमूर्चिरे । केचित्तु पद पद्यस्य चतुर्थमायमाहुः । तदिह द्वितीय-

अपि च

कालिन्ध्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य राशे रसं  
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुपां कंसद्विषो राधिकाम् ।  
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतं रोमोद्गते-

रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्पात्तु वः ॥२॥

अपि च

दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्संभ्रमाच्चासुरीभिः  
शान्तान्तस्तत्त्यसारैः सकरुणमृपिभिर्विष्णुना सस्मिते  
आकृष्यास्त्रं सगर्वरूपशमितवध्नसंभ्रमैर्देत्यकीरैः  
सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ॥

पश्चात्प्रमाणेन त्रिभिः एतैर्कैर्द्वादशपदा नाम्नी । इह निषिद्धपदेन भिन्नानि  
निषिद्धा अपि सुयोधनादयो मित्रदण्डिगणिततन्निषेधा युद्धादीन् लभ्या इ  
व्यनितम् । तन्निष्प्रमुकुलपदेन च युधिष्ठिरादीनां धनवासादिदुःखानन्तरं तु  
प्रयासो वक्षित इति केचित् । नाम्नी वस्तुनिर्देशस्यानङ्गतया तत्सूचनमपि  
किनित्यतरम् । सूचनं तु रात्र्यक्षाः—इत्यादिनाम्ने कर्तव्यमेव । तत्प्रतीकस्य उदा  
हरादिरव्यये ॥२॥

बहुविप्रसङ्गेषु तत्राध्यायं पुनर्मङ्गलमाचरन्नाम्नीनिर्वाहार्थमाह—कालिन्ध्या  
इति । कंसद्विषः इत्युक्तं अनुनयो को युष्मान् पुष्पात्तु पुष्पाङ्करोतु । कीरस्य  
अनुनयः भगवितः । यत्र हेतुमाह—प्रसन्नदयितादृष्टस्य । सप्रसादराधावसोऽपि  
इदंत्वर्थः । कीरस्य । केलिकुपिता कोतुक एव कोधवती राविनी कालिन्ध्या  
यमुनायाः पुलिनेषु तीर्थोत्थितदेशेषु अनुगच्छताः अनुगम्यताम् । कीरस्य  
रामे गोपनीयायां रात्रिं अनुगम्य उत्सृज्य त्यक्त्वा गच्छन्तीम् अत एव  
इदानीम् । तथा च रात्रानुरागिणी प्रणयकुपिता इदंती चेति राधाया  
ऽसूचितम् । इत्यालोचन भगवतापि तदनुगमः कृत इत्याशयः ।  
तन्तत्तद्विषयां लक्षणादपि निवेदितपदस्य दत्तपादस्य । तत्र  
3 ... उत्सृज्योद्भूतः आनन्दोऽयम् । अत एव प्रसन्नो

र भी—

यमुना के बाहु-सट पर (जिसे कारपट्ट) पीछा में द्रुपित हुई, रास-लीला मानन्द को छोड़कर जाती हुई और अश्रुओं से मलिन रादिका के पीछे-पीछे ले हुये, उसके (राधा के) पर-भित्तों पर घेर रखते हुये, (इतलिये) रोमाञ्च पथ हुये और प्रसन्न हुई प्रिया (राधा) द्वारा देखे गये कृष्ण (कंस के शत्रु) सफल अनुग्रह प्राप्त लोगों (सामाजिकों) को पुष्टि करे ॥२॥

र भी—

मयपुर के बाहु के सपथ, देवी (राधाली) द्वारा प्रेमपूर्वक देखा गया, अश्रु-जैयों द्वारा 'यह क्या है' इस प्रकार भय और उद्वेग से (देखा गया), दिग्गज रास-लीला के साथ (देखा गया), अश्रुओं की छविराष्ट को शांत कर देने से पवित ईश्वरीयों द्वारा अच्छ खोजकर (देखा गया) और श्रेयताओं द्वारा (नगदुर्वक (देखा गया) सिद्ध सुहृदी रक्षा करे ॥३॥

यथापि कृतः । मत्तदसंबन्धानेकार्यं भावाभिर्भाविततरां मासंगमादिति ममि-  
मममनुरक्त इति सप्रसादं द्रुपितयापि वाग्लया दृष्ट इति भावः । तीयोद्विषत तु-  
लनम् इत्यमरः । अथ प्रथमार्थेन शोषणा. शीघ्रोदने सुचिते । उत्तरार्थेन च  
शिघ्रनवप्रानन्तरं भीमवृत्ततदीयानुगमस्याधुम्युता तस्याश्च प्रसादवत्त्वं  
लभ्यते ॥२॥

मम विवक्षितार्थस्यापयंवत्तानादवशिष्टस्य कथनं तत्र अपि च इति शब्दः  
गुप्यत इति व्युत्पत्तिः । एवमग्यत्रापि ।

कवेर्हिरिहनिमग्नमानसापेन हरी स्तुतिमुक्त्वा हरे तामाह— इह इति ।

कविः शिवः धुम्रान् वातु रक्तान् । कीर्त्तयः । मयपुररहने विपुलवाहे-  
रेम प्रीतिरहित यथा रयादेव देव्या भवान्या दृष्टः । धन्याह यदलभे-

यमतिबलौ महामुरौ निपुष्टित इति प्रीतिमत्तया वयवयया दृष्ट इति

वः । तदैव अशुरीभिः अशुरवपुभिः विमिरम् आपत्तिडम् इति कृत्वा भयात्

गात् संश्रमाद् उदंगाच्च दृष्टः । वाः कष्ट वषमोहसम्याप्यमुरराजस्याय

गपरिपाकः इति मत्तदामिनामप्येवं वदन्निस्स्यदिति भीतिरुद्वेगवच्च ताभिः कृत

त भावः । अविनिः वसिष्ठादिभिः सनकसं दयान्वितं यथा स्मादेवं दृष्टः ।

इह कथमयं वराकौ जगदीशेन हरेण समुत्पन्नुन्मुवित इति तेषां दया । अनोप-

तमाह— दान्तेति । दान्तमुपश्रव्यवद्वदभ्यन्तर तेन तत्त्वमनारोपितरूपं शारो





( पानी के पश्यान् )

सूत्रधार—कस, कविद करने से (क्या प्रयोजन) ?

ज्ञाने धीरवदी कञ्जलि-पुट से पीने योग्य भारत (महाभारत) नाम के न जो बनाया है, तें उन रागरहित और पात-रूप्य हृत्पञ्चपाप (भगवान्) को नमस्कार करना है ॥७॥

तीया । विष्णु मङ्गलार्थी देव केनचित्पञ्चमे । सूत्रधारश्च रङ्गभूषार्थं कविप्लवङ्गम् एव पटयति । तदुक्तम्— नाट्यस्य यदनुष्ठानं नभूय न्याभ्यधीनम् । ईदमभूषाकृतसूत्रधार उदीरितः । इत्याहः ॥ तत्र । सूत्रधारः पट्टेदेना मध्यममाधिनः । इति भरतविभोदान् ॥ तत्र सूत्रधारस्याभनक्षपात्वं प्रमाणाभात् । अथे तु—नाट्यवसाने सूत्रधारः प्रविशति वदति वा । तस्मै सूत्रधारः प्रवृत्तत्वात्प्रापि तेनैव पटनीयः । प्रथमं च सूत्रधार इति नोक्तम् । मङ्गलार्थं नानमस्वारादेरेव विधानादिभूयः । ननु प्रस्तावनायां पूर्वं बहूनि नाट्याङ्गानि स तानि विधिति नोक्तानि । तदुक्तं तत्रैव— रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः स्तुत्यैः सूत्रार्थैः । अतः कविदुपादाय भारतीं कृतिमाश्रयेत् । भेदेः प्ररोचनामुक्तैः वीरहसनामुपै । सूत्रधारो नटीं वृत्ते मार्गं वाप विद्वजम् । स्वकार्यं प्रस्तुताय विचोक्त्या पत्तदामुपम् । अत आह—अतमिति । अतमपानयः—पूर्वोक्ताङ्गानि न भवन्ति । विष्णु परिवदोऽभिमुखीकरणाणि । सा चेत्स्वयमेव कृतायना नवनाट्यदर्शनोत्पत्त्या च तन्नाम्यत्युपयमानं रसभङ्गाय नवेदिति कृतमपानेन । अथवा तस्या रसविच्छेदः स्यादिति ।

इदानीं व्यासप्रनमामाह—भवनेति । तं हृत्पञ्चपापं क्यामम् अहं कन्दे स्मरामि । यत्तदीतिर्यामिमं कथादाह—यः भारतनामकम् अपूर्वं विरचितवान् करोत् । आप्यायनादिभर्तृत्वेनामृतत्वं भारतस्य । कीदृशम् । अथनं कर्तुः यः अपूर्वपुटं तेन वेद्यं दध्यमय च पानीयम् । अथरूप्यमृत्तमञ्जलिपुटेन पठे । तं कीदृशम् । अथार्थं रागरूप्यम् । विपवाततिहीनमित्यर्थः । अत एव हृत्पञ्च निवर्तुयम् । तदिह प्रतिज्ञासंभारस्तथाया आदिवर्त्ता क्यामरतस्वविच्छेदिति कीर्तनं सुमहदेव भवतीति तदेव कृतमिति भावः ॥७॥

[तत्रभवन्तो माग्याः । परिवदयेश्वरः सामानुरोग्यताः] विज्ञाप्य तंभोष्यम् ।

(नयःकावचनौत्तर) तत्र मन्त्रेण तस्मिन्नावेतत्, तितार्थः नः तिरिचिन्ति  
 गुणुमात्रनिर्गन्त इव प्रकीर्त्यते वाच्यगन्त एवोऽ  
 ममुनिह इव ममुविनूनिग्नानानि भजन गुणानेनात् ।  
 तस्मिन् कवेर्गुणानामवधौ यदुनातामनात् इति वेणीमहारी नाम ।  
 प्रवीणगुणता वक्तुम् । तत्रैव तस्मिन्निर्गन्तानुदीकता यनातकवाचनानुदी  
 नयनाटकवर्गानुगुणताया भवतिरुचयार्थं वीरमानमवर्धये ।

गुणुमात्रनिर्गन्ति । एव वाच्यगन्तः मन्त्रः गुणुमात्रनिर्गन्ति प्र  
 विस्मयते । मन्त्र वाच्यगन्ते । विस्मानि रन्त्यानि गुणनेतात् गुण  
 भजत गुणी । हे सभ्याः इति शेषः । [ममुनिह इव] यथा ममुकराः गुणुना  
 ममुविनून् विस्मानि वृष्टन्ति तथेत्यर्थः । अनेन मदीयनाटके स्वस्या मन्त्रि  
 गुणमिषां ह्योऽप्यपरिहारोऽस्ति इति इति स्वनिर्गन्तम् ॥२॥

गुणराजसवमयः तिहचिह्नस्य । नारायणमहोदयः । इतिनाटकप्रसङ्गो  
 त्तिह्नतया सामानाधिकरन्धम् । वेणीमहारीमिति वेण्या द्वौरीकेण  
 विद्येपेण हेतुना संहारो विनाशो दुःभागनादीना यथा ततया । य  
 वेण्याः संहारो मोक्षश्च यथा ततया । भारतानन्तरमिह वेणीमोक्षमकथन  
 नाटकमिति । तदुक्तं तत्रैव—प्रकृतित्वादमान्येषां भूयो रत्नपरिग्रहात् । त  
 सभारुत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते ॥ नाटके मुख्यमर्थं तु पञ्चभिः प्रतिपादये  
 विष्कम्भचूलिकादुत्थाङ्गावतारप्रवेशकं. ॥ वृत्तवर्तिष्यमाणाना वचात्  
 निदर्शकः । संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥ तद्वेद्यानुदात्तो  
 नीचपात्रप्रयोजितः । प्रवेशोऽङ्कुडयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ॥ अङ्कुडयस्या  
 अङ्गुन्तपार्श्वरङ्गाश्च द्विप्राङ्कार्यस्य सूचना ॥ अङ्गावताररत्नरङ्गास्ते पातोऽङ्कु  
 विभागतः । एभिः समुचयेत्सूच्य दृश्यमङ्कुः प्रदर्शयेत् । दूराप्यानं वधः  
 राग्यदेशादिविज्ञवम् । सरोप मोहन स्नान मुरत्तं चानुलेपनम् । अम्बरप्रह  
 रीनि प्रत्यशास्त्रि न निदिशेत् । अङ्गुनेव निवर्त्तनीयात्रैवाङ्गेन कदाच  
 नाधिकारिवधः क्वापि त्याज्यमावरणं न च । एकाहाचरित्कार्यमित्यमान

(बायी ओर देगकर) माय्य सभा-मुहूर्तो, हमे कुछ निवेदन करना है —

यह बाय-रचना यही दूसरी पुष्पाञ्जलि के समान दिने ? जा रही है ।  
; धनर मधु-विन्दुओं का जैसे, मधुन भी गुण-कणों का रोशन करे ॥५॥

अब हम 'धृतराज' उपाधिधारी कवि भट्टनारायण की रचना इस वेणीसंहार  
नाटक का प्रयोग (अभिध) करने के लिये उद्यत हैं । इसलिये कवि के  
शब्द के विचार से अथवा उदात्त कथावस्तु के प्रति आदर भाव से अथवा  
जि नाटक देखने की उत्सुकता से आप लोगों द्वारा इस पर ध्यान दिये जाने  
चाहना करता हूँ ।

रक्षम् । पार्श्वस्थिचतुर्दशस्तोत्रायन्ते च निर्गमः । एवमद्या प्रसक्तं  
सादिपुराणम् । १५॥ अथेतदपर दत्ताष्ट नाटक वरम् ॥ इति नाटकसंज्ञा  
श्लोकम् । तर्जय प्रसक्तं प्रसक्तं प्रसक्तं प्रसक्तं प्रसक्तं प्रसक्तं प्रसक्तं प्रसक्तं  
॥ प्रियवदः । रक्तशोकः सुचिरांशु रक्तवधः स्विरो युवा । पुष्पुष्पाहस्तुति-  
पावनामानसमन्वितः । धूरी इत्येष तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धामिन् । विनय-  
संस्मृतिर्धुरः प्रियदर्शनः । त्यागः सर्वस्वदानं स्वाह्वयं क्षिप्रं (प्रिय) करो  
॥ । प्रियवदोऽनुक्तं वक्तव्यं स्नेहो मोकरज्जनः । मितप्रसास्तवाग्वाग्मी नित्यकर्म-  
॥ धुभिः । क्पातवधो रक्तवधः पोट्यात्प्रियवधो युवा । वाह्मनः तर्जयिर्विश्व-  
चक्रः न स्मिरा मत्तः । धुतिः सर्वेषु या श्रीनिम्नाहोऽज्ञानिरेव च । स्मृतिः  
त्यागः शान प्रज्ञा तीक्ष्णमनिर्गता । कलादधाव चतुःपटिमनिर्दिष्टसमुत्पत्तिः ।  
॥ सद्गुणमनिपुणो रणवाग्द्वय उच्यते । अतिप्रसाप्तस्नेहस्वी शास्त्रचक्षुश्च धी-  
रः । आत्मवत्परस्मृतानि यः पश्यति स धामिन् । इत्यानवधो राजपिदिष्यो  
॥ यत्र नायकः । सप्रत्ययात् विधातव्यं कृतमशायिकारिकम् ॥ अथवदं. — नाटके  
रत्नादिप्रसिद्धो राजपिदिष्यो वा नायकः कर्तव्यः, न तु कविना स्वयमुत्पाद्य  
या कल्पितो नायकः कर्तव्य इति । स्वाभ्या साधारणस्त्योति तदुपुणा नायिका  
येषा । स्वकीया तत्र वक्तव्या युष्मा मध्या प्रगल्भता । शीतलज्वादिस्तुता-  
टिका च पतिप्रता । सजावती चापस्या निपुणा च प्रियवदः । साधारणस्त्यो  
निष्ठा रत्नाप्रसक्त्यधीत्येषुक् । स्वनेषु च रक्तं वक्तव्या प्रहसं विना ।

( नेपथ्ये )

भाष स्वयंती त्वयंताम् । एते सत्त्वार्थविदुरासदा पुरपा

द्याहुरन्ति—प्रयत्नंतामपरिहोयमानमातोद्यविन्वासादिषा विषयः ।

नृप भगवन्तः

किल क्षत्रभयतः । १२ ।

भरतकुलहितदाम्पव्या स्वयं प्रतिपन्नदोहस्य देवकीभूतोद्वेगपानेर्महापुत्रो  
सिद्धिरं प्रति प्रस्थापुष्पामस्य इति ।

सूत्रधारः— (आकण्ठं सानन्दम्) अहो नु खलु भो भगवता जल  
स्थितिनिरोधप्रभविच्छुना विच्छुनाद्यानुगृहीतमिव भरतकुलं सकलं च राज  
नयोः कुरपाण्डवराजपुत्रयोराहवकस्यान्तान्तद्रशमहेतुना स्वयं सन्धि  
कंसारिणा कूलेन । सति किमिति परिषदाधिक नारम्भयसि कुशीलपैः साह संजीव

अम्पस्त्री द्विविधा प्रोक्ता नृप्यकोडा तर्थापरा । एते प्रधाने कर्तव्या ना  
मात्यवेदिभिः । कव्यानुरागमिष्यतः कुर्याद्विज्ञाञ्जितंभवम् । इति ॥  
वृत्तयः प्रोक्ताश्चतस्रो मात्यवेदिभिः । भारती कंसिकी चैव सात्वत्पारमदो  
तत्र गृह्णारी कामरुमावच्छिद्रो व्यापारः कंसिकी । विज्ञोवा सात्वती  
भीरंतापानार्थं पुनः । सादेष्टनालसवामलोयोद्भान्तादिनेष्टितः । अवेसा  
नाम मात्ये निरागु वृत्तयः ॥ भारती पन्दुसुतिः स्वाश्रो रोद्रे च कु  
गृह्णारे कंसिकी भीरे सात्वत्पारमदो पुन ॥ एवमङ्गानि कार्याणि प्रधान  
विरोधनः । सादेष्ट विज्ञाञ्जकं कुर्याद्विज्ञा वा कार्यामुत्तिनः ॥ अवेधितं वरि  
भीरम मातुःस्वरम् । यदा तदर्थवेष्टेय कुर्याद्विज्ञाञ्जकं तदा ॥ यदा तु  
वानु मुलादेव प्ररंते । आनायेक तदाहः स्वादापुत्ताशेषतथयः ॥ प्रया  
वरिणी विज्ञाञ्जकितुरावरः । अहो मातादभारार्थंविधानरतामयः ॥ अनु  
विज्ञाञ्जकं स्वाजिना व्यभिचारिणि । गृहीतगुणैः कर्तव्यमङ्गितः परिपोष  
न चानिरतना कनु दूर विभिद्यता नयेत् । रम वा न निरोध्याइरत्य  
ल्लभते । एवो रमाङ्गी कर्तव्या भीरः गृह्णार एव वा । अङ्गमये रमा  
कुर्वाणंरुदोद्वेगम् ॥ गृह्णारद्वारादोद्वेगमयानवा । भीमामे  
द्वेगवद्वती गच्छे रमा रद्वेग ॥ यदा वि अभिचारिण्यभिः दान्त सा

( नेत्रज मे )

साह, जारो लरो, जलरी बरो : आर्य विदुर को आता से ये लोग सर  
लरो से कह रहे हैं— बाह्य-विन्यास आदि की विधि बिना किसी बुद्धि के  
लम्ब कर ही जाये : अन्तरातर-गुण (ध्यात), जारर, गुणर, वागुणर  
दि धेइ मुनिगो द्वारा अनुसरल विधे आते हुए, भरत-कृष्ण के हित की  
प्रभा ती स्वयं दून-बर्ष रोजर करने वाले, महाराज दुर्जयन के दरगाधार  
दे) को प्रस्थाप करने वाले, बेबगी के पुत्र, साधारणीय भगवान् दिरघ (हर  
बल वारर करने वाले) के प्रवेस का समय हो गया है :

सूत्रधार— (मुनर आनन्द से) आ...हा । अरे, जगत् की उत्पत्ति,  
ति और संहार मे समय कल-रात्र भगवान् दिरघ ने आज स्वयं इन दुव  
र पाण्डव राजपुत्रों के युद्ध की प्रसम्पानि के शयन का निमित्तभूत, तपि  
जने वाला, दूत बनकर आज इस भरत-कुल पर तथा सम्पूर्ण राजसमूह पर  
लघु विधा है । इतलिये, पारिवारिक, जलों के साथ विलकर संपीत आरम्भ  
की नहीं करने ?

मो रमः' ह्यस्मि तवापि न रा गर्वसमती न नाट्यविषयस्येति न वृषगुणः ।  
नाभिभावाभावादेव नाट्यविषयता न सम्भवतीति ।

[तस्मैति] जरात ह्यम् । कथावस्तु कथाप्रधान नायकः । तस्य  
रथादाहारात् । मेघम् १५५ भूमिः । मेघम् रङ्गभूमि स्थानोपपन्न  
प्रमाणे । इति विद्वः ॥ भावो मायः । मान्यो भावेति वक्तव्यः  
यमरः । अनुगमो वाक्यभूषणाय । आर्यरवासी विदुरश्चेति  
विशेषणमासः । विदुरोऽत्र नायकः सस्याग्र्यादेयेन । संज्ञो नटः । अपरिहोय-  
नमरारिथ्यमान यथा ह्यादेवम् । विषयः प्रकारः प्रवर्त्यन्तम् । कीदृशाः ।  
जालोपविन्यासी वीरादिवादनमादौ यथा ते तथा । अनुविधिविद वाद्यं वादिना-  
लोपनायकम् । इत्यमरः ॥ किल निश्चये । तुम्हस्मिन्निविशेयः । सुन्दरकी  
विदुरो इत्यमरः ॥ भरतकुलं बुधिविदिरादिवशः । काम्या इच्छा । प्रतिपन्न-  
रिथ्ययाभीष्टनूनकर्मणः । सुनोः पुत्रस्य । सुनुः पुत्रकनिष्ठयोः । इति विद्वः ॥

( परिचय )

पारिपाश्विक भवतु । आश्विनानि । कं कं वदादिषु गीष्वाद्  
 सूत्रधारः—नम्यमुषेय तारकाशास्त्रात्तयोऽहं गृह्यतुल्यतया  
 शीतशामानुपुनराद्यविविनतादिभ्यस्तं त्वाह्वनान्त्याहं अतस्तं  
 प्रत्ययं स्यात् । तथा ह्यस्यां आदि

मत्तया मभुग्निर प्रमाधिताना मदीदृशतारभाः ।

निपतन्ति शान्तगद्गा कान्द्रतान्मेदिनीवृष्टे ॥६॥

पारिपाश्विक. — (मगधायम्) भाव शान्तं वाग् । अहिह्नममङ्गलम्

सूत्रधारः—(मगधायमिगम्) शारिष, शारमममङ्गलनामं वा  
 पार्तराष्ट्रा इति वदतिरिह्यते । तन्कि शान्तं वाग् अहिह्नममङ्गलम् ।

पारिपाश्विकः— न छतु न जाने । शिवमङ्गलसार्गतयास्य बो ।  
 यत्सत्यं न म्पितमिष मे हृदयम् ।

सूत्रधारः—शारिष, ननु सर्वमेवेशां प्रविह्नममङ्गलं स्वयं प्रतिपन्न  
 सन्धिकारिणा कंसारिणा । तथाहि ।

शिविरसन्निवेशः सैन्यविम्यासः । तं प्रति प्रवेशकालद्वयकालौ रित्यन्वयः ।  
 छतु भोः इत्यव्ययसमुदायोऽप्याद्वयविचारे । निरोधो विनाशः । इमं  
 प्रभुणा । राजचक्रं शनिमर्त्यः । आह्वो मुदम् । कल्पान्तान्तः प्रत्यया  
 स्वयं प्रतिपन्नदीत्येनैरन्वयः । कंसारिः कृष्णः । पारिपाश्विक इति । सूत्र  
 पार्श्वे यः प्रकरोत्यमुना सह । काव्यायं सूत्रालाप स भवेत्पारिपाश्विकः ।  
 भरतः ॥ कुशीलवो नरः ॥ भरतास्तु कुशीलवाः इत्यमरः । संगीतकमेत  
 ऐषवमिति यावद् । नक्षत्रमश्विन्यादि । यहाः सूर्यादयः । वीश्व हं ब्रह्म  
 प्रसिद्धः पक्षी । सप्तशब्दः विमन इति प्रसिद्धो वृधः । रक्तोत्पन्नं वीरुना  
 इत्यमरः । तथा हि इत्ययं शब्द उक्तविभावनायः । एतेष्वष्टाद्योपदे  
 समुद्दिष्टं विसर्पति । यत्कलोदयपर्यन्तं सटीवमिति कीर्तितम् ॥ इति भरत  
 इत्येवम् । वीरुमाह—सत्यम् इति । पार्तराष्ट्राः हसविदोषाः । कालव  
 शरमाहात्म्यात् मेदिनीवृष्टे निपतन्ति । मानसं तत् परिहृत्यायान्तीत्य  
 च पार्तराष्ट्राः धृतराष्ट्रपुत्रा दुर्गोचनादयो भूषो पतन्तीत्यर्थः । कीदृ

( प्रवेश करके )

पारिपाश्विक—अच्छा, आरम्भ करता हूँ । किस ऋतु के विषय में जाना जाय ?

सूत्रधार—इसी शरद् ऋतु के विषय में संगीत आरम्भ कर दिया जाय, जैसे चन्द्रिका, नक्षत्र, शीत पक्षी, हंस-समूह, सप्तपर्ण, कुमुद, पुण्डरीक और वायु के पराग से आकाश तथा दिशा-रश्मि सबल हो रहा है और जिसमें सायन स्वरिण जल वाले हैं । क्योंकि इस शरद् ऋतु में—

सुखर पक्षी बाले, मयूर बायी बाले, विद्याओं को अलङ्कृत करने बाले, के कारण उद्दाम बीजा करने वाले हंस (धार्तराष्ट्र) समय (शरद् ऋतु) के साथ से धूम्र-तल पर आ रहे हैं । (दूसरा संकेतित अर्थ) उत्तम सायन बाले, मयूरभाषी, विद्याओं को वन में करने बाले, अहङ्कार से छद्मपूर्ण कार्य करने वाले, धर्तराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधन आदि) मृत्यु के वश में होने के कारण धूम्र-तल पर गिर रहे हैं ॥६॥

पारिपाश्विक—(घबराकर) भाव, पाप शान्त हो । अमङ्गल का नाश हो ।

सूत्रधार—(तज्जा और मुस्कराहट के साथ) मारिय, शरद् ऋतु के वर्णन की इच्छा से हंसों को धार्तराष्ट्र कहा जा रहा है । तब 'पाप शान्त हो । अमङ्गल का नाश हो' यह क्या ?

पारिपाश्विक—मैं नहीं जानता हूँ, ऐसी बात नहीं है । फिर भी, आपके स वचन से अमङ्गल की आशङ्का से मेरा हृदय सचमुच काँप-सा गया है ।

सूत्रधार—मारिय, अब तो स्वयं वृत्त-कार्य स्वीकार करके समर्थ कराने वाले कंसारि ने सारे अमङ्गल का नाश कर दिया है । इस प्रकार—

सन्तः पक्षा देपा ते] सत्पक्षाः श्रेष्ठपक्षयुक्ताः श्रेष्ठसंस्थान्तरश्च । मयुरगिरिः मयुरवाणीनाः । प्रस्ताविता आशा दिशो यैस्ते तथा । सदोदत्ता आरम्भा देपा । "सदो ह्योर्हंकारश्च" "धार्तराष्ट्राः सितेतरैः" इत्यमरः । इह श्लोके अर्थवत्कल्पता प्रस्तावना । यदुक्तं तत्रैव—प्रवृत्तकालमाधिरस्य वशुं ना वा वेधीयते । तदाथयस्य पात्रस्य प्रवेद्येन प्रवर्तकम् ॥ इति ॥ आर्यचिन्तनः । ॥६॥

यत्र पक्षाक्षेपेण पात्रप्रवेद्यस्तत्र प्रविद्येति प्रयुज्यते । सान्तरं पापघनाकाङ्क्षे





शत्रुओं के शान्त हो जाने के कारण पाण्डु के पुत्र, जिनकी चर हथी अग्नि  
मृत हो गई है, दृष्टि के साथ आनन्द करें; और भृत्यों सहित कुन्द-राज के  
पुत्र, जिन्होंने अनुरक्त (पाण्डवों) की भूमि दे दी है तथा जिनका पुत्र समाप्त  
हो गया है, स्वस्थ रहें ॥ (द्वितीय संकेतित अर्थ) शत्रुओं का शान्त हो जाने  
कारण सामय समेत पाण्डव लोग, जिनकी चर हथी अग्नि मृत हो गई है,  
आनन्द करें और भृत्यों समेत कुन्द-राज के पुत्र जिन्होंने दधिर से धृष्टी की  
सहायता ली है और जिनके शरीर अत-विस्तृत हैं, स्वस्थ रहें ॥७॥

( नेपथ्य में द्रुपदनामसहित )

ओ कुन्द, स्वयं ही स्तुति करने वाले, बीच नट,  
आशापूत ॥ आप, विपात भय और तप में प्रवेश द्वारा हमारे प्राण तथा  
पर प्रहार करके और पाण्डवों की वध के चरित्र तथा देशों की चौकसर  
एतराह के पुत्र मेरे जीवित रहते स्वस्थ रहें ॥८॥

( भूमिधार और पारिषाधिक दोनों मुनने हैं )

पारिषाधिक—धीमावृ, यह (ज्वनि) कहीं से (आ रही है) ?  
भूमिधार—(पीछे की ओर देखकर) अरे ! धीमावृ दृष्टि के जाने से (होने  
वाली) कुन्दों के साथ सग्वि की तरह न करता हुआ यह कुन्द भीम, जिसके  
शाल मस्तक-नट पर, अमराज के विशाल तोरण पर विपुल हैं समान प्रतीत  
हो जाती, भयङ्कर ध्रुवुटि तनी हुई है और जिसके पीछे पीछे सहदेव आ

वयः इति विश्वः । मेधागन्धोऽयम् । यदुक्तसर्वत्र—दृष्टपंता यत्र बाधयानां  
देवापि प्रतीयते । यः दाम्भान्तिगो मेधागन्धः स उच्यते ॥७॥

आः उच्यते आतेपे । तैमूषो नटः [जाती] अगस्तः अथमः {४} ।

आलापुहेति । [आलापुहे सः अगस्तः अग्निसमर्पणं स च विपनिधिमम  
अगस्तं च सभाप्रवेशञ्च तं] अनुपुहानिधिममदुपचरदुपनादिभिः क  
अगस्तं [प्राप्तेषु वितनिषयेषु च] ग्रहस्य दृष्टपंताः । पाण्डवपुत्रोत्तरी ।  
विज्ञानम् परिप्रागीदधिराजम् । [आहूताः पाण्डवपुत्राः परिप्रागं च केशाव वं ।  
पारिषाद्व मयि जीवति स्वस्थाः सुगिन्तो अथग्लि विम् । नैर्दन्तद्वयं] ।





ना है, दृष्टिपात से, मानो, हम सबको पीता हुआ दण्ड की ओर ही आ रहा है। इसलिये इसके सामने खड़ा होना उचित नहीं है। इसलिये हम दोनों यहाँ कहीं अग्रज चलें। (दोनों बाहर चले गये)।

### प्रस्तावना समाप्त

1। तत्पश्चात् सहदेव द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ कूड भीम प्रवेश करता है।

2। भीमसेन—अरे कुछ, व्यर्थ स्तुति करने वाले, नीच नट। (नाशागृहान्तल आदि श्लोक १।८ का फिर पाठ करता है)।

3। सहदेव—(अनुनय सहित) आर्य, अमा कीजिये, अमा कीजिये। इस नट का बचन हमारे अनुकूल ही है। 'शान्त हो गई है वेद कपी अग्नि जिनकी' आदि बचन सच ही है। (बर्धोक) यह कह रहा है— 'तेजकों सहित पुत्र हन्दीय, जिन्होंने पथिर से भूमि को असङ्कत कर दिया है और जिनके शरीर नष्ट हो गये हैं, स्वर्गस्थ होवें।'।

भीमसेन—(उत्साहना देते हुये) नहीं, नहीं। आप कीर्तियों का अमङ्गल ही सोच सकते। उससे तो सन्धि करनी चाहिये। तुम्हारे भाई हैं।

सहदेव—(लोभपूर्वक) आर्य, यदि राजा रोकने वाला न हो तो तुम्हारा कीन-सा छोटा भाई वग-वग शत्रुता करने वाले पतराड़ के पुत्रों को सहन करे ॥६॥

य प्रस्तावना मत्ता ॥ इति । इयं प्रस्तावना वाक्यार्थक्योद्घातरूपा । सूत्रधारस्य त्वय वा यव वाक्यार्थमेव वा । गृहीत्वा प्रविशेत्पार्थ क्योद्घातः स उच्यते ॥ इति भरतः । प्रविशतीति । सर्वत्र प्रवेशे पूर्वसूचितस्यान्वयः । नासूचितस्य त्वस्य प्रवेशः इति भरतवचनान् । सर्वत्र समस्य । भरतपुत्रस्य नटस्य अन्यथा रणार्थतया । सोपासम्भं विसंवादसहिग्रम् । बोधितो न सन्तुष्टोऽप्यन्वयप्रवचनः ।

पतराड़स्येति । [राजा निषेधा न स्यात् चेत् पदे पदे कृतवैराद् पतराड़स्य नपाद् कः त्वानुजः सहेत । इत्यन्वयः] पदे पदे प्रतिस्थानमित्यर्थः ।

भीमसेनः—(गगोपम्) एवमिदम् । अग एवाहमप्यद्रुमि भिन्नो भवद्भूषः ।

प्रवृद्धं यद्वैरं मम गन्तुं शिशोरेव क्रुमभि-

नं तथायौ हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ।

जरासंधस्योरः स्थलमिव विरुद्धं पुनरपि

क्रुधा संधिं भीमो विघटयति यूयं घटयत ॥१०॥

सहदेवः—(सानुगम्) भार्य एवमतिशयमश्रुतेषु पुत्राणु क्वचित्ति  
गुरुः ।

भीमसेनः—किं नाम विघटते गुरुः । गुरुः तेदमपि जानाति । परम् ।

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां

यने व्याधेः सार्धं सुचिरमुपितं बल्कलधरैः ।

विराटस्यावासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं

गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ॥११॥

तत्सहदेव निवर्तस्व । एवं चातिविरप्रवृद्धामर्षोहीपितस्य भीमस्य वर  
द्विजापय राजानम् ।

सहदेवः—भार्य किमिति ।

भीमसेनः—एवं विजापय ।

वेचछन्दो पद्यार्थे । निषेधा निषेधकः । इह श्लोके यद्यपि वाक्ये यमिद्धं  
मालकारदोषस्तथापि रसान्तरस्रोतनाथ उद्भावयमिति न दोषवक्ष्यामदगा  
इत्यवधेयम् ।

इह अहं भिन्नो भवद्भूषः इत्यनेन भेदसंधिः । यदाह—भेदस्तु भिन्न  
इति । प्रभुतिशब्द आरम्भपर्यायः ।

प्रवृद्धमिति । [शिशोरेव मम क्रुमभिः यद्वैरं प्रवृद्धं सद्य तत्र आर्यः हेतुः  
भवति, न किरीटी, न युवा । जरासन्धस्य चटस्थलमिव पुनः विरुद्धमपि संधिं  
भीमः क्रुधा विघटयति यूयं घटयत । इत्यन्वयः] विरुद्धं जातं स्मृतं च । संधि  
संघटनके संधानेऽपि च कथ्यते । इति विध्यः ॥१०॥

तथाभूतामिति । नृपसदसि तथाभूताम् अनुमतीमपि आहृष्टकेयामाहृष्टाभ्य

रीमसेन—(क्रोध से) यह ऐसा ही है । इसीलिए आज से हम आप लोगों  
 से दूरे हूँ । देखो—

तब रातक का ही शीतलों के साथ जो शेर बढ़ा था, उसमें न आर्य  
 शेर) कारण हैं, न अर्जुन और न ही तुम दोनों । जरासन्ध के वधःस्थल  
 न ॥ समीप को भीम क्रोध से फिर तोड़ रहा है, तुम लोग जोड़  
 ॥

देव—(मनते हुये) इस प्रकार आपके अत्यधिक क्रोध करने पर बड़े  
 में दुःखी न होंगे ।

रीमसेन—क्या बड़े भारी दुःखी होते हैं ? क्या बड़े भारी दुःख को जानते  
 हैं—

।सभा में उस प्रकार की हुई (दुर्बला में पड़ी हुई) पाश्चात् की पुत्री  
 को, वन में शायों के साथ चलकरधारियों के बिरकात वाप को  
 त के भवन में अनुचित कार्यों द्वारा छिपाये गए वास को देखकर  
 ' भारी को शीतलों पर आज तक खेव नहीं हुआ । मेरे छिन्न होने पर  
 ॥११॥

ये, तद्देव, तुम लौट जाओ । बिरकात से बड़े हुये क्रोध से उद्गीत  
 शेर से राजा से इस प्रकार कहो ।

।—आर्य, क्या (कहूँ) ?

।न—इस प्रकार कहो—

शतनया द्वायदीम् । वन उपितमस्माभिर्वसिः कृतः । तद्दृष्ट्वेस्मान्मयः ।  
 गमं कृतम् । तद्दृष्ट्वेस्मान्मयः । अनुचितारम्भाः कन्यात्तंकरलादिका-  
 र्णं यथा स्यादेवम् । मयि खिले सति गुरुः [खिदं भजति], अस्मादि  
 : बहतीत्यन्वयः ॥११॥

वरेति । अतिचिरादतिचिरं वा प्रवृद्धी यः अमर्षः । तेनोद्गीतस्य ।

।। [मया युष्मच्छतनलाह्वनाह्वसि यस्मिन् स्थितं नाम, स्थितिमतमनु-  
 विगर्हणा अपि प्राप्ता नाम, क्रोधोद्भातितजोषितारम्भमदस्य शीतला-  
 म अथ एकं दिवसं गुरुः न अयि, अहं तव विषेयः न । इत्यन्वयः]



मैं तुम्हारी आजा के उलझनुन के पाप में डूब गया हूँ, मैंने मर्दाना का सन करने वाले छोटे भाइयों के भी मध्य में निन्दा प्राप्त कर ली है। आज एक दिन के लिये आप मेरे बीच में उठाई और खिचर से साल गया जाने तथा आपको बुरा नास करने वाले के बड़े (भाई) नहीं हैं और मैं आपका आजाकारो हूँ ॥१२॥

( यह कहकर अन्दर के साथ प्रूमता है )

सहदेव—(उसी के पीछे-पीछे चलते हुये, स्वगत) अरे कैसे ? आर्य पाञ्चाल के राजकुमारी (द्रौपदी) की चौपाल में चले गये। अच्छा, तब तक मैं यहीं हूँ। (खड़ा हो जाता है)

भीमसेन—(लौटकर और देगकर) सहदेव, तुम आगो और बड़े भाई के दुःख भावपूर्ण करो। मैं भी आयुधागार में आकर छाछों से सजित होता हूँ।

सहदेव—आर्य, यह आयुधागार नहीं है। यह तो पाञ्चाली की चौपाल है।

भीमसेन—(सोचते हुये) क्या कहा ? यह छायागार नहीं है, द्रौपदी की चौपाल है। (कुछ हँसकर हर्षपूर्णक) मुझे पाञ्चाली से विदा ले लेनी चाहिये।

(उस से सहदेव का हाथ पकड़ कर) प्रिय, आगो। कौरवों के साम सन्धि करने की इच्छा करने वाले आर्य हमें जो पीडा दे रहे हैं, उसे आप भी देख लें।

( दोनों अन्दर जाते हैं )

सहदेव—आर्य, यह आत्मन विद्या है। आर्य यही बैठकर कृष्णा (द्रौपदी) को प्रतीक्षा करें।

भीमसेन—(बैठकर) परत, 'कृष्णागमन' इस प्रसङ्ग से याद आ गया है :  
गङ्गा कृष्ण किं शतं पर सन्धि करने के लिये सुयोधन के पास भेजे हैं ?

माहारः पतुःशानम् । आकन्तो वा इति क्लीवत्वम् । ०शालकमिति पाठे  
वायं कः ।] आगारो युद्धम् । आयुधसहायोऽस्त्रद्वितीयः । आः स्वीकारे ।  
गमनव्यतिव्या संबन्धीया । शृष्णागमनं द्रौपद्यागमनमथ च हरेरागमनम् ।  
परोक्षत उक्तिः । यदुक्तममरे-उपोद्घात उदाहारः इति । यदा प्रकृतानुकुतिनी  
चन्ता उपोद्घातः । भगवान्शक्यदिमान् । इह श्रीकृष्णो निगूढार्थो दूतः । यदुक्तं  
वद—उद्देश्यकार्याविधेन विपक्षे नायके स्वयम् । वाम्बुद्विरतो यस्तु स



सहदेवः—आर्य, पञ्चभिर्घर्मिभिः ।

भीमसेनः—(कणो विधाय) अहह हस्त ।  
पश्ये इति यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् । (परिवृत्त्य स्थित्वा) तद्वत्  
कथितं न मया श्रुतम् ।

यत्तद्वर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः ।

दीव्यताक्षैस्तदानेन नूनं तदपि हारितम् ॥१३॥

( नेपथ्ये )

समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी । [समस्तसदु समस्तसदु भट्टिणी ॥

सहदेवः—(नेपथ्याभिमुखमवलोच्यारमगतम्) अये कथं याज्ञसेनी ।  
धीयमानव।ष्यपदसम्पन्नितमयमा आर्यसमीपमुपसर्पति । तत्कष्टतरमापतिरपि

यद्वैद्युतमिव ज्योतिरायं क्रुद्धेऽद्य संभृतम् ।

तत्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्धयिष्यति ॥१४॥

( ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा द्रौपदी चेटी च )

( द्रौपदी सास्त्रं निषवसिति )

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी । अपनेष्यति ते मयम् ।

कुसुमैः कुमारो भीमसेनः । [समस्तसदु समस्तसदु भट्टिणी । अवलोक्य  
मण्णुं लिङ्गानुबद्धकुक्षेरो कुमारो भीमसेनो ।]

निगूढार्थं उच्यते ॥ इति । पञ्चयामदानाशनेन तस्मिन्नेन वीरप्रकाशना  
अहोरेण्यश्रुते सेदे इत्यमरः । यत्सत्यं निरचये । तदुक्तं तत्रैव—यत्सत्यं  
मावार्थम् ।

यत्तद्वर्जितम् । [यन् अस्म्य भूतानेः तत् ऊर्जितम् अत्युग्रं क्षात्रं तेजः तदपि न  
हृदा शून्यमये अर्धैः दीव्यता नूनं हारितम् इत्यन्वयः ।] ऊर्जितं यत्तद्वत् ।

निरचये । तदपि तेजः हारितम् । अन्यथा वचनार्थं तेजोमय इति भावः ।

तत्रैव । आर्यवचनम् । यत्तु । आर्य न सर्वस्य स्वगर्भं तद्विदोच्यते । इति

मीमंसेन—(बानों पर हाथ रखकर) ओह ! देख अज्ञातदानु का भी पर-  
 ज का शय (हो गया), इससे सचमुच बेरा हृदय काँप-सा रहा है ।  
 र खड़े होकर) वास्त, (समझ लो कि) वह न सुमने कहा और न मने

॥ राजा का जो वह अतृप्तसिद्ध प्रसन्न राज्ञ तेज वृद्धि को प्राप्त था,  
 ही इसने तब पाशों से छेत्तते हुए उसे भी गँवा दिया ॥१३॥

( नेपथ्य में )

तामिनी, धैर्य रखो, धैर्य रखो ।

हैवे—(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे ! (यह) क्या ? बार-बार बड़-  
 बूझों के समूह से आच्छादित नेत्रों वाली द्रौपदी आर्य के समीप ही आ-  
 । तब लो बड़े काट की बात हुई ।

॥ आर्य में आज जो विद्युत् के जैसा तेज संचित हुआ है, उसे बर्षा के  
 रह कृष्णा अवश्य ही और अधिक बढ़ा देगी ॥१४॥

( तब यथावर्णित द्रौपदी और चेटी प्रवेश करती है )

( द्रौपदी आँसू बहाते हुए गहरा श्वास लेती है )

॥—रक्षामित्री धैर्य रखें, धैर्य रखें । सर्वदा कौरवों ॥ बंधे बंद बाला  
 मीमंसेन आपके शोक को दूर करेगा ।

माशसेनी द्रौपदी । [उपवीयमानः वृद्धि गच्छन् यः वात्पस्तस्य पटलं  
 ते मयने यस्याः सा ।] अयुगलः पूर्वावस्था वाप्यः, स्थगित पिहितम् ।  
 दूतमिति [कृष्टे आर्ये अद्य यत् संयुतमिव ज्योतिः संयुतम् तदियं कृष्णा  
 मूनं संवर्धयिष्यति इत्यन्वयः] । संयुतं विद्युत्प्रभवम् । आर्ये भीमे ।  
 तम् । प्रावृद्ध वर्षाकालः । मून निश्चये ॥१४॥

मन्युर्वर्ग्ये कृती क्रुधि । इत्यमरः । द्रौपदी । सासं सगमयजलम् । अथ  
 । हलाह्वाने भीमां चेटीं सलीं प्रति । इत्यमरः । जयतु कुमारः । अथ  
 ॥ यद्यपि जयतेरनभिधानादुत्थं न भवतीति ह्यावतारे दृश्यते तथापि  
 चत्वम् । प्राकृते जयदु जयत्वित्यस्याभिधानात् । प्राकृतस्य च तद्भव-  
 गित्यनेकः प्राकृतः क्रमः । इति नियमात् । संस्कृतं क्रमवत्त्वात् ।

श्रीश्री—हृदये वृद्धिर्भावे कथं देवदेवः सदा त्वत्पुत्रः इति कुतो ।

[हृदये वृद्धिर्भावे इति न च सदा त्वत्पुत्रः इति कुतो ।]

केरी—(विनीतः) एष कुमारः शिष्यः । तदेव पुनर्नृपः वदति ।

[एषो कुमारो विद्वान् । तां तु उपपादुं वदति ।]

श्रीश्री—हृदये एषं वृद्धं इति । [हृदये एषं वृद्धं ।] [५०]

केरी—(वाग्वान्) अयं अयं कुमारः । [अयं उपपादुं कुमारो ।]

भीमसेन—(अश्रुपत्रं कृत्वा विनयं इति पुनः वदति)

केरी—(विनीतः) भद्रं न विदुषिण इष कुमारः तस्मै ।

[वदति न विदुषिणो विदुः कुमारो तस्मै ।]

श्रीश्री—हृदये वृद्धं त्वत्पुत्रोऽप्येव त्वत्पुत्रोऽप्येव ।

शुभो मि तावन्नामस्य व्यक्तित्वम् । [हृदये वृद्धं तां वदति ।]

आगातामदि ता एष उपविष्टः पतिम् गुणो विदुः तां वदति ।

(उभे तत्रा कुदतः)

भीमसेनः—(अश्रुपत्रं, सहदेवप्रतिपत्तिः) किं नाम वृद्धिर्भावेः इति

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्

दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः ।

संचूर्णयामि गदया न मुयोधनोरु

सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः परोन ॥१५॥

श्रीश्री—(सहर्षम्, अनास्तिकम्)

नाम अश्रुपूर्वं वदतु ते इति । [शाह अश्रुपूर्वं वदतु ते इति वदति ।] [५१]

भीमसेनः—(अश्रुपत्रं, मथ्नामि कौरवशतं इति पुनः वदति)

सहदेवः—आर्य, किं महाराजस्य सम्बन्धोऽयमुत्पन्न इव गृहीतः ।

अन्यथा क्रमहान्यापतेः । किं च । जयतात्...भवानीपतिः इत्यादिशंताजय

साधु । अन्यथा तुल्योत्साहः आशिष्यन्त्यतरस्याम् । इति

जयतीत्यत्रोक्त्याकरणादित्यवधेयम् । अत्र व्यनक्तिमत्प्रवृत्तयः ।

श्रीपदी—सखी बुद्धिमत्तिका, यह हो सदाता है, यदि यह (भीमसेन) राज के विरुद्ध हो जायेंगे ।

चेटी—(देखकर) यह कुमार स्थित हैं । इसलिये स्वामिनी इनके समीप

श्रीपदी—सखी, देसा (ही) करते हैं । (दोनों प्रवर्तते हैं) ।

चेटी—(समीप जाकर) अय हो, कुमार की अय हो ।

भीमसेन—(न सुनते हुये, 'जो वह वृद्धि को प्राप्त था' इत्यादि श्लोक का पुनः पाठ करता है) ।

चेटी—(पूजकर) स्वामिनी, कुमार कुछ-से बीछ रहे हैं ।

श्रीपदी—सखी, यदि देसा है तो यह सम्मान भी मुझे सामान्यता ही बना कर बँटकर नाथ के निरुपद्रव को सुनूँगी ।

( दोनों बैसा करती हैं )

भीमसेन—(क्रोध से, सहदेव को लक्ष्य करके) क्या बाँध पावों से संधि ? क्या कुछ में कोष से ती कीरवों को नहीं साधेंगे ? क्या दुःशासन के रथ से कथिर नहीं पीछेंगे ? क्या गया से सुयोधन की जाँचें नहीं ? आप का राजा भले ही दार्त पर लम्बि करतें ॥१५॥

श्रीपदी—(हर्षपूर्वक एक ओर की होकर चुनके से) स्वामी, गुह्यारा देना पहले कभी न गुना था । इसलिये फिर से कहिये ।

भीमसेन—(न सुनते हुये ही 'मध्यामि कीरवज्रम्' इत्यादि श्लोक १॥१६ पर पाठ करता है) ।

गह्वरेव—आर्य, क्या आपने महाराज के सन्देश को सारहीन-सा समझ

लिया है ? वर्तमानगादीये वर्तमानवत्ता इति भविष्यति नद् । नगरा विरचयामने । मध्यामि विमर्देविष्यामि । [अथ बाह्या न मध्यामि इति नु मध्यामदेवेत्यर्थो लभ्यते । एवम-यथावि] । उरहजो वता रचनाय । विदार्यैर्जर्जः । इत्यादौ पद्यमर्थस्तुतिः । विद्यामि, मधुरं दामोन्वयः इति नद् । [एतेन पद्यमप्युच्यते] ॥१५॥

भीमसेनः—का पुनरत्र व्युत्पत्तिः ।

सहदेवः—आर्यं एवं गुरुणा तन्विष्टम् ।

भीमसेनः—कस्य ।

सहदेवः—सुषोधनस्य ।

भीमसेनः—किमिति ।

सहदेवः—

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम् ।

प्रयच्छ चतुरो ग्रामान्कश्चिदेकं तु पञ्चमम् ॥१६॥

भीमसेनः—ततः किम् ।

सहदेवः—तदेवमनया प्रतिनामघानप्रार्थनया पञ्चमस्य ।

अतुगुरुकाहयूतसमाद्यपकाररक्षानोद्धाटनमेवेदं वाग्ये ।

भीमसेनः—(साटोपम्) वरस, एवं कृते किं कृतं भवति ।

सहदेवः—आर्यं, एवं कृते लोके सावस्वगोत्रक्षयाशङ्कि  
भवति कुदराजस्यासन्धेयता च दक्षिता भवति ।

भीमसेनः—सर्वनाप्येतदनयंकम् । कुदराजस्य सावदसावेयता सर्व  
पर्यवाप्तमाभिरितो वनं गच्छद्भिः रक्षरेषु कुरुकुलस्य निघनं प्रतिज्ञातम्  
च धार्तराष्ट्रकुलक्षयः किं सञ्जाकारो भवताम् । अपि च रे मूर्ख—

सुप्तमान्हेपयति क्रोधाश्लोके शत्रुकुलक्षयः ।

न क्षमयति दाराणां सभायां केशकर्पणम् ॥१७॥

इह प्रतिमुग्धः मग्निः । यदुक्तं सर्वैव—आनुपज्ञिककार्येण क्रियते द  
तनम् । अष्टस्वेवेह भीमस्य तस्मिन् प्रतिमुग्धं मतम् ॥ व्यवसायनामा वचनार्थ  
म् । यदाह—प्रतिज्ञाहेतुर्गन्तु व्यवसायो यत्रो मतः । इति ।

अनातिशयम्—अन्योग्यामगन्तुं यत्सनात्रान्ते तत्रानातिशयम् । इति व  
अनुगन्तुं ननु इदं आनायो यावत्तम् । तथापि पुनः पुनस्तावद् .. । अत्र  
विशेषे कावन्धुतायां वा । अनुगन्तुः [तादृशार्थान्तरा सह इव । तादृ  
मवंमविष्टादेशवत्] । पञ्चशममात्रम् । इह भारगुरुयो निर्वहणमग्निः । इ  
इति—यदावच्छिन्नाय भागार्थं भागं गतम् ।

रीमसेन—लेकिन इसमें क्या छूट सार है ?

नहदेव—आर्य, बड़े भाई ने यह सन्देश दिया है ।

रीमसेन—कितने ?

नहदेव—सुघोषन को ।

रीमसेन—क्या ?

नहदेव—

कुशप्रस्थ, कुशप्रस्थ, जयन्त और चारणाक्षत यह चार ग्राम तथा कोई भी एक ग्राम दे दो ॥१६॥

रीमसेन—उससे क्या ?

नहदेव—तो इस प्रकार प्रत्येक ग्राम का नाम लेकर घाघना से और ग्राम के नाम का कथन न करने से विषाक्त भोजन, लाभाणुहदाह, भा आदि अणकार के स्वार्थों का उद्घाटन ही इसे समझता हूँ ।

रीमसेन—(आवेश के साथ) बस. ऐसा करने पर क्या होगा ?

नहदेव—आर्य, ऐसा करने पर लोक में (आर्य का) अपने कुल के नाश से झूत हुरथ प्रकट हो जाता है और कुश-राज के साथ सन्धि की अयोग्यता त हो जाती है ।

रीमसेन—यह सब प्यार है । कुशराज के साथ सन्धि की अयोग्यता तो बतला दी थी 'मय हम सब ने यहाँ से बन जाते हुये कुशकुल के नाश तिज्ञा की थी । क्या छतराह के कुल का नाश भी आप लोगों के निधे : में सज्जा-जनक ही और, भूर्ध,

शेष से शत्रु के वंश का नाश तो तुम्हें संसार में सज्जित करता है, लेकिन मैं वधू के रेश छोटा आना (तुम्हें) सज्जित नहीं करता ॥१७॥

[इन्द्रप्रस्थमिति—] विषमोऽनेत्यादी यथायोग्य कुशस्थलेत्यादिसंक्षेपः ।

रीमसेनदेवतत्त्वानिवृत्तत्वात्तत्त्वस्मरणम् ॥१६॥

अन्यथा मन्वते प्रजातान्त्रेण जानन्ति । त इति शेषः । [स्वर्गोपश्रवादा-  
ने विभेतीति तथा] । अमन्वेयताम्यन्धानविषमता । [अनपेक्षमुद्दिष्टार्थो-  
क्तम् ।] निधनं विनाशः ।

पुष्पानिति । [श्लोकादस्मादिः कश्चित्माणः यदुक्तवत्यः पुष्पात्] ह्ययं



द्रौपदी—(जनान्तिक) नाथ, इन्हें सखा नहीं आती। तुम तो न भूलते।

भीमसेन—(याद करते हुये) यत्स, द्रौपदी कैसे देर कर रही है ?

सहदेव—आर्य, आदरणीय को आये कितना ही समय हो गया। वि-  
प के आवेग के कारण आर्य ने आई हुई भी नहीं देखी।

भीमसेन—(देखकर आदर से) देवी, बड़े हुए क्रोध बाले हमने आप को  
[भी नहीं देखी। इससे कुपित न होवें।

द्रौपदी—नाथ, आपके उदासीन होने पर (हमें) दुःख होता है, कु-  
पिते पर नहीं।

भीमसेन—यदि ऐसा है तो अपने अपमान को समाप्त ही समझो। (उ-  
ठ कर, पात में बँटाकर, मुल देवकर) लेकिन मैं आपको परेशान-सी  
कर रहा हूँ ?

द्रौपदी—नाथ, आपके होते उद्वेग का कारण कैसे हो सकता है ?

भीमसेन—यतमाती क्यों नहीं ? (वेशों की देखकर) या बतलाने का

जब पाण्डु-पुत्रों के जीवित रहते हुये और दूर परवेश न जाने पर  
पद्मा की राजकुमारी इस अवस्था की धारण कर रही है ॥१८॥

द्रौपदी—सखी बुद्धिमत्तिका, नाथ की बतला दो। अगर कौन मेरे अपम-  
न हुआ होगा।

वेदी—जैसी देवी की आज्ञा हो। (भीम के समीप जाकर और ह-  
ठकर) कुमार, आज देवी के क्रोध का कारण इससे भी अधिक था।

नमापकारमुपेक्षमाणेषु । अपगतः चैरनिर्वर्तनेनेति शेषः परिमषीज्वमान-  
शकपणादिरूपा मरम ।] समर्थयस्व आत्मीहि ।

जीवतिष्ठति । [यत् यस्मात्कारणात् इमां दर्शां बहते तस्मात् विभावेदिते  
वि सम्बन्धः ।] यस्य च भावेन भावतल्लक्षणम् इति सप्तमी । दूर्ध्वमिति क्रिय-  
द्रौपद्यमतिशयार्थम् । अप्रोपितेष्वपरदेशवासिषु सन्निहितेष्वित्यर्थः ।] ॥१८॥

अथ नाथस्य सर्वं व्यवसितम् । इतोप्यधिकतरमद्योद्वेगकारणं समाप्तादि-  
या ।



भीमसेनः—किं नामास्मादप्यधिकतरम् । तत्कथय कथय ।

कौरव्यवंशदावेऽस्मिन्क एष शलभायते ।

मुक्तवैशीं सृशन्नेनां कृष्णां घूमशिखामिव ॥१६॥

चेटी—भूलोतु कुमारः । अद्य खलु देवी अम्बासहिता ५  
सप्तमीवर्गेण परिधृताऽऽर्याया गाम्भार्दिः पादबन्धनं कर्तुं गतालीव । [तु  
कुमाली । अग्रे खलु देवी अम्बासहिता सुमहात्ममुद्देण सवनिवर्गेण परि  
अञ्जाए गम्भालीए पादबन्धनं करद् गता आसी ।]

भीमसेन—मुक्तमेतम् । बन्धाः खलु गुरवः । ततस्ततः ।

चेटी—ततः प्रतिनिवर्तमाना भानुमत्या दृष्टा ।

[ततो पट्टिनिपुत्तमाणा भालुमदीए दिष्टा ।]

भीमसेनः—(सक्रीघम्) आः शत्रोभार्यया दृष्टा । हत स्मार्तं कोप  
देव्याः । ततस्ततः ।

चेटी—ततस्तथा देवीं प्रेक्ष्य सखीवदनवत्तदृश्या सगर्वमीयेर विह  
भजितम् । [ततो क्षणं देवीं मेदिश्रम सहीवमणदिण्णुदिण्णुए मगध्यं ईति विह  
भजितम् ।]

भीमसेनः—न केवलं दृष्टा उक्ता च । अहो किं कुर्वः । ततस्ततः ।

चेटी—अदि वातमेति, पञ्चधासाः प्रार्थ्यन्त इति धूयते । तत्परमाशिश  
अदि ते केता न संजयन्ते । [अर्द्धं जयन्तेति, पञ्च नामा तथीमन्ति त्रि मु  
अदि । ना हीन वाणी वि दे केता न संजयीमन्ति ।]

भीमसेनः—सक्रीव, धनम् ।

अन्ते —अर्धं, विनिवर्तमाने । दुर्पोषनकर्म हि ना । परम् ।

कौशलेति । [क एव मुक्तवैशीम् एता दृष्ट्वा दृष्ट्वा घूमशिखामिव  
सृष्ट्वा कौशले वीर्यवन्तः कथयन्तः । इत्यन्तरः ।] अत्र सति तत्रात्र  
सृष्ट्वा देवीसन्तानम् इति एता मुक्तवैशीन्तानानि दुर्पोषन कर्मस्मिन् ।  
दुर्पोषनं वा इति कौशलेत्यन्तरं सन्तानं न च नाम् । इति दुर्पोषणं तन्मायादयश्च  
न कौशले एता दृष्ट्वा दृष्ट्वा । न च कथयन्ती च देवी दानं करोति ।

भीमसेन—इसने भी कविता क्या हो सकती है ? बताओ, बताओ तो ।

यूय-टिजा के समान सुनो छोटी बालों का कृष्ण को दूर पर वह बोन इस  
बीरव-कुल की कलात्मिक के शासन (पतंग) बन रहा है ॥१६॥

बेटा—कुमार, मुनि । आज मुमता आदि सपत्नी-समुदाय से घिरी हुई  
देवी अम्मा सहित शार्दा पाम्पाती की परण-वन्दना करने के लिये गई थी ।

भीमसेन—वह उचित था । बड़े बनों की वन्दना करनी ही चाहिये ।  
उसके बाद—

बेटा—इहाँ से लौटती हुई वो भादुनती ने देख लिया ।

भीमसेन—(घोष से) ओह ! शत्रु की पत्नी ने देख लिया । आह ! देवी  
का घोष उचिन हो था । उसके बाद—

बेटा—तब देवी को देखकर लड़ों के मुख पर हृष्टि झलते हुये उसने गर्व  
के साथ कुछ हँसकर कहा ।

भीमसेन—बेवत देखा हो नहीं, कहा भी । आह, क्या करें ? उसके बाद—

बेटा—मरी शास्तेनी, मुना है कि पाँच गाँव मारि हैं । तब अब भी  
गुम्हारे रेत बजो नहीं बँध रहे हैं ?

भीमसेन—सहदेव, सुन लिया ।

सहदेव—आर्य, इस विषय में क्या कहा जाय ? क्योंकि वह तो कुर्वीचन  
की थी है । बेटिये—

इति शास्वतः । बद्धवेणीमित्यत्र भूतार्थतत्प्रत्ययस्यासाधुत्वमत्र वेणीबन्धनादित्य-  
सम् । वेण्यास्तदावद्धावद्ध उन्मोक्तस्य कथनात् । अत एव वेण्याः संहार  
उन्मोक्तोऽवेति ग्रन्थनामापि पठते । शलमायते पठञ्जवदाचरति । वेणी केसवेपः  
वाह्यम् । एताम् इत्यनान्वावेद्याद् एताम् इति युक्तः पाठः । तथोरनित्यत्वाद् ।  
एषां शीपदी द्यामां च ॥१६॥

अत्र शत्रु वाक्याभूषणम् । अम्मा माता कुन्ती । आ इत्यादिपे । न संयम्यन्ते  
पदनामिद् वन्दनम् । कलत्रशब्दस्यावहलिङ्गतया कलत्रं सेति सामानाधिकर-  
म् । कलत्रं शोणिमार्ययोः इति विश्वः ।

स्त्रीणां हि माह्वयांश्चरन्ति चेनामि भर्तुं गृह्णामि ।  
मधुराणि हि मूर्च्छयन्ते विषविटपिममाश्रिता वट्टी ॥२०॥

भीमनेनः—बुद्धिमन्त्रे, ततो देव्या विषविटपिम् ।

वेटी—दुष्टार, यदि परिजनयोगा भवेत्तदा देवी भवति ।

[दुष्टान्, यदि परिजनयोगा भवे ततो देवी भवति ।]

भीमनेनः—कि पुनरभिहितं भवत्या ।

वेटी—गया एवं भवितुम् । अवि भावयति,

स्वार्त देव्याः देव्याः संवत्सव इति । [यत् एवं भवति । अवि भावय  
तुष्टाणं धमुषेणु नेनेणु कथं भव्यान् देवीम् देव्या मन्त्रीभवन्ति ।]

भीमनेनः—(मगरितोऽयम्) तावु, बुद्धिमन्त्रे, तावु । तदभिहितं वास्तव  
जनोचितम् । (स्वाभरणानि बुद्धिमन्त्रिणं प्रवृत्तानि) अत्रभवति वाञ्छाया  
तन्मे धूयताम् । अचिरेणैव कालेन ।

चञ्चद्भुजध्रमितचण्डगदाभिघात-

संचूणितीरुमुगलस्य मुयोधनस्य ।

स्त्यानावनद्धधनशोणितशोणपाणि-

हस्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥२१॥

द्वीपदी—कि नाय दुष्करं त्वया परिकुर्वितेन । अनुगृह्णस्वेतद्वयवर्तित  
भातरः । [कि नाह दुष्करं तुय परिकुर्वितेन । अनुगृह्णस्व एव वरमिदं  
मादरो ।]

स्त्रीणामिति । [स्त्रीणां चेतांसि भर्तुः] साहचर्याश्रित्यसमाज्या [सहचर्या  
भर्तुं वरशानि भवन्ति ।] मधुरा कोमला मधुररसा वा । [यल्ली विषविटपि  
समाश्रिता मूर्च्छयन्ते हि ।] मूर्च्छयन्ते मूर्च्छां करोति । यदा मूर्च्छयन्ते जनानि  
शेषः । विषविटपि विषजायाविस्तारः । विस्तारो विस्तारः विषयम् इत्यमरः  
कचिन् विषविटपिसमाश्रिता इति पाठः । न तु मनोहरः । वल्लभा वृक्षसाह  
यति । यल्ली लता । आर्याच्छन्दः ॥२०॥



यात के कारण स्त्रियों के विल भी पतियों के अंते हो जाते हैं । विधवे आश्रित सत्ता कोठो होते हुए भी मूर्छा उत्पन्न कर देती है ॥२०॥

रसेन—बुद्धिमत्तिका, तब देवी ने क्या कहा ?

प्रे—कुमार, यदि देवी सेवको से प्रीत होती, तब कहती :

रसेन—तो फिर आपने क्या कहा ?

प्रे—मैंने यह कहा—‘अरी भाग्यमती, तुम्हारे केश जब तक नहीं जुगम तक हमारी स्वाभिनी के केश कंते बंधें ?’

रसेन—(सन्तोष से) ठीक, बुद्धिमत्तिका, ठीक । तुमने वही कहा जो शेषक के लिये उचित था । (अपने आभूषण बुद्धिमत्तिका को देता है)

गिरि पान्चाल की राजकुमारी, सुनिये । अल्प ही समय में—

देवी, फड़कती हुई भुजाओं से घुमाई गई गदा के प्रहार से धूर-धूर हुई शूराओं वाले सुयोधन के चिकने, बिपके हुये और बाड़े चघिर से लाल लाला भीम सेरे केशों को अलङ्कृत करेगा ॥२१॥

पिरी—नाथ, कुपित हुए आपके लिये क्या करना कठिन है ? आपके लिये इस निश्चय का समर्थन करें ।

आहस्ताः समयमन्त इति । अथ केमाहस्ताः प्रयास्तकेयाः । साधु बुद्धिमत्तिके स्थितेन हर्षरूपविलम्बमुक्तम् । यदुक्तं तत्रैव—विलप्रसादो हर्षः स्वात्तन्त्रियं सङ्गमे इति ।

रश्मिरिषादि । हे देवि, तब क्याम्केयाग्नीव उत्तम्यविध्यति बन्धयिष्यति ।  
:: सत् । [चञ्चली परिस्फुरन्ती यौ भुजौ ताभ्यां भ्रमिता या चण्डा गदा अभिपातेन प्रहारेण संवृण्णितं ऊरुयुगलं यस्य तस्य] सुयोधनस्य रक्षणं त्वमपविद्धं शिष्यं [अपनद्धं संतप्तं] वन निरन्तरं यच्छोणितं तेन घोणी वः पाणिपंस्य सं तथा । स्थानं स्तिमितसङ्ख्योः इति विश्वः । आविद्धातिताः समाः इत्यमरः । चण्डः प्रचण्डः ॥२१॥

इह स्थानेत्यादिकः प्रतीकाररूपो चण्डः । यदुक्तं तत्रैव—प्रतिश्रयान्वित । प्रतीकार इति स्मृतः । इह परिन्यासरूपो मुखसधिः । यदुक्तं तत्रैव—यानस्तु कार्यस्य भाविनी निश्चयाद्वचः । नाथ अतिदुष्करं स्वयां परिकुपितेन

सहदेवः—अनुगृहीतमेतदस्माभिः ।

( नेत्रस्थे महान्कलकलः । सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति )

भीमसेनः—

मन्यायस्तारुण्याम्भःप्लुतकुहरवलन्मन्दरध्वानधीरः  
कोणाघातैषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्डः ।  
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातिवातः  
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताड्यतेऽयम् ॥

( प्रविश्य संभ्रान्तः )

कञ्जपुरी—कुमार, एष खलु भगवान्वासुदेवः ।

( सर्वे कृताञ्जलयः समुत्तिष्ठन्ति )

भीमसेनः—(तत्संभ्रमम्) कासी भगवान् ।

कञ्जपुरी—वाञ्छयन्पञ्चात्मासजितेन सुषोधनेन संपन्नकुमारस्यः ।

( सर्वे संभ्रमं नाटयन्ति )

भीमसेनः—किं संपत्तः ।

कञ्जपुरी—नहि नहि संपन्नकुमारस्यः ।

भीमसेनः—किं कृतं देवेन ।

कञ्जपुरी—ननुमायामेतद्व्यवस्थितं देवतः ।

कञ्जपुरी—

प्रदेव—हम इसका सम्पर्क करते हैं ।

( नेत्रम्य मे तौघ वलकल ध्वनि होती है । गव आश्चर्य से मुनते हैं )  
 गन्दन से सुगन्ध समुद्र के जल से भरी हुई गुफा वाले और घूमते हुए  
 जल की ध्वनि के समान गम्भीर, वादन-दण्ड का प्रहार होने पर परजती  
 मिथारी घन-घटाओं की परस्पर टक्कर के समान भयङ्कर कृष्ण के शेष  
 ह, कुद-वंश के नाश के अपशकुनमृत प्रवण्ड पवन (के समान) और  
 सिंहनाद की प्रतिध्वनि के मिश्र इस नयाङ्के को कोन घोट रहा है ॥२२॥  
 ( प्रवेष्टा करके धवराया हुआ )

पुत्री—कुमार, इन भगवान् वासुदेव को—

( सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं )

मतेन—(धवराहट के साथ) कहां है भगवान् ?

पुत्री—पाण्डवों के प्रति प्रेमभाव को न सहन करने वाले सुषोमन ने  
 प्रयत्न किया ।

( सब धवरा जाते हैं )

मतेन—क्या बोल लिया ?

पुत्री—नहीं, नहीं । बोलने का प्रयत्न किया ।

मतेन—भगवान् ने क्या किया ?

नयपतानी धटाः पङ्क्तयस्तासामन्योन्यसकृद्वृत्तद्वन्द्वः ।] यदा समूहः  
 सनम् । [इच्छायाः शोषस्तस्य] अयद्वृत्तः प्रथमवचकः । [कुंरुत्तस्य  
 सस्तस्य] ॥ तातनिर्भातितातोऽनुभः प्रवण्डपवनः । [अस्माकं]  
 प्रतिरवः [तस्य सत्ता तत्तद्वृत्तः] । [अथ बीजगुणाख्यानात् विलोमनं  
 मयङ्गमुक्तम् इति केचित् ।] ॥२२॥

॥ मद्भक्तः । तद्वचनम्—अन्तःपुरचरी वृद्धी विप्रो गुणमेषां निजः ।  
 पुंसः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥ वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः ।  
 ग्निपुत्रस्य इति अण् । संघतो वदः । वद्वे वीरितसंपूर्तं इह  
 उर्वहणसन्धिः । यदाह—विरोधस्याख्यानां यदा दुःखस्य समयो मतः ।  
 इहम् । हन्तं हर्षे । [दक्षितं यद्विभक्तं तस्य तेजः तस्य संपातेन



सूदेव—हम इसका समर्पन करते हैं ।

( नेत्रस्थ से शीघ्र बलवत् ध्वनि होती है । सब आश्चर्य से सुनते हैं )

सामन से ध्रुव समुद्र के अंत से भारी हुई गुफा बाते और घूमते हुए  
—राधा के ध्वनि के समान गम्भीर, वादन-वण्ड का प्रहार होने पर गरजनी  
प्रत्यक्षारी धन-घटाओं की वरस्वर टहुर के समान भयङ्कर कृष्ण । चोप  
बूँक, बुध-वंश के नाश के अपराधुनमून प्रचण्ड पवन (के समान) और  
रे तिरुनाद की प्रतिध्वनि के मित्र इस नगाड़े की कीन धीट रहा है ॥२२॥  
( प्रवेश करके पदराज हुआ )

कञ्चुकी—कुमार, इन भगवान् बापुदेव को—

( सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं )

भीमसेन—(पदराज के साथ) वहाँ है भगवान् ?

कञ्चुकी—पाण्डवों के प्रति प्रेमभाव की न सहन करने वाली सुयोधन ने  
मैंने का प्रयत्न किया ।

( सब पदराज जाते हैं )

भीमसेन—क्या बीच लिया ?

कञ्चुकी—नहीं, नहीं । बीचने का प्रयत्न किया ।

भीमसेन—भगवान् ने क्या किया ?

नित्यः प्रपन्नमतानां यदाः पङ्क्तयस्तामामग्नौन्यतःकुट्टस्तद्विषयः । यदा समूहः  
हृष्टी मिलनम् । [कृष्णायाः वीरस्तस्य] अग्रदूतः प्रथमवचकः । [कुट्टस्तस्य  
धनं नाशस्तस्य] 'नराततिर्मानवातोऽशुभः प्रचण्डपवनः । [शस्त्राकं]  
निरासितं प्रनिरवः [तस्य सन्धा सस्मरयः] । [अन वीरपुलास्यानात् विप्रोभन  
मि मुन्यन्त्यङ्गमुत्तम् इति चेचित् ।] ॥२२॥

कञ्चुकी महत्तकः । तल्लक्षणम्—अन्तःपुरचरो मृदो विप्रो पुराणेष्वान्वितः ।  
वैरायैर्बुधैः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥ वमुदेवस्य अपत्यं पुमान् बापुदेवः ।  
प्रपन्नवृत्तिः कुट्टस्तस्य इति अण् । समतो वदः । यद्धे वीरितवर्धनी इह  
रयको निर्वहणमन्विः । यदाह—विरोधस्याख्यानं यदा कुट्टस्तस्य समयो मतः ।  
वेग नल्लेहम् । ह्यत्वं ह्ये । [सहितं यद्विचर्यं तस्य तेजः तस्य सपातेन



कञ्जुभी — ततः सा महात्मना दक्षितविश्वरूपनेत्रसंपन्नमूर्ति  
दुरपुंसस्मच्छिबिरसमिदेशमनुमातः । कुमारमविलम्बितं ब्राह्मिच्छति ।

भीमसेन — (सोपहासम्) किं नाम दुरात्मा मुषोषनो भगवन्त  
ते । (आशरी दत्तदृष्टिः) आः दुरात्मनकुलपांसन, एवमनिग्रहमस्ति  
नेक्षितमात्रेण पाण्डयकोपेन भवितव्यम् ।

सहदेवः — आर्य किमसी दुरात्मा मुषोषनो वामुदेवमपि भगवन्  
ददेण ग जानाति ।

भीमसेनः — वत्स, दूढः स्वर्ध्वं दुरात्मा कथं जानातु । परम् ।

आत्मारामा विहितमतयो निर्विकल्पे समाधौ

ज्ञानोद्रेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः ।

यं वीक्षन्ते कमपि तममां ज्योतिषां वा परस्तात्

तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम् ॥१॥

आर्य जगन्धर, किमिदानीमध्यवस्थति गुरुः ।

मूर्च्छित । विश्वरूपं विश्वंभरमूर्तिः । सपातो मेतकम् । हस्तको निम्नः ।

पापकारिम् । मूढो मूर्खः । अस्तु वाक्यरूपाया निश्चये वा ।

आत्मेत्यादि । सत्त्वनिष्ठाः सात्त्विकभावापन्ना मुनयः यं भगवन्तं  
साक्षात्कुर्वन्ति । कीदृशाः आत्मारामाः आत्मैवाराधो वनं देवांते ।

आत्मवन्तयोस्तुत्यावेनात्यन्तमोदास्माद्विरुद्धम् । यद्वा । आत्मन्यासमापन्नं

रमन्त इत्यात्मारामाः । त्यक्तेतरसङ्गा इत्यर्थः । पुनः कीदृशाः । नि

निष्कलुषे निर्गुणे स्वकभेदे वा [असप्रज्ञातवशालं] समाधौ निवर्त्त

[विहितमतयः समाहितचित्तः ।] विहितमतयः कृत्वापरागाः । विहित

इत्यपि पाठः । तत्र विहिता धुनिधारणा वेत्ते । इदं

भवति । तथा च बीजा—असंशयं महाबाहो भवो धुनिग्रहं चलम् ।

तु बीजेन वीरगजेन च वृक्षे ॥ इति । यद्वा आत्मारामे

मदन्ताद्विहितमतयः कृत्वापरागाः । यद्वा । आत्मैवाराधो वनं

विहितमतयः । अस्मिन्प्रसंगे निविशन्ते समाधौ ननि यं वीक्षणं इत्यर्थः ।

कञ्चुकी—तत्पश्चात् वह महात्मा प्रकट किये विश्व-रूप के तेज के प्रहार-  
विद्युत्त रूप कुद-कुल को तिरस्कृत करके हमारी छावनी में आ गये हैं और  
नविलम्ब कुमार को देखना चाहते हैं ।

भीमसेन—(उपहास के साथ) क्या दुष्ट दुर्घोषन भगवान् को खाना  
चाहता है ? (आनास की ओर दृष्टि लगाकर) आह ! दुष्ट, कुद-कुल को  
तल्लुत करने वाले, तेरे इस प्रकार भयानक का उल्लङ्घन करने व ला होने पर  
गण्डवों का क्रोध तो केवल निमित्तमात्र ही रह आवेगा ।

सहदेव—आर्य, क्या यह दुष्ट दुर्घोषन भगवान् वासुदेव का भी सत्य-  
वरूप नहीं जानता ?

भीमसेन—वास्तव, यह दुष्ट तो सुख है, फिर भसा क्या जाने ? देखो—

जित प्रकाश और अन्धकार (ज्ञान-अज्ञान) से परवर्ती अनिर्वचनीय पुरातन  
व को आत्मा में रमण करने वाले, निर्विकल्पक समाधि में जिस को लगाये  
द, ज्ञान के उद्रेक से नष्ट हुई अज्ञान-धन्वि वाले, सहस्रनिष्ठ योगी देखते हैं, उस  
(व) को मोह से अन्धा यह (दुर्घोषन) कैसे देख सकता है । २३॥

आर्य जगन्धर, अब बड़े भाई ने क्या निश्चय किया है ?

इत्यादि : ज्ञानोत्प्रेक्षातत्त्वज्ञानमाहात्म्यादिनाशितनामसगुणा विनाशितमिध्या-  
ना वा । अनेन धृतेः फलमुक्तम् । ज्ञानोद्रेकाद् इत्यपि पाठः । उद्रेकः प्रीतिः ।  
न तत्वावृत्त उक्तः । अत्र तु प्रथमं वनवातः ततः समाधिसाधः ततस्तत्त्वज्ञा-  
मिध्याज्ञानविनाशः ततः सर्वनिष्ठता ततः साक्षात्कार इति तत्त्वज्ञानोत्पादकः  
विधि बोद्धव्यः । यद्वा अन्यत्र सङ्कल्पायः, ततो धृतिः, ततः प्रज्ञाप्रोक्तिः,  
अविद्यालक्षणतमोऽन्यनिष्ठेयः, ततो राजसप्रवृत्त्युच्छेदो, धृतीच्छेदाद् ततः  
स्वकी प्रवृत्तिः, तस्याः फलमीश्वरप्रवादः, तेन भगवान्त्वमस्तुतमःप्रकाशयोः  
री इत्यते । समेवं सादृश्यपुरुषोऽपि न पश्यति । किं पुनर्मोहो दुर्घोषन इति  
। । यं कीदृशम् । कमप्यनिर्वचनीयम् । तमसा मिध्याज्ञानानां ज्योतिषां  
ज्ञानानां वा परस्तात्परम् । साम्यामप्याप्यमित्यर्थः । अत एव कमपीत्युक्तम् —  
य एवं कममये मोहान्धो ज्ञानातीति । पुनः कीदृशम् । पुराणमनादिसिद्धम् ।  
तथा च यमनियमादिसिद्धपुरुषधारेणमप्यमिति ध्वनितम् ॥२३॥

। चारो धनमुनिवत् न भगवन्मोक्षदेह इति ।

मंसाभाभरतीति नमः । पत्नी गृहीतवता ।

गेम्याः पञ्चनः विद्याभिवर्धनशोभनानिः ।

राजगोपनिमन्त्रणाद्य रमति स्वीत यमोदुमुभिः ।

महेश्वर-भार्य नमस्तस्मै कवितायां नुनन्नामुनः ।

भीमसेनः—अतः, एते वचनानि एवार्थानामुक्तानि । (उक्तम्) ।

नमस्तस्मै कवितायां नुनन्नामुनः ।

श्रीपदी—(पार्थ पारम्यो) नाथ, अगुरुमवसानिमुपाय हरेति ।  
मुत्सार्क भवतु । [आह, अगुरुमवसानिमुपाय हरितो निमन्त्रण मुत्सार्क

उभौ—प्रतिगृहीतं नमस्तस्मै कवितायां नुनन्नामुनः ।

श्रीपदी—अगुरुमवसानिमुपाय नुनन्नामुनः ।

[अणुं च आह, गुणोवि मुक्तं हि नमस्तस्मै कवितायां नुनन्नामुनः ।

भीमसेनः—अतः पञ्चनमस्तस्मै, किमस्तस्मै कवितायां नुनन्नामुनः ।

भूयः परिभवमन्तिललाविधुरिताननम् ।

अनिःशेषितकीरव्यं न पश्यसि कृकोदरम् ॥२६॥

बीजप्ररोह उद्भेदो यद्विनिधयप्रवक्तव्यः । इति मरणादुद्भेदवत् नुनन्नामुनः ।  
आह—अतएव इति । चारो भीमार्जुनसहदेवनकुलाः । [अमुमुनी वा यमः  
इति कवितायाः । अतएव इति कवितायां विपातः । (पा० २. २. ११)  
अहोरात्रोद्भेदवत् नुनन्नामुनः । ] स भगवान् हरिः कर्मोद्देशार्थः ।  
एवाध्वरो यमस्तनः दीक्षितो दीक्षां प्राप्तिः । [यदा दीक्षा जातास्य  
दित्वादितात् । ] मर्यादितुं धिक्किरः । पत्नी शौचदी गृहीतवता कृत्स्निकम् ।  
[यतमत्र कीरवनिधये केशान्तहरिण्यामीति नियमरूपम् । ] कीरव्याः कुं  
जाताः । पञ्चनो यमार्थं पालनीयाः । राजगोपनिमन्त्रणाद्य क्षत्रियाह्वाय  
रसति शब्दायते । स्वीतं मनोज्ञं [मुनहन्तात् च] यमा स्वादेवम् ।  
दाप्रधानो वाचविशेषः । यदा यमोदुमुभिः पट्टः ।

म भारों पुरोहित हैं, वह भगवान् विष्णु (कर्त्तव्य) कर्म का उपदेश दे  
आधार्य) हैं, राजा (युधिष्ठिर) युद्ध-रूपी यज्ञ की शोका लिये (यज्ञमान  
को (शोरशो) नियम-धारिणी है, कौरव लोग (बलि होने वाले) पशु  
। शिवा के अपमान से उत्पन्न क्रोधा की शक्ति फल है । (यह) यज्ञी  
। राज-समूह को विनश्वित करने के लिये ओर से बज रही है ॥२५॥

हृदेव—आर्य, सब बड़े जनों से अनुमति पाये हम भी अपने पराक्रम से  
साधरण करने के लिये जाते हैं ।

भीमसेन—आर्य, आर्य की आज्ञा का पालन करने के लिये हम तैयार हैं  
उठकर) देवी, अब हम कौरवों के नाश के लिये जाते हैं ।

तैरवी—(आँसू भरकर) माय, ससुरों के साथ युद्ध के लिये जागे जाते  
के समान मायका मङ्गल होवे ।

शेरी—हमें (आपका) सकल-दण्ड स्वीकार है ।

श्रीपवी—ओर माय, युद्ध से लौटकर मुझे फिर भी सान्त्वना दीजियेगा ।

भीमसेन—सञ्जाल की राजकुमारी, अब भूटे आभासन से बधा (प्रदोजन)

(अब) फिर वृकोदर को सब कौरवों का बिना नाश किये (भीर  
कार-अन्य प्लानि तथा सञ्जा से डीन-मुख न देखोयी ॥२६॥

मानकदुनुमिः । इत्यमरः ॥२५॥

अनुज्ञात इति पञ्चम्यास्ततिः । [अनुज्ञाताः कृतानुमतयः] इह देवि मन्त्रायाम्  
नैव कौरवैरुक्तं मुखमन्त्रिः । यदाह—उद्यमः प्रस्तुतायस्य कारण परिशीलि  
। हरेर्पेनमङ्गलं कृतं तेषुध्यान्के भवतु । यच्चात्म्या नुन्ती ददति तस्युपमा  
३ । अलीकं मिथ्या ।

मूय इति । मूयः परिभवः प्रचुरपरामयः । [मूय इति पदच्छेदो युक्ततरः  
भवेन यां कृतान्तिर्लब्धा च ताम्याम् । क्षान्तीति पाठे परिभवस्य क्षान्त्या य  
॥ तथा विदुरितं किन्पटं विच्छाद्य यां क्षानतं यस्य तम् । अहृतकोरपनि  
। पुनः ॥ पश्यति ।] क्षान्तिः क्षमा । विदुरितं व्याप्तम् । वृकोदरं भीमम्  
पश्यति इति पाठे मविप्यति सद् ॥२६॥

## द्वितीयोऽङ्कः

( ततः पवित्रानि कञ्जुली )

कञ्जुली— आदिहोःसिम्ब महासाक्षरयोगनेन— विनयावर, सत्त  
 तम् । अस्मिन्मयी देवी भागुमयी । अदि विनुना अहङ्गाः वातग्नय  
 द्वेपि । प्रगल्भा जिगोरा निह्नाभिभग्यधो रात्रेऽमयवचमुपदीज्यमेव  
 समरभूमि मातर समाम्निजिनया इति । तन्मया कुम्भरं गलतज्जु । ज्ञो  
 विस्तुना महाराजप धम्मम जराभिभूनाय मर्दासात्रमैवापरोपय  
 भयवा विमिति जरापुपलमेव यतः सार्वातःपुरिवासायमेव व्याह  
 रपेहा च । तथाहि ।

नोच्यैः सत्यपि चद्युमीक्षितमलं श्रुत्वापि नाकर्णितं  
 दास्यतेनाप्यधिकार इत्यधिकृता यष्टिः समानम्बिता ।  
 सर्वत्र स्तलितेषु दत्तमनसा यातं मया नोद्धतं  
 सेवास्वीकृतजीवितस्य जरसा किं नाम यन्मे कृतम् ।

आदिहोऽस्मीति । सभापयितव्याः इत्यनेनाश्रयः । अत्रिद्यतामनुन  
 पिः प्रदने संभावनायां वा । अम्बा मातय जननी इत्यमरः । [समय म  
 यमो वा । समयः सपथे भाषासंपदोः कालसंविदोः सिद्धास्ताचारसंकेतानि  
 सरेषु च ॥ इति हेमः ] । रावेयः वर्याः । संभावयितव्याः हप्रिहितीवर्त  
 सभापयितव्याः सम्मानयितव्याः ] । प्रभविश्रुता प्रभावशालिता ।  
 लंकेन । कर्पादामात्रं मर्यादापर्यवसन्नः । अवरोधस्यापारोक्षतः पुरस्कृतं ।  
 त्रिको व्यवहारजन्यः । उत्तोपन्यासे तथाहि इति सत्यप्रयोगः ।

नोच्चरति । अद्युपि सत्यपि उच्चरीक्षितु नासमर्ह न समर्थः । [दिश  
 तः प्रक्रममङ्गादुपेक्ष्यः ] अद्युपि सत्यपि मया उच्यैः नेक्षितमुद्गीर्णा  
 । सत्तेनापि मया यष्टिः [समानम्बिता] समान

## द्वितीय अंक

( तत्पश्चात् कञ्जुकी प्रवेश करता है )

कञ्जुकी—महाराज दुर्बोधन मे मुझे आता ही है— 'विमलधर, शहदी जाओ । देवी भानुमती का पेटा सजामो । यह माता जी की चरण-बन्धना के साधार से निवृत्त हो चुकी अथवा नहीं । क्योंकि उते देखने के पश्चात् मुझे अभिमन्यु को 'मार' डालने वाले, कर्ण, अय्यय आदि अपने सेनापतियों को कुछ-भूमि में जाकर संमानित करना है ।' इसलिये मुझे बहुत शीघ्र जाना चाहिये । ओह ! महाराज का प्रभाव भी कितना मज्जुत है कि मुझ वृद्धावस्था से राजाकांत का केवल मर्यादा-पालन ही अन्तःपुर में कर्त्तव्य रह गया है । अथवा वृद्धावस्था को क्या उलाहना हूँ ? क्योंकि अन्तःपुर में निपुक्त सब भोगों का ही मांचाराङ्गुल्य बेघ और चेष्टा है । क्योंकि—

भाँखें होने पर भी ऊपर की नहीं देखा; पर्याप्त मुनकर भी नहीं मुना; मर्ष होते हुये भी अधिकार के कारण धारण की जाने वाली छड़ी का सहारा लिया; हमेशा मुँहियों का ध्यान रखते हुए मैं कभी अकड़कर नहीं चलता । सेवा करने वाले प्राण धारण करने वाले मुझ में क्या (नई बात है), ओ वृद्धावस्था ने तपन की है ॥ १ ॥

श्रीश्री । अधिकांशोऽयं मम कञ्जुकिर्नो मष्टिस्तमालम्बनमिति अधिकृता योग्या । अनितं व्यापारप्रणयः । उद्धृतं 'यथा स्वादेवं भया न यातं भोद्धतेन भया निमित्तपर्यः । मोर्मानवबलुसी । अरता मम किं नाम कृतम् । अपि तु न किमपि । श्रुतस्य । सेवान्धीकृतजीवितस्य । सेवार्यमन्धीकृतं निष्कलीकृतं जीवितं येन त्वेत्थं । केचित् सेवास्यीकृतजीवितस्य इति पाठः । तत्र सेवार्य स्वीकृतं जीवितं जीवनं येन । तथा च सेवानिमित्तमेव भवान्ध्यादिकं न तु शक्यमिति भावः ॥ १ ॥

नो महाराजदुर्योधनस्य महिषो भूत्वं विपत्तिघोरमावातिमार्त्तं संतप्यते ।  
भानुमदि, शीत राशौ सुमं विविण्मदसंयुमेतस्त किदे

दुज्जोहणस्म महिषी भविष्यं विवलिमघोरमावा अदिमेत्तं संतप्यति ।

चेटी—भट्टिनि, शोभनं भवति सुवचना । स्वपञ्जनः किं न खलु प्रतापं  
[भट्टिणी, सोहणं भणार्दि सुवचना । सिविण्मन्तो जणो किं ॥ कथं एव

भानुमती—हञ्जे एवमेतत् । किञ्च स्वप्रोदतिमात्रमकुशलदर्शनी  
भाति । [हञ्जे एवम् णोदम् । किदु एदं सिविण्मन् अदिमेत्तं अदुमवदम  
पविभादि ।]

सखी—प्रियसखि, यद्येवं तत्कथय स्वप्नं येनावापि प्रतिष्ठापयन्ती  
प्रशंसया देवतासंकीर्तनेन दूर्वादिपरिग्रहेण च परिहरिष्यावः । [प्रियसखि  
एव ता कहेहि सिविण्मन् जेण अहो वि पद्धिपुवअन्तीओ प्रमण्य  
देवदासंकिस्तणेण दुव्वादिपदिमहेण च पद्धिहिसिस्सामो ।]

चेटी—शोभनं खलु भवति सुवचना । अदुससदर्शनाः जवमा देव  
प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्तीति श्रूयते । [सोहणं खु भणार्दि सुवमा  
अदुससदंशणा सिविण्मा देवदार्ण पसंताए कुसलपरिणामा होमि ति सुभोवा

भानुमती—यद्येवं तत्कथयिष्ये । अवहिता तावद्भूवः ।

[अह एवम् ता कहइस्सं । अवहिता दाव हांहि ।]

सखी—अवहितास्मि । कथयतु प्रियसखी । [अवहिदग्धि । कहेतु विप्रम

भानुमती—हला भयेन विस्मृतास्मि । तत्तिष्ठं यावत्तत्त्वं स्मृत्वा कथयिष्यामि

[हला भएण विगुपरिदग्धि ता चित्तु काव सव्वं सुमदिअ कहइस्सं

[इति चिन्ता नाटयति] ।

( ततः प्रविशति दुर्योधनः कञ्चुकी च )

दुर्योधनः—सुखमिदं करयिष्ये ।

गुण्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः ।

करोति महती प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ॥३॥

विप्रमदः स विप्रमः कथार्थस्यापि सुवचः ॥ इति अरणः ।

भूया विवलिमघोरमावा अवा ॥ अत्र [अभिमानात्वा

स्वप्न के दर्शन मात्र से इस प्रकार धीरता छोड़कर तु अब क्यों अत्यधिक रो रही है ?

देवी—स्वामिनो, सुबदना ठीक कह रही है । सोते हुए मनुष्य क्या नहीं रोता है ।

भानुमती—हज्जे, ऐसा ही है । फिर भी मुझे यह स्वप्न अत्यधिक अशुभ-क प्रतीत हो रहा है ।

सखी—प्रिय सखी, यदि ऐसा है तो स्वप्न (हमें भी) बतला दो, जिससे हम भी (उसे) मङ्गल-जनक बनाकर धर्म-कथा, देवों के नामोच्चारण और (ब्रह्म घात) के धारण से (अनिष्ट का) परिहार करें ।

देवी—सुबदना ठीक कह रही है । सुना जाता है कि अशुभ स्वप्न भी की स्तुति से शुभ फल वाले हो जाते हैं ।

भानुमती—यदि ऐसा है, तो कहती हूँ । सावधान हो आओ ।

सखी—मैं सावधान हूँ । प्रियसखी कहे ।

भानुमती—सखी, भय के कारण मैं भूल रही हूँ । तनिक ठहरो, तब मात्र के बतलाती हूँ । (सोचती है)

( तापश्चाद् दुर्योधन और कञ्चुकी प्रवेश करता है । )

दुर्योधन—किसी ने यह ठीक कहा है—

अशु की हानि, छिपकर की गई हो या प्रत्यक्ष, बोझो हो या अधिक, स्वयं हो या दूसरे ने, बहुत ही प्रसन्नता उत्पन्न करती है ॥३॥

। हिसाया प्रगुपेऽज्ञाने । इति हेमः ] । महिषी कृताभिपेदायाम् इत्यमरः । अशु जनो यत्किमपि विप्रलपति । अत्र अशु प्रसिद्धो । विप्रलपति विसंवादि वदति । किं त्वेव मे स्वप्नो...प्रतिभासते । येन मया प्रतिष्ठापयत्वा तया देवतासंकीर्तनेन च परिहरिष्यते । अत्र प्रतिष्ठापयन्त्या स्वप्न शुभायं कथ्येत्यर्थः । [प्रतिष्ठापयन्त्यो शुभफलदत्वेन सम्पादयन्त्यो] । देवि एवमेतन् । अतदर्शना अपि स्वप्नाः प्रसन्नया... । सुखं यो मनोक्तिः ।

गुप्येति । भयकारिणा अशुसामयकारो गुप्या निभूत साक्षात्संबन्धो नक्तो वा स्वयं बान्धेन वा कृतो महती श्रुति करोतीत्यन्वयः ॥ ३ ॥



देवाय होतमभ्युपगच्छामिभिर्हीनमपिपुत्रपुत्रान् सपुत्रपुत्रिणामि ।

कञ्जुकी—देव, देवानिपुत्रमभ्युपगच्छामि ।

का नामात्र भ्राता ।

राजा—विनयगद्गद, किमाह भवान् एतो बटुविर्भावो ।

इत्यथ का भ्राता पुण्ड्रहस्तानामिनि । मूढ पात्र ।

हते जरति गाङ्गे ये पुरस्कृत्य निसञ्चिनम् ।

या भ्राता पाण्डुपुत्राणां गैयास्माकं भविष्यति ॥

कञ्जुकी—(गवैतदप्यम्) देव, न भवाम्यं सकुलः । किं तु भवाम्यं  
पातोऽस्माभिर्भावितोऽस्तिपुत्रं इत्यन एव विज्ञापयामि ।

राजा—एवमिदम् ।

सहभृत्यगणं सयान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।

स्ववलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुमुतः सुयोधनम् ।

कञ्जुकी—(कर्म विधाय समय) आगतं वारम् । प्रतिहतममङ्गलम् ।

राजा—विनयगद्गद, किं मयोक्तम् ।

कञ्जुकी—सहभृत्यगणं पाण्डुमुतं सुयोधनः ॥ (इति पठति) । ए  
रीतमभिहितं देवेन ।

राजा—विनयगद्गद, अद्य खलु भाद्रपदी यथापूर्वं मामनामङ्गलं दाता  
त्प्रातरेव निष्क्रान्तेति व्यासिप्तं मे मनः । तवादेश्य तदुद्देशं यत्रस्था पाण्डु

कञ्जुकी—इत इतो देवः ।

[समुच्छ्वसितमिव विकसितमिवेल्लुप्तेषां] । का नाम अपि तु न व  
नामानवनत्सुतो । ध्रुवशरासनविद्यप्रधनुः ।

हते इति । जरति वृद्धे । गाङ्गे ये गङ्गापुत्रे भीष्मे । शिशुपदी क्लीः

। तं पुरस्कृत्याये कृत्वा गाङ्गे ये हते सतीत्यन्वयः ॥४॥

इच्छ । यो मुष्मानम् ।

। सहभृत्यगणमित्यादी समानो वैकल्पिकः । न चिरारित

इसलिये आज द्रोण, कर्ण, जयद्रथ आदि द्वारा मारे गये अभिमन्यु के मय में सुनकर हमारे चित्त ने साँस-साँस लिया है ।

कञ्चुकी—महाराज, आचार्य के शस्त्रों के सामर्थ्य के लिये यह कोई तेजुस्तान्य कार्य नहीं था, और न ही कर्ण या जयद्रथ के लिये । इसमें प्रशंसा की क्या बात है ?

राजा—विनयगण्ड, क्या कहा आपने— 'बड़े वन्य वाले अकेले बालक को नहीं ने मारा, इसलिये इसमें कुरखेंदों की प्रशंसा की क्या बात है ।' पुत्र,

शिखण्डी को आगे करके बड़े गङ्गादेव (गङ्गा-पुत्र, भीष्म) की मारने पर पाण्डु के पुत्रों की प्रशंसा हुई है, वही हमारी होगी ॥१॥

कञ्चुकी—(सज्जित होकर) महाराज, मेरा यह अभिप्राय नहीं था । पराशुराम के पराक्रम की कुण्ठा हमने पहले कभी नहीं देखी, इसलिये ऐसा कहा है ।

राजा—देखा ही है—

श्रीम ही पाण्डु का पुत्र अपने बल से युद्ध में भृत्य-वर्ग, वन्धु-जाग्यव, मित्र, तथा अनुजों सहित सुयोधन को मार डालेगा ॥५॥

कञ्चुकी—(बानों पर हाथ रखकर, मय के साथ) पाप शांति हो ।

राजा—विनयगण्ड, मैंने क्या कहा है ?

कञ्चुकी—'भृत्यवर्ग सहित ..... पाण्डुपुत्र की सुयोधन ।' (इत्यादि का करता है) महाराज ने इसका विपरीत कह दिया ।

राजा—विनयगण्ड, आज भाग्यमती पहले के समान मुझ से बिना बड़े भय से प्रतः ही बाहर बसी गई । इससे मेरा चित्त व्याकुल है । इसलिये ऐसा बतलाओ जहाँ भाग्यमती स्थित है ।

कञ्चुकी—महाराज, इधर से, इधर से ।

शिक्षणः । नमस् एवाय न तु नमस्तमामः ॥ १ ॥

पठति । न विराटपाण्डुपुत्रं सुयोधनः इत्याचारेण । व्याजिप्तं—[व्याकुल], १५ । इत्युक्त्वा गच्छामिति शेषः ।

( तथी परिणामः । )

कचपुत्री—(गुरोःशोभनम् । मन्त्रः—) दम्पत्यप्यप्यो देव, वरः ज  
एवमुहिमं शिशिरमपीरकोर्द्धे शिशिरमप्यवच्छुभेऽस्ति तस्मिन् निद्रुमन्त्र  
ईषदागोहिमप्यवच्छुभेऽस्ति तस्मिन् निद्रुमन्त्र  
तस्मिन् निद्रुमन्त्र  
कचपुत्री—(गुरोःशोभनम् । मन्त्रः—) दम्पत्यप्यप्यो देव, वरः ज

प्राप्तेयमिदमकरन्दकगलकोशः

पुष्पैः सम निपतिता रजनीप्रबुद्धैः ।

अर्फाद्युभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्ध-

संमूचितानि कमलान्यलयः पतन्ति ॥६॥

राजा—(समन्तादवलोक्य) विनयमय, इदमपरममुनिगन्धुर्वाति स्वकीय  
पद—

जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै-

हंस्तैर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः ।

मुहिनं हिमम् । शिशिरं शीतलम् । उर्द्ध्वं शिशिरं अपलीकृतम् ।  
प्रसववन्धनम् । बन्धुरं निम्नोन्नतम् । देवप्रसिद्धा पुष्पाधेः । देवप्रसिद्धा तु  
निर्गुण्डी नीलिकाणि मा । इत्यमरः । प्रियङ्गुः फलिनी च  
इत्यमरः । क्यामलता सर्तुं स इति प्रसिद्धा । [मुहिनकणः  
यः ममीरणस्तेनोर्द्ध्वं शिशिरानि यानि बन्धनानि तेभ्यः च्युता याः देवा  
तामिः विरचितः कुसुमप्रकरो यस्मिन् । ईषदागोहिता ये मुग्धवधूनां च  
ते इव पाटलानि यानि लोघ्रकुसुमानि तैर्विजितं क्यामलतायाः सौभाग्यं  
यस्मिन् । उन्मीलितैर्विकसितैः कुसुमैः सुरभिश्च तत् शीतलं च] ।

प्राप्तेयेति । प्राप्तेयं हिमम् । (तेन मिथः) यः मकरन्दः पुष्पराजः

कोशा येषां तैः ।] करालो बन्धुरे शुद्धे इत्यमरः । कोशो म  
। यलयो भ्रमराः । [पुष्पैः सम निपतिता अलयः ।

मिश्रा ये मुकुलास्तेषां उदराणि तत्सम्बन्धिना सान्

( दोनों घूमते हैं )

१। कञ्चुकी—(सामने देखकर, चारों ओर गन्ध सूँघकर) महाराज, देखिये, सुखिये । यह आपके सामने बालोद्यान रहा, जिसमें ओस के कणों से शीतल जलु द्वारा हिसाये गये घृन्तों से गिरे हुए दोष्ठातिका-पुष्पों ने पुष्पों की राशि बनायी है, जिसमें कुछ साल भोली वष के कपोल के समान साल मोक्ष-पुष्पों ने रसम-सता के सौन्दर्य को ओस लिया है, जो खिले हुये वकुल और पुष्प के पुष्पों से सुगन्धित एवं शीतल है और जो प्रभात काल में सुन्दर प्रतीत हो रहा है । महाराज इसे देखें । क्योंकि—

रात्रि में खिले हुए, हिम-कम मिश्रित पुष्परस से विषम मध्य-भाग वाले पुष्पों के साथ गिरे हुए भोरे सूर्य की किरणों से खिली हुई कलियों के अन्त-भाग की तीव्र गन्ध से सूचित किये गये कमलों पर पड़ रहे हैं ॥६॥

राजा—(चारों ओर देखकर) विमलधर, यहाँ प्रभात में यह और भी सुन्दर है । देखो—

खिलना प्रारम्भ होने पर फैली हुई पंखुड़ियों के छोर कपी शरीरों में से होकर अन्दर प्रविष्ट सूर्य की किरणों से छुये जाकर अनेक छुये वे भोरे, जिसका अङ्गराग तीव्र गन्ध से कुछ-कुछ प्रकट हो रहा है, अपनी स्थियों के साथ फैली हुई कमलिनी के मध्य-भाग कपी शय्या की राजाओं के समान—(पुष्पों का) विकास प्रारम्भ होने पर फैली हुई पंखुड़ियों के छोरों के समान

[सूचितानि] कमलानि पतन्ति गच्छन्ति । [पततेः गच्छन्त्वास्तकर्मकत्वम्] ॥६॥

[अमुष्मिन्पुराणे] । उच्यते प्रभाते ।

कृष्णेति । जम्भारम्भो विकासोपक्रम इत्यर्थः । [जम्भारम्भेण प्रवितता । दलानामुपान्ताः ते एव जलानि पक्षे दलानामुपान्ते पानि जलानि वासास्तैः प्रविष्टैः भानोः किरणैः स्पृश्यमाना नृपतय इव विबुद्धाः । तनुरिमलश्चासी स्तोकं तदयमङ्गरागो येषाम्, पक्षे पनपरिमलस्य चन्दन-न्यस्य स्तोत्रेनाद्येन मध्यः, यद्वा स्तोकं तदयः अङ्गरागो येषाम् । एते द्विरेकाः कचनलिनीगर्भ एव शय्या ताम् । पक्षे विकचनलिन्यो गर्भे यस्यास्तादृशी ध्याम् । स्त्रीभिः सार्धं मुञ्चन्ति ।] दलानामन्तः पञ्चमोपम् । तदेव जल-

स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागा

मुञ्चन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः ॥३॥

कञ्चुकी—देव, नग्नेषा देवी भानुमती सुवदनया तरलिकया -  
माना तिष्ठति । तदुपसर्पंतु देवः ।

राजा—(हृष्टा) आर्यं विनयन्धर, पृच्छ त्वं साष्ट्रप्रानिकं मे , , ,  
तुम् । अहमप्येव देवीं हृष्टानुपदमागत एव ।

कञ्चुकी—एष कृतो देवादेशः । (इति निष्क्रान्तः)

सखी - प्रियसखि, अपि स्मृतं स्वया । [पिप्रसहि, अवि मुमरिदं तु]

भानुमती—सखि, स्मृतम् । अद्य किल प्रमदवन आसीनाया ।  
केनाप्यतिशयितदिव्यकविणा मकुलेनाहिगतं व्यापादितम् । [सहि, मुम  
अज्ज विल पमदवणे आसीणाए मम अगदो केणादि अतिसद्दिदि  
एउलेण महिमदं वावादिदम् ।]

उभे—(अपवार्यं । आरमगतम्) शास्त्रं पापम् । प्रतिहृतमम-  
(प्रकाशम्) ततस्ततः । [मत्तं पावम् । पडिहदं अमङ्गलम् । तदो तदो ।]

भानुमती—अतिसंतापोपगृहीतहृदयया विस्मृतं मया । तत्पुनरपि  
कथयिष्ये । [अदिगंशवोवगहिदहिअभाए मए विमुमरिदं । ता पु  
मुमरिअ बहदमम् ।]

राजा—अहो देवी भानुमती, सुवदनातरलिकाभ्यां सह किमपि मग्न  
निष्ठति । भवतु । अनेन सनाजालेनागतरितः शृणोमि तावदासां विषयता  
(इति तया स्थितः) ।

सखी—सखि, अर्थं समापेय । कथयतु प्रियसखी ।

[सहि, बलं मडावेण । बहेतु पिअगही ।]

मन्त्रादो मन्त्राद वा । भानीति वाः । अग्नेध्यानी हव्यने इति  
पूर्वाङ्गोऽयम् इन्द्रमन्त्रीचापा श्रीकृतः । यज्ञः । भामिरिति पदो पु  
न्यत्र आताप्यः । कथायामपि आताप्यः । नाभः पुनिरु एव च । तन्मन्त्रे  
बदेरुदहं कुरुवच । अन्त्राय अग्नेर्बोभिः शृणवमाणा इति संबन्धः । त  
दन्त्राय इति बोधिः इत्यर्थः । इति चरणिः । स्त्रीकथनम् । द्विरेफो ५

गाथों में से होकर अन्दर प्रविष्ट सूर्य की किरणों से दूने पर जगे हुए, ओम्  
धन के स्वस्तीश से दिखलाई देते हुए अङ्गराय वाले राजा अपनी खियों के  
पि खिली हुई कर्तनियों को मध्य में धारण करने वाली शाय्या को जंते—  
रहे हैं ॥७॥

कञ्चुकी - महाराज, सुषदना और तरातका द्वारा सेवा की जाती हुई यह  
ही भाग्यती बंठी है । इसलिए महाराज पास जायें ।

राजा—(देखकर) आर्ष विनयकर, तुम मेरा मुँह का रस तैयार कराने  
ओ । मैं भी देखी से मिलकर बस यह पीछे-पीछे आया ।

कञ्चुकी—महाराज का आदेश यह किया । (बाहर चला गया) ।

सखी—प्रियसखी, क्या आपको याद आया ?

भाग्यती—सखी, याद आया । आज मेरे प्रमदवन में बंठी हुई के सामने  
सी अत्यधिक दिव्यरूपवारी नकुल ने सी तर्प मार डाले ।

दोनों—(एक आर को होकर स्वगत) पाप ज्ञान्त हो । अमङ्गल का नाश  
। (प्रकट में) उसके बाद ?

भाग्यती—अत्यधिक संताप से व्याकुल हृदय वाली मैं (फिर) धूल गई ।  
लिये फिर से याद करके कहूँगी ।

राजा—आहा ! देखी भाग्यती, सुषदना और तरातका के साथ कुछ बातें  
रही हैं । मरछा, तब इस सता-गुल्म से छिपकर इनके स्वर-आलाप की  
या । (बैठा करके सड़ा होना है) ।

सखी—सखी, संताप न करो । प्रियसखी (आये) कहो ।

तपस्वीय सर्व योग्यम् ॥ ७ ॥

पामिकं मुडे तापु । ममापत एव दिव्यरूपिणा । अत्र नित निदधे ।  
नविना गुन्दरेण । नकुलो नेतर इति प्रविष्टो जन्तुः पाण्डवम् । अहिरतं  
तम् । अथ च सङ्गुलम् ॥ अनापकार्यं निष्ठुम् । प्रकाशमिति । यत्तु  
नवाप्यं प्रकाशं तमिमज्जे । इति भरतः । तनवतः । मन्त्रदयाया मन्त्र  
॥

राजा - किं नु यत्तस्य मन्त्रावधारणम् । अत्रावधारणम् ।  
 रागभक्त्याप्रियतामेव मन्त्रित्वा दद्यात्तु अत्रावधारणम् । अत्रावधारणम् ।  
 ननु दुर्योधनो मन्त्रितः कीदृशः—

किं कण्ठे निमित्तीकृतो भुजन्तानाम् प्रमादन्मया  
 निद्राच्छेदविवर्तनेभ्यः अभिमुखः नाद्यामि मन्त्रिता ।  
 अन्यस्त्रीजनगन्तव्यान्धुम् स्नाने मया सज्जितो  
 शोणं पश्यामि कं प्रिये परिजनानामभ्यर्चयाम्ये मयि

(शिकारः) मन्त्रितः—

इयमस्मदुनाश्रयैकचित्ता मनसा प्रेमनियदमन्तरेण ।  
 नियतं कृपितातिवह्निभक्त्यात्मन्यमुदप्रेक्ष्य ममापराधमेव  
 तयापि शृणुमस्तत्रात्रिकं वक्ष्यतीति ।

भ्रातृमती—हता, अहं तत्तत्तस्यातिवह्निभक्त्या मनुष्यान् हन्ति  
 जाता । [हता, अहं तत्तत्तस्यातिवह्निभक्त्या मनुष्यान् हन्ति  
 जाता ।]

राजा—(गन्तव्यम्) किं नामातिवह्निभक्त्या मनुष्यान् हन्ति नोक्तं  
 जाता । अत्रिमनसा वगत्या मन्त्रीमुत्तानुरक्तया वपमेवं विप्रलम्भाः । (सोद्विग्नः  
 इयमस्मद्-इति पठित्वा) शृणु दुर्योधन, कुलटाविप्रलम्भमानमारमानं बहुमन्त्रितं

किं कण्ठ इति । अद्य मया प्रमादात् तव कण्ठे पुनः ० निमित्तीकृतः किम् ।  
 निद्रायाश्चेदोऽवसानं तत्र विवर्तनं पार्श्वपरिवर्तनम् । [अद्य गतामो राजावित्तं  
 निद्राच्छेदविवर्तनेषु अभिमुखं अभिमुखो भूत्वा इत्यर्थः । मया त्वं न संभारिता  
 संभारिता किम् । ] संभारिता संभुलीकृता । [अन्यस्त्रीजनेन सह या] त्वं  
 आलापः [तया सधुः छुद्रवृत्तिः अहं त्वया सज्जितः किम् । ] उपासकः  
 विसंवादः । [परित्रय इवोपालम्भयोग्ये मयि यद्वा परिजनस्योपालम्भस्तदोमे  
 कतापराधोऽहं परिजनवर्जितस्सर्वो न स्वमया मयि कोपः कार्य इत्यर्थः । ]

इयमिति । [अस्माकमुपासकः साविध्यम् नस्मदु० स एव एकः प्रधानः ०]

१—इसके सन्ताप का क्या कारण हो सकता है ? अथवा यह मुझसे ही वास-भवन से निकल आई है, इस से मैं इसके कोप को समझ ही भानुमती, दुर्योधन आपके कोप का पात्र नहीं है ।

सापरवाही के कारण मैंने कष्ट में भुझा रही तब के पात्र को निर्गुण ? क्या (मैंने) निद्रा-भङ्ग में करवट बदलने पर तुम्हारी ओर मुझ में तुम्हारा आदर नहीं किया है ? क्या तुमने स्वप्न में मुझे अग्न्य की तालाव के कारण क्षुब्धवृत्ति देख लिया है ? प्रिय, सेवक के समान योग्य मुझ में क्या दोष देख रही हो ॥८॥

) अथवा—

राज हम से आश्रित चित्त वाली यह अवश्य ही अपने मन से, जिसमें रह ही गया है, अतिप्रिय होने के कारण मेरे किसी समिक से अपराध न करके रह हो गई है ॥९॥

मैंने कि यह क्या करेगी ।

मती—सखी, तब मैं उस अतिशय दिव्य रूप वाले नकुल के दर्शन उत्त हो गई ।

१—(निसिमाकर) क्या अतिशय दिव्य रूप वाले नकुल के दर्शन से हो गई ? तो क्या माद्री के मुख पर आसक्त हुई इस पावित्री ने हमें षोड़ा दिया है ? (नोचते हुए—‘इयमस्मद्’ इत्यादि २।६ का फिर ५) पूर्ण दुर्योधन, पृथ्वी द्वारा चञ्चित स्वयं को बहुत मानने वाला तु

या सा तपोक्ता । इय प्रेमनिबद्धमत्सरेण मनसा मम अपराधलेषाय अतिवह्नमत्वाद् नियतं कुपिता इत्यन्वयः ] । उपाधयः सख्य । यावद् । [ मम साक्षिण्यमेव वाञ्छन्तीत्यर्थः । ] मनसा कारणभूतेना-  
कचित्तीत्यन्वयः । निबद्धं निरस्तम् । [ प्रेम्णा निबद्धो मत्सरोऽन्यत्सो-  
यस्मिन् । मत्सरोऽन्यशुभद्वेषः इत्यमरः ] । स्वयमुत्प्रेक्ष्य असन्नमपि ] ॥ ६ ॥

या वेश्यापानवा कृपा प्रेमदर्शनेन प्रताप्यमाणम् । माद्रीमुक्तो नकुल ॥

१. १२५१ ग्या वशिष्ठाः । ] विप्रसम्भो विसबादः इत्यमरः । कुलठा वन्यकीटवरी



ऽधुना किं वक्ष्यसि । (किं कष्ट इत्यादि पठित्वा । दिशोऽवनोत्स्य) ।  
 मेधास्याः प्रातरेव विविक्तस्थानाभिलाषः सखीजनसंक्यागु च  
 दुर्योधनस्तु मोहावविजातयन्मकीहृदयसारः कापि परिभ्रान्तः ।  
 मत्परिग्रहपासुले—

तद्भूरीरुत्वं तव मम पुरः साहसानीदृशानि

श्लाघा सास्मद्वपुषि विनयद्व्युत्क्रमेऽप्येव रागः ।

तच्चोदार्यं मयि जडमसौ चापले कोऽपि पन्थाः

ख्याते तस्मिन्वितमसि कुले जन्म कौलीनमेतत् ।

सखी—ततस्ततः । [तदो तदो ।]

भात्रुमती—तत्त उज्जितत्वा तदासनस्थानं सप्तमण्डपं प्रविष्टा । ततः  
 मामनुसरन्नेव तप्तमण्डपं प्रविष्टः । [ततो उज्जित्वा तं भात्रुद्वाराणं स्थानं  
 प्रविष्टा । तदो सोवि मं अनुसरन्तो एव तप्तमण्डपं प्रविष्टो ।]

राजा—अहो कुलटोचितमस्याः पापाया अशासोन्मवस् ।

यस्मिंश्चिरप्रणयनिर्भरवद्वभाव-

मावेदितो रहसि मत्सुरतोपभोगः ।

तत्रैव दुश्चरितमद्य निवेदयन्ती

ह्रीणांऽसि पापहृदये न सखीजनेऽस्मिन् ॥११॥

इत्यमरः । [विविक्तं विवक्षम् ।] विविक्ती पुनर्विजनी इत्यमरः । [सखी  
 आदरः । मोहावविजातयान् ।] अन्वयो वेत्या । ततः स्वैर्यम् [आचार्यं व]  
 परिग्रहोऽत्र कल्प्यम् । तत्र भात्रुता अगती ।

तद्भूरीरुत्तमिनि । [मम पुरः तत्र तन् तया दक्षितं भोक्तव्यम् । परोक्षे  
 ईदृशानि परगुणवचनवशात् । [साहसानि] । [विनयस्य पाणिप्रत्यक्ष  
 अनुक्रमोऽस्ति] । [तत्र एव] रागोऽनुरागः । [यदि जडमसौ तन् तया प्रदत्त  
 भोक्तव्यं दातव्यम् ।] चापले चापशले । तत्र कोऽपि पाशः किमपि दार्यं  
 [वृत्तिलिख्यं] । सर्वत्र तदेवमन्वयः । [तस्मिन् वयाने विनयसि निवर्तते]

॥ कहेंगा ? ('कि कष्टे शिविलीकृत' इत्यादि राग का पाठ करके, चारा  
जकर) ओह ! इसी लिये इसकी प्रातः ही एकान्त स्थान की अभिलाषा  
लियों के साथ स्वर-आलाप में प्रेम हुआ है । दुर्घोषन तो मोह के कारण  
(अभिचारियों) के हृदय की वास्तविकता को न जानने के कारण  
घोले में ही रहा । ओ पापिनी, मेरे कलत्र को कस्तूरित करने वाली,  
कहो) मेरे सामने तेरी वह भीकता, (और कहाँ तेरे) ऐसे साहसपूर्ण  
राम ! (कहाँ) हमारे रूप (और) की (वह) प्रशंसा, (और कहाँ)  
के उत्तम के प्रति (यह) आसक्ति ! (कहाँ) मुक्त मन्दकुट्टि के प्रति  
। वह उदारता, (और कहाँ) चञ्चलता का (यह) विलक्षण मार्ग !  
। कम विमुक्त प्रसिद्ध कुल में जन्म, (और कहाँ) यह निन्दनीय बर्म ॥१०॥  
श्री—कसके बाद ?

शानुमती—तब मैं उस बँडने के स्थान को छोड़कर लता-मण्डप के आश्रय  
गई । तब वह भी मेरे पीछे-पीछे आता हुआ लता-मण्डप में ही घुस गया ।  
रामा—ओह ! इस पापिनी की कसो अभिचारियों जैसे मिलजुलता है ।  
। वास्तविक हृदय वाली, जिन लखियों से तुने एकान्त में मेरे मुरत के  
ग का लम्बे प्रेम के कारण बड़े बाव से चर्चन किया था, आज उन्हीं  
लखियों) से अपने दुराचार की अतताती हुई तू लज्जित नहीं होती ॥११॥

व जन्म । एतन् । कीर्तनमपवादः । कीर्तन वस्तुभिर्बुद्धं कुर्वीत । आवादः ।  
विषयः ॥ १० ॥

नन. मोक्षि मामनुस्यमानसमेव लतामण्डप प्रविष्टः । अज्ञानीराव  
गता ।

परिमतिनि ॥ (दे रागहृदये परित्यक्त्योदये विरं प्रसीत विरदलदेव वः  
।५ परिमार्जं यथा तथा बद्धो भावो परित्यक्तमंति तदया तथा  
लोपभोगः रहति आदेदितः सर्वेव परिमन् मन्वीकने अथ दुराचिनि  
त्यन्ती न हीणा इति । प्रलयः प्रेमिनि विस्तारने इति विरह । भावो-  
त्तमः । एतदेकान्तः । हीना मज्जावती ॥ ११ ॥



दोनों—उसके बाद ?

भानुमती—तब उसने दृष्टता के साथ हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली

राजा—(सोचते हुये) गर्व से हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली ? (सोच  
अब आगे नहीं मुना जाता । अचछा तो मैं दूसरे की ओर को दूषित करने  
ही बने उस नीच माझो के पुत्र के प्राण लिये लेता हूँ । (कुछ दूर आकर  
। सोचकर) या पहले इस पापिनी को ही दण्ड देना चाहिये । (लौट  
ग है) ।

दोनों—उसके बाद ?

भानुमती— इसके बाद आर्यपुत्र के (अपाने के लिये बिये गये) प्रातः-  
तीन मङ्गलमय वाद्यों की स्वन से मिले हुये बाराङ्गनाओं के संगीत के  
से मुझे जगा दिया ।

राजा—(अनिश्चय से) 'मुझे जगा दिया' इस कथन से प्रतीत होता है  
इसने स्वप्न-वर्णन का वर्णन किया हो । (सोचकर) ओ जी हो, सखी के  
से स्पष्ट हो जायेगा ।

( दोनों खेदसहित एक दूसरी को देखती हैं )

सुवर्णा—इसमें जो भी अनिष्ट है, उसे भागीरथी आदि नदियों के जल से  
कर दिया जाय । मयवान् साहस्यों के आशीर्वचन और आहुति बिये गये  
प्रखलित अग्निदेव द्वारा मष्ट हो जाय ।

राजा—अब सन्देह की आवश्यकता नहीं । इसने यह स्वप्न-वर्णन का ही  
किया था, लेकिन मुझ अश्रमति ने कुछ अग्य ही समझ लिया—

सौभाग्य है कि मैं आधी सुनी बात से होने वाली बख्शना से उत्पन्न आदेश  
ना नहीं गया; सौभाग्य से मैंने आतपीत के क्रोध ने ही क्रोध से बठोर

। ] भारविलासिनी वेदया । [ अत्याहितं महाभीतिदं । अत्याहितं महाभीतिः

रः । आहुतिभिर्हुतस्तेन । हुता आहुतयो यस्मिन् तेन इति वा । ]

विपुरभिगन्धिना ज्वलनेनापह्रियताम् । अत्र अत्याहितमप्रशस्तम् ।

प्येति । [ अर्घ्ययुतेन यो विप्रसम्मो वञ्चना तेन जनितः यः क्रोधस्तस्मात् ।

। गत इति दिष्ट्या भाग्येनेति हर्षहेतुः दिष्ट्या समुपजीयं चेत्यानन्दे

मां प्रत्याययितुं विमूढहृदयं दिष्ट्या कथान्तं गता  
मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्ट्या न जातं जगत् ॥

भातुमती—हता, कथय किमत्र शुभमूचकम् ।

[हता, कहेहि कि एत्थ सुहृमूचकम् ।]

सखी खेटी च— (अन्योन्यमवलोक्य, अत्रायं) अत्र नास्ति शोभनं

शुभमूचकम् । यद्यत्रालोकं कथमिष्ये तत्प्रियसदस्या अपराधिनो भविष्यापि ।  
एव स्तिरयो जगो यः पृष्टः परपमपि हितं भवति । (प्रकाशम्) सखि, स्तो  
र्यैतवशुभनिवेदनम् । तद्देवतानां प्रणामेन द्विजातिजनप्रतिपदेन चान्तर्गतम् ।  
एतु इद्विणो नकुलस्य वा दर्शनमहिभक्तवर्षं च स्वप्ने प्रशंसन्ति विवक्षन् ।  
[एत्थ पत्थि त्योअ वि सुहृमूचकम् । जइ एत्थ अत्तीअं कहइस्सं ता विवर्ण  
अवराहिणी भविस्सम् । सो एव्व सिणिद्धो जणो जो पुच्छिदो पस्सं वि वि  
भण्णादि । मही सअं एव्व एद अनुइणिवेदणम् । ता देवदणं पण्ण  
दुजादिजनपडिगहेण अ अन्तरीअदु । एह द्वाडिणो पवसस्स वा संसं जति  
पवह अ सिविणए पसमन्ति विवक्खणा ।]

राजा—अजितयमाह सुवदना । नकुलेन पद्मप्राप्तवधः स्तनांशुकापहरणं  
नियतमस्तिदोषं तर्कयामि ।

पययिण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामे शुभाशुभाः ।

शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्मृशतीव माम् ॥१३॥

(वामाक्षिरमदनं गृहयित्वा) भाः, मनावि नाम दुर्वोधनस्यानिमित्तानि इव

दायवदः । ] दिष्ट्या हर्षेण । जो निवेधे । यमागोता निवेधवचनाः वि  
कोणात् । [ दिष्ट्या अर्पकवने कथामध्ये यथा स्या लोभेन पदार्थं कर्तुं को  
स्याहृतमुक्तम् । दिष्ट्या विभुर्ध्वं यथार्थं दृष्ट्वा तस्य हृदयं यस्य तं प्री  
प्रत्याययितुं कोऽपि नुम् । कथा अन्तं गता समाप्ता । [ दिष्ट्या जगत् मिथ्या  
दूषितया अथवा विरहितं न जातम् ] ॥ १२ ॥

नान्यं यत्र किमत्र प्रसक्तं किं चानुममूचकमिति । ततोऽस्तीक सम्बन्धन  
त्रिवचन्या अपराधिनो भविष्यामः । कर्षवेदनस्यदुष्टानिवेदनम् । तथाप्य

नहीं बहो; हर्ष है कि मुझ दुर्घ्न को विरवाप्त दिताने के लिए क्या समाप्ति पहुँच गई; सौभाग्य है कि निध्या रोमारोपण की गई इस (भानुमती) से । शून्य नहीं हुआ ॥१२॥

भानुमती—सखी, बतलाओ इसमें क्या शुभ-सूचक है ?

सखी और सेटी— (परस्पर एक दूसरे को देखकर, एक ओर को) इसमें भी शुभ-सूचक नहीं है । यदि इस विषय में झूठ कहूँगी तो प्रियसखी की विनी हो जाऊँगी । प्रेमी जन वही है जो पुछने पर कठोर होते हुए भी र बात कहे । (प्रकट में) सखी, यह तो सारा ही अनुभ-सूचक है । इस-देवी को प्रणाम करके और ब्राह्मणों को दान देकर अनिष्ट रोका जाय । । लोग स्वप्न में जंगली सुअर या नेबले के दर्शन और ती सर्पों का वध रजा नहीं बतलाते ।

राजा—सुबचना सत्य कह रही है । मकुल द्वारा ती सर्पों का वध और सेटी का अपहरण निश्चित रूप से अनुभ फल वाला है, ऐसा मैं समझता हूँ ।

यद्यपि शुभ-अनुभ स्वप्न लोगों को समय-समय पर देखते रहते हैं, लेकिन ती संख्या तो, मानो, छोटे भाइयों समेत मुझ पर ही लग रही है ॥१३॥

(बाई जीत का फड़कना सूचित करके) ओह ! ये अपराधुन मुझ कुर्वीचन के भी हृदय को व्याकुल कर रहे हैं । (संभल कर) अपना डरपोक लोगों के

यत्किमप्यस्याहितं तदेवतानां प्रणामेन द्विजातिजगत्प्रतिग्रहेण चान्तरीक्रियताम् । पुनर्दृष्टिं नकुलस्य वा दर्शनमद्विगतव्यापादानं च स्वप्ने प्रसंसन्ति विचक्षणाः । अथ वर्यं निष्कुरम् । अन्तरीक्रियतां शाम्यताम् । इहासीरलंकारः । मकुलम्

पर्व—आसीरिष्टार्पणं तस्मिन् इति । विचक्षणाः पण्डिताः । अदितयं सत्यम् । प्रथमः सर्पः । [अस्मिन्नुभयमुदकं उत्तरकाले यस्य ।] उदकं उत्तरविशुद्धिः । पययिषेति । [स्वप्नाः पययिष शुभाशुभाः दृश्यन्ते । कदाचित् शुभपत्नी-

श्राद्धकाः कदाचिदशुभपरिणामा इत्यर्थः ।] अकामानुमती कामम् इत्यमरः । इयं शतसंख्या पुनर्मा स्पृशतीत्यन्वयः ॥ १३ ॥

आवहन्तीत्यत्र कदिच्युतकदोषो नास्ति । विशेषणुलोपसृष्टत्वादित्यवधेयम् । [प्रकल्पनेषु कल्पकारिषु । का गणना तुच्छान्येतानीत्यर्थः ।]

लोपयानेनविधिः । (नामद्वयम्) । अथवा श्रीगणेशपूजापद्धतौ ॥ १ ॥  
दुर्वातनः प्रविशति ॥ श्रीगणेशाय नमः—

प्रहाणा सर्गिन् स्यत्तोऽर्निमिमाग्न्युपयानिनम् ।

पत्न्यन्ति काकतानीयं तेभ्यः प्रागाः न विभ्यन्ति ॥१४॥

तद्व्याख्यायाः श्रीगङ्गाधरगुरुभट्टाचार्यीरत्नाकराचार्यविरचिते ।

[illegible]

साधो—सहि, रोगानिदरकपत्रगह्वरे ललाजामागरोहिनिहारि  
विप्ररितोद्यानभूमिभागे दुःप्रेतानीयो भगवांसहस्ररश्मिः संवृतः । ललाज  
लोहितचक्रमकुसुमगर्भेणार्पणं पूर्ववत्पानुम् । [सहि, रोगानिदरकपत्रगह्वरे  
ललाजामागरोहिनिहारि विप्ररितोद्यानभूमिभागे दुःप्रेतानीयो  
भगवंसहस्ररश्मिः संवृतः । ता तमजो दे लोहितचक्रमकुसुमगर्भेण  
पञ्चवत्पानुम् ।]

भानुमती—हृन्ने तरलिके, उपनय मेऽर्घ्यभाजनं यावद्भूषणतः सृष्टं  
सपत्नी निर्वर्तयामि । [हृन्ने तरलिके, उपलेशि मे अर्घ्यभाजनं यावद्भूषण  
सहस्तरस्मिणी सवरिञ्च शिष्यद्वे मि ।]

चेष्टी—यद्देव्याभाषयति । (इति निष्काम्ना) । (अं देवीं आणवेदि ।)

राजाः—अथमेव साधूतरोऽवसरः श्रियासमीपपुण्यगतम् ।

( इत्युक्तमर्थं )

ग्रहाणामिति । सूर्यादिदशाः स्वप्नोद्दिष्टमकस्मादोत्पादिकमुत्पादक  
दिकमेते कायतालीयमतवितोपनत यथा स्वादेयं दत्तन्ति । अतस्तेभ्यः प्र  
पण्डिता न विच्यसि । न भयं कुर्वन्तीत्यर्थः । तेभ्य इति श्रोत्रार्थानां भयं  
॥ १४ ॥

अतीका चासी आसंका ५ छाप् । विगसितो यः सन्ध्या रागस्तेन प्रमथ

य को कल्पित करने वाले इस प्रकार के (अपमन्युन आदि) के विषय दुर्घोषन को क्या चिन्ता हो सकती है ? अङ्गिरा ने भी यही भाव छन्दोबद्ध गा है -

यहों की गति, स्वप्न, अपमन्युन और मयीती (उपमाचित) संयोग-वत्त ही होती हैं (सच्ची होती हैं) । इसलिये बुद्धिमान् लोग उनसे नहीं डरते ॥१४॥

तो अब भानुमती को श्री-स्वभाव सुलभ विष्यां आशङ्क्य को डूर करता हूँ ।

भानुमती—सच्ची सुवचना, देखो तो—भगवान् सूर्य (दिन का पति), जिस उदयपश्चात् के शिखर से छिपा हुआ उत्तम रथ बाहर निकल आया है, ग की सातिमा के नष्ट हो जाने से स्वच्छ एवं दुर्लभ्य विम्ब बाला हो है ।

सच्ची—सच्ची, तबे हुए सूर्य के पत्र सहस्र, सता-सप्तह के अन्तर्भाग में पड़े किरण-जाल से उद्यान के भूमि-भाग को धोला कर देने वाला भगवान् र (सहस्र किरणों वाला) बुराभोक हो गया है । इसलिये आपका लाल । और पुरों से मिश्रित पूजा-सागरी से पूजा करने का समय हो गया है ।

भानुमती—अरी तरलिका, पूजा-सागरी का पात्र मेरे पास ला, जिससे भगवान् सूर्य की पूजा कर सकूँ ।

देवी—जैसी बेबी आता हूँ । (बाहर जाती है) ।

राजा—त्रिपा के समीप जाने का यही अच्छा अवसर है । (यह कहकर जाता है) ।

राजोक्तं भण्डसं यस्य । ] सति रीसानितनकपत्रसहस्रेण तनायातान्तर-  
किरणनिवहेन पिञ्जरितोज्ज्वलभूमिभागः पूरितप्रतिज्ञ इव रिपुदुःश्रेणीयो  
भगवान्सहस्रकिरणः । सत्तमयस्ते कुसुमचन्दनगर्भेणार्णव पर्पुषस्यानुम् ।  
लोमानितं निर्मलीकृतम् । पिञ्जरितः कपिजीकृतः । पर्पुषस्यानुं पूजयिष्युम् ।  
तर्प्य पूजा । देवि एतदधंभाजनम् । भगवन्मन्दरसरोवरैरसहस्रत  
न्युमुलमण्डलकुङ्कुमविशेषकः सखसमुपनाङ्गनदीपक इह स्वप्नदर्शने  
प्यराहितं तद्भगवतः प्रणामेन कुशलपरिणामं मम सदावभातृत्वरार्थ-



( पत्तिपत्र )

केरी—महिनि, दशमायमात्रम् । मन्त्रिर्नर्तको भगवतः स्तुतारो  
[महिनि गुरुं अश्वभावात् । मन्त्रिर्नर्तको भगवतो । स्तुतारो

गयी—(विमोहयत्यनन्दम्) कथं महाराज आगतः । ह्यहं  
नियमयद्वाः । [कथं महाराजो आगतो । ह्यहं जातो मे नियमयद्वाः ।]

( राजा उवाच ) नृपस्य मन्त्रिणा मन्त्रिणमुपायं शतयेनान्वितं दुरीणा राज्ञि

भानुमती—(दिवकरात्रिमुच्यते मुखा) भगवन् अश्वमेधमहायज्ञस्य  
पूर्वविज्ञात्पुण्यमष्टमकुहकुचविमोहक सत्तममुच्यतेऽत्राण्डोऽत्राण्डोऽत्राण्डो  
विमोहायाहितं तज्जगत्तनः प्रभावेन सत्तममुच्यतेऽत्राण्डोऽत्राण्डोऽत्राण्डो  
(अथं दत्ता) ह्यहं तरनिके, उपमय मे कुमुधानि । अपराणामपि देवता  
निर्वर्तयामि । (हस्तो प्रसारयति) । [भगवन् अश्वमेधमहायज्ञमष्टमकुहकुचविमोहक  
सावहुमुहमष्टमकुहकुचविमोहक सत्तममुच्यतेऽत्राण्डोऽत्राण्डोऽत्राण्डो जं एव विमोह  
कि वि अयाहिर्दं तं भगवतो गलायेन ममादुमरय अत्रतारय कुमना  
होतु । ह्यहं तरनिके, उपलोहि मे कुमुदा । अपराणं वि देवता  
एवद्वे वि ।]

( राजा पुष्पाभ्युपनयति । तसंभुवदभिनीय च कुमुधानि भूमीं पानयति ।

भानुमती—(सरोजम्) अहो प्रमादः परिजनस्य । (परिवृत्तं दृष्ट्वा संभ्रमं  
कथमार्यपुत्रः । [अहो प्रमादो परिजनस्य । कथं अत्रतारो ।]

राजा—देवि, अनिपुणः परिजनोऽयमेवंविधे सेवावकाशे । तत्रमन्य  
शास्त्रे वैवी ।

भानुमती—(सखा नाटयति)

राजा—अपि मिये,

विकिर घवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः

परिजनपथवतिन्यत्र किं संभ्रमेण ।

यत्रम्य भवन्तु । अत्र सहस्रपथं नमस्तम् । विशेषकस्तितकः । अङ्गनं यत्वर  
। अत्र यत्वरविधायककुवासावाधकाधन्तत्वमेवेत्यवधेयम् । अनि

( प्रवेश करके )

चेटी—स्वामिनो, यह पूजा-पात्र रहा । अब भगवान् सूर्य की पूजा कर  
ये ।

अखी—(देखकर स्वगत) क्या महाराज आ गये ! ओहो ! (बस सब)  
: बत-भङ्ग हो ही गया ।

(पास जाकर संकेत से सेवकों को हटाकर स्वयं ही पूजा-पात्र लेकर देता है)

आनुमती—(सूर्य की ओर मुख करके) आकाश रूपी विशाल जलाशय के  
य सहस्र-दल (कमल), पूर्व दिशा रूपी ययू के मुखमण्डल से कुंकुम-  
; सम्पूर्ण जगत् के अद्वितीय मणि-शेफक, भगवान्, इस स्वप्न-दर्शन में जो  
निष्ट हो, वह भगवान् के अभिवादन से भाइयों सहित आर्यपुत्र के लिये  
ल प्राप्ता हो जाय । (आर्घ्य देकर) अरी तरतिका, मुझे पुण्य दो, (जिससे  
[सारे देवताओं की भी पूजा कर सकूँ । (दोनों हाथ फैलाती है) ।

राजा पुण्य देता है और स्पर्श-मुक्त का माट्य करके पुण्यों को वृक्षी  
पर गिरा देता है )

आनुमती—(माराज होकर) ओह ! सेवकों का कौत्सा प्रभाव है ? (धूमकर  
नगर पञ्चराहट के साथ) क्या ? आर्यपुत्र ।

जा—देवी, यह सेवक इस प्रकार की सेवा के अवसर के लिये (बहुत)  
ही है । इसलिये देवी इसके लिये रण्ड देने में समर्थ हैं ।

आनुमती—(लज्जा का माट्य करती है) ।

जा—प्यारी, पञ्चराहट की क्या आवश्यकता है ? यवत और विराम  
न की ओर चलने वाली अपनी दृष्टि सेवक ■ आर्घ्य पर चलने

किरेति । [ हे देवि सन्नमेण वसम् । परिजनस्य पन्थाः परिजनपथः ।

उन्नी दीप्तमस्य तस्मिन्परिजनपथवर्तिनि अथ मयि । धनसम्पत्तौ दीप्यन्ते

पञ्चराहतेन सन्नपन्तीति सन्दीप्त चयुः ] विकिर विलिप्त । अपाङ्ग नेत्राणाः

संक्षिप्त गमनशीलम् । परिजनपथवर्तिनि सेवकमार्गस्थिते मयि । नि

स्मितमधुरमुदारं देवि मामात्मपोषः

प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ॥१५॥

भानुमती—आर्यपुत्र, अथनुज्ञातायास्त्वयाऽस्ति मे कस्मिंश्चिन्मितायः । [अञ्जउत्त, अञ्जगुण्यादाए तुए अस्ति मे कस्ति विहित्तसो ।]

राजा—भूतविरत्तार एवास्मि भवत्याः स्वप्रवृत्तान्तं प्रति । न कृतिसुकुमारमात्मानं सेवयितुम् ।

भानुमती—आर्यपुत्र, अतिमात्रं मां शङ्का वापते । तदनुमन्थनीं पुत्रः । [अञ्जउत्त, अविमेतं मे शङ्का वाहेदि । ता अणुमण्ण दु मं दगरा

राजा—(सगर्वम्) देवि, अलमनया शङ्कया । परम—

किं नो व्यासदिशां प्रकम्पितभुवामक्षोहिणीनां कलं  
किं द्रोणेन किमङ्गराजविशिखैरेवं यदि क्राम्यसि  
भीरु भ्रातृशतस्य मे भुजवनच्छायां सुखोपस्थिता  
त्वं दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी शङ्करूपदं किं तव ॥

भानुमती—आर्यपुत्र, न कसु किमपि मे शङ्काकारणं युष्मासु स्मिन् किं त्वार्यपुत्रस्यैव मनोरमसंपत्तिमभिनन्दामि । [अञ्जउत्त, एह किं

संभवेतोऽङ्गेन । स्मितमधुरमुदारं मनोहरं च यथा स्यादेवं हे देवि न हूहि । मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं [त्वां] प्रभवति ।] पाण्योरञ्जलिरित्यत्र कस्य न देशम् । उत्तयोपापकारेण तदुद्यारात् ॥१५॥

किं नो व्याप्तेति । [यदि त्वमेव क्राम्यसि भवति तर्हि नः अस्मात्प्रतिभिरागां, प्रकम्पिता भूर्प्राविताताम्, अक्षोहिणीनां किं कस्य ।] द्रोणेन । अङ्गराजमेतुत्यर्थः । किं कस्य । अङ्गानां राजा अङ्गराजः कस्य । कस्मिन्चित् काले किं कस्य ।] अक्षोहिणी गङ्गाभेदः । [अक्षोहिण्याः प्रसङ्गः

। द्विउत्तमयाः । कस्या नमिननपर्वतः । मत्स्याभेदः । कस्तिः ॥ तदनुमन्थनी

६. तदा भूरभ्र सन्ति (२१८००) । यस्यानां च पर्याः एतेतदेव विनिश्चितं

। इस (मुक्त दुर्घोषन) पर शक्तो । देखो, मुझ से मन्द हास से मधुर और रस्तापूर्ण वचन जोर से कहो । मेरे हाथों की अञ्जलि आपकी सेवा कर तो है ॥१५॥

भानुमती—आर्यपुत्र, आपकी अनुमति पाकर मुझे कोई वस्तु लेने की रक्षा है ।

राजा—आपके स्वप्न की घटना के विषय में मैंने विस्तार से सुन लिया । इसलिये स्वभाव से कोमल अपने (शरीर) को इस प्रकार बह दिये से करो ।

भानुमती—आर्यपुत्र, मुझे बहुत अधिक भय सता रहा है । इसलिये आर्य-मुझे अनुमति प्रदान करें ।

राजा—(गर्व से) देखो, इस आशङ्का से बस करो । देखो, यदि तुम इस पर दुःखी होगी तो—

विद्याओं की छां देने वाली और पृथ्वी को कम्पित कर देने वाली हमारी गृहिणी सेनाओं का क्या फल हुआ ? (आचार्य) द्रोण से क्या लाभ हुआ ? देश के राजा (कर्ण) के भाणों का क्या लाभ हुआ ? हे भयभीत, तुम मेरे पादों की भुजा कपी कुशों की छाया में सुखपूर्वक बंठी हुई, दुर्घोषन क्यों राज की परती हो; तुम्हें भय का कारण क्या हो सकता है ॥१६॥

भानुमती—आर्यपुत्र, तुम लोगों के रहते मेरे लिये कोई भी भय का कारण है । किन्तु मैं आर्यपुत्र की ही मनोरथ-सिद्धि की कामना कर रही ॥ ।

‘सतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु । नराणामपि पञ्चासच्छतानि त्रीणि चानयाः ॥ पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वाणा दत्तानि च । दधोतराणि षट् प्रादुर्वे-  
पावदिह संदध्या ॥ इति महाभारते आदिपर्वणि अ० २ श्लो० २३, २६]’  
‘किं द्रोणेनेत्यादौ फलमित्यनुषज्यते । अङ्गराजः कर्णः । कृष्णमिति परिश्राम्यति ।  
हे भीष्म । [मि आदृशकस्य भुजा एव वनं तस्य छायां मुनेनोपस्थिता । किं च  
दुर्घोषनः केसरीन्द्रः तस्य गृहिणी एव] ॥१६॥

५ चतु शब्दो निषेधे । वयिता कान्ता ।

सङ्काशान् नुहन्तु मन्त्रिणश्चैव । किं नु जगत्तमस एव मनो  
महिमादावि ।]

राजा—अवि नुहन्ति, एतावन् एव मनोमहा मरुर् इतिग  
वहेताया विह्वलाधोनि । परप—

प्रेमावद्व्यभिचिन्तनयनापीयमानाञ्जनीभं

नञ्जायोगादविनदत्तं मन्दमन्दस्मिन् वा ।

वाग्नेभ्युं ते नियममुपिनालताप्राथरं वा

पातु वाञ्छा परमगुणम किं नु दुर्योधनस्य ॥१॥

( नेरभ्ये महाभरतः । गर्भे भाग्यंयन्ति )

भानुमती—(गमय राजान् परित्यज्य) परित्यापनां परित्यापनामर्गु  
[परित्याग्य परित्याग्य मरुत्

राजा—(गमन्ताश्चमोक्ष) क्रिये, अर्त्तं संश्रयेत् । परप—

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गरनृणजटिलचसत्पांशुदण्डोऽन्तरिक्षे

भाङ्कारी जर्करालः पयिषु विटपिनां स्कन्धकापः सध्वन

प्रासादानां निकुञ्जेष्वभिनवजलदोद्धारगम्भीरधीर-

अण्डारम्भः समीरो वहति परिदिशं भीरु किं संभ्रमेण ॥१॥

सखी—महाराजः प्रविकृतिभं वाद्यवर्तमासारम् । उद्गकारी वाद्ययन्त्रे  
तपस्परमः कलुषीकृतनयनं जम्बुसिततद्वरसम्प्रविशस्तमभुरापतिभ्रमभ्रमभ्रम  
मपयिकुलीकृतजम्बुतिभीषणः समीरणासारः । [महाराजो पयिषु ।

प्रेमेति । एतादृशं वा तव वक्त्रेभ्युं पातुं दुर्योधनस्य किं वाञ्छा न । की  
नु वाञ्छैव । वीहयम् । प्रेम्णावर्द्धं संवदमत् एव स्तिनितं निरवत्तं ममत्तं  
तेनपीयमानं यदञ्जं तदच्छोना यस्य तम् । लज्जासंख्यादस्वच्छतममत्तनाह  
य । नियमानुयितः परमासीधुयः अस्तत्तथो यत् । तादृशोऽप्राप्यतो यत् ।  
परमतिशयेनामुलर्भं दुर्लभम् । अन्यतद्विज्ञानाविति । लेपः ॥१॥

हे भीरु किं संभ्रमेणं मयेन । एतादृशः समीरो वायुः परितितं

राजा - अथि कुम्हारों, मेरे तो केवल यही मनोरथ है कि मैं प्रिया के साथ  
सहर लपेटा बिहार करूं : देखो—

(मुझे) कुम्हारे बगल सहज मुठ के, जो अपने प्रेम-पुष्प और निराला नेत्रों  
कमलों की शोभा को खी रहा है, राजा के कारण, जिससे अस्पष्ट वचन  
हल रहे हैं तथा जिस पर अन्ध भ्रमदान है और जिसमें अन्ध के अग्रभाग से  
के कारण पावक बहिन हो गया है, वान करने की इच्छा है। कुम्हारों के  
वे अन्ध कीन (वातु) कुम्हारे हैं ॥१७॥

(नेत्रिय में तीव्र बलवत्त इकनि होती है। सब मुनने हैं)

मानुषी—(अपने से राजा का आभिज्ञान करके) आर्यपुत्र, बचाइये,  
इसे।

राजा—(चारों ओर देखकर) प्यारी, चकराओ नहीं। देखो—

(यह) चारों ओर तीव्र वेग वाला वायु बह रहा है, जिसने विभिन्न  
प्रायों में वृक्षों के अङ्गों को बखेर दिया है; आकाश में जिससे तिनकों में  
मूलि-स्तम्भ उठ रहा है, जो मार्गों में शयि-शयि करने वाला तथा  
रिक्तों (छत्तों) से भरा है; जो वृक्षों की छायाओं की (परस्पर) रगड़ से  
से पुच्छ है और मनुष्यों के वृक्षों में वृत्त अन्ध के गर्जन से समान  
और और और (इकनि वाला) है। (इसलिये) हे भोर, करने की क्या  
है ॥१८॥

सखी—महाराज, इस दासपर्वत के प्रासाद के अन्ध बलिये। यह वायु  
दुःखान बड़ा ही भीषण और उद्वेगजनक है, जिसने उठी हुई कंकरा धूलि से

दिरा बहुति यतः। कीटयः। विषु स्युर्द संवदमद्भिपत्य पादपस्याङ्ग  
[आदि] येन स तथा। अन्तरिक्षे व्योम्नि सूचने अटिसो व्यासअनन्त्यानुदण्डो  
आकारधूलिर्यत्मास तथा। साङ्कारः अथ्यस्यस्यस्तयुतः। पचियु शर्करालः  
रायुतः। विष्मादित्वात् मत्त्वर्षीयो लघूपत्ययः। विटपिनी वृक्षाणां स्कन्ध-  
वर्षर्षुमसहितः। प्रासादानां घवनगृहाणां मध्येषु नवअलधरोदुपमगम्भीररवः  
प्रवणोपत्रमः। अह्मिश्चरनस्तेन पिबति जलादिकमित्यद्भिपः। पदद्भिश्च-  
लोमित्रयाम् दायमरः। कपसुं कायः। भावे मधु ॥१९॥

दायक्यप्रत्यासादम् । उन्वेअकारी वपु अत्र उस्विउपदमरअन्वुपीरि  
उन्मूलिअलस्वरसहवित्तत्थमन्दुरापरिअमद्ववह्वहुलङ्गमपञ्चाउनीविदमर  
भीसणो समोरणासारो ।]

राजा—(सहपंम्) उपकारि छत्थिअं वात्थाचक्रं सुबोधनस्य । अः  
बपत्नपरित्यक्तनियमया देव्या संपादितोऽस्मन्जनोरथः । कथमिति—

न्यस्ता न भ्रुकुटिर्न वाप्पसलिलं राच्छादिते लोचने  
नीतं नाननमन्यतः सशपथं नाहं सृशन्वारितः ।  
तन्व्या भग्नपयोधरं भयवशादाबद्धमालिङ्गितं

भङ्क्ताऽस्या नियमस्य भीषणमरुन्नायं वयस्यो मम ॥१॥

तत्संपूर्णजनोरथस्य मे कामचारः संप्रति बिहारेषु । तद्वित्तो दास्यते प्राप्ताते  
गच्छामः ।

( नवं वासवावाघां हास्यन्तो यत्नतः परिरक्ष्यमन्ति )

राजा—

कुरु घनोरु पदानि शनैः शनरयि विमुञ्च गतिं परिवेपिनीम् ।  
सुतं नु बाहुलतोपरिवन्धनं मम निषोडय गाडमुरःस्थलम् ॥२॥  
( प्रवेष्टं अर्पयित्वा ) प्रिये, अलक्ष्यावकाशः समोरचः संवृत्तधात्रभंगुहस्य । विगत  
पुण्योत्तम वधुसम्पूहरेणुनिकरम् ।

अत्र दास्यते नः बाहुरचनाभेदः पर्वताकारः । 'यथा दास्यते इति श्रुति  
पर्वतनाम । रत्नविन इतरतनो भवः । वाग्विशाला तु मादुरा इत्यमरः । वदति  
वैरम् । अहं गमूहः ।

अतएति । अयं भीषणमरुन्नायं वयस्यो निर्व न । अति तु निर्वने । यतो  
इया निर्वनाय अहता अहताः । नियममज्ञानेबाहु—भ्रुकुटिर्न न्यस्ता न इति  
न वा नेत्रयनेन नेत्रं छत्रम् । अन्यत्र मुखं न इत्यम् । सृशन्ग्रहं न सशप  
वारितः । यदि वा सृष्टिर्न नैव ते वारय इति न कृतमित्यर्थः । तन्वो  
ः नीचते । अन्वपयोधरं नष्टरत्नं यथा रफादेन भयवशादातिङ्गितम्

तो व्याकुल कर दिया है और जिसने उखड़े हुये बड़े बड़े वृक्षों के शब्द से  
'अथशाला' से छुटे हुए उत्तम धोड़ों से मनुष्यों के यातायात को अस्त-  
कर दिया है ।

जवा—(हर्ष के साथ) यह बाहु का तूफान सुयोधन के लिये हितकर हो  
सकी कृपा से बिना प्रयत्न ही घट छोड़ देने वाली देवी ने हमारी इच्छा  
रही है । क्योंकि—

।त इशाङ्गो मे न भ्रुकुटि देहो की, न आँसुओं से दोनों नेत्र धुंके, न मुख  
झोर दिया, न स्पर्श करते हुए मुझे शयनपूर्वक रोका, (बहिक) भय के  
(मेरा देखे) आतिङ्गन किया कि (इसके) स्तन दूध (रख) गये । इसके  
। भङ्ग कर देने वाला यह भीषण वायु नहीं है, प्रत्युत मेरा सखा है ॥१६॥

। तलिये पूर्ण मनोरथ वाला मैं अब इच्छानुसार बिहार कर सकता हूँ ।

यहाँ से दाक्षवर्त के आसार में ही चलें ।

( सब आँधी के कष्ट का नाट्य करते हुए कठिनता से चलते हैं )

जवा—

हे निरिद जङ्घाओं वाली, धीरे-धीरे बढ़ रखो, सङ्कष्टकारी गति को  
को । सुन्वरी, धुजा रपी सता से ऊपर (कण्ठ में) बन्धन डाल कर मेरे  
प्रस्थल को जोर से दबाओ ॥२०॥

। येन करके) प्रिय, इस गर्म-गृह के बन्द होने के कारण (यहाँ) आँधी की स्थान  
ही निता है । (इसलिये) धूलि-समूह पोंछी गई आँखें निडर होकर खोलो ।

। नृपभाष्यं हृतम् । एतानि भयात्तया कृतानीति मरुत उपकारकतेति भाष ।  
। अथ भीषणमक्ष । किं तु मम वयस्य इति योजना । मैत्रं च  
। त्रिभुवाभिदमेयम् ॥ १६ ॥

कामचारः स्वेच्छाचरणम् ॥

। बुद्धिः । हे धनोद निविडोऽप्रदेये । परिवेषिनीं कम्पवतीम् । हे सुन्वरी  
। ममोदस्थल गाढं दृढं निपीडय । बाहुलस्योपरिवन्धनं यथा  
। मदेयम् ॥ २० ॥

[संनृपभाष्यप्रस्ताव] । गर्मगृहं गर्महर इति प्रसिद्धम् । विमर्शं नृप-



भारुणी—(१७१५) विष्णवेऽपि सावदुत्पातमास्तो न यायते ।

[विष्णवेऽपि सावदुत्पातमास्तो न यायते ।]

मयी—अतएव, आलोचयन्ममार्थं नृं विनमयन्तु इत्युक्तम् ।

विश्वी—महात्म्यं आत्मनोऽपि न युज्यते । [महात्म्यं, आलोचयन्  
विष्णवेऽपि सावदुत्पातम् । तां श्रीमद्भगवद्गीतां आलोचयन्ती नृं

राजा—(देशीयकण्ठेन) अर्चयन्, अतएवैवात्मानं वदामि अनेन ।

रेणुर्व्याधौ विगतोऽपि तनुर्गति मर्त्यां नेत्रयोरायनत्वा-

दुरात्मोऽप्योऽपि गीनस्तनभरितमुग्धः शिप्रहारं दुर्गे

ऊर्वोर्मन्देऽपि याते मृगजगन्मगद्वेगगुर्गर्भतेऽप्य

यास्या शेदं मृगाध्याः गुचिरमयपर्यदं साहस्ता करोति

( सर्वे आश्चर्यम् )

राजा—तत्किमिदमस्तीति वदन्ति तितलननवप्याते देशी ।

लोलांगुलस्य पयनाकुलितांगुलान्तं

त्यद्वद्विहारि मम लोचनबान्धवस्य ।

अध्यासितुं तव चिरं जघनस्यस्तस्य

पर्याप्तमेव करभोरु ममोरुमुग्धम् ॥२२॥

( प्रविश्य पटाक्षेपेण संभ्राम्यः )

विश्वासमिति क्रियाविशेषणम् । [ उन्मृष्टः अपसारितः रेणुनिरुद्धः  
सञ्चयः । ] दिष्ट्वेह सावदुत्पातमास्तो न यायते । तत्किमिदमिति...न नृ  
[आलोचनस्य संभ्रमेण स्वरया निःसाहसममर्शम् ।]

रेणुरिति । नेत्रयोरायनत्वाद्दृष्ट्यास्तनुरप्यल्पोऽपि रेणुर्व्याधौ वीजं वि  
अत्योऽप्येव कम्पः । [ अस्तो हारो यस्यात्तद् । जरो वक्षःस्थलं दुर्योति पो  
भरितमिति तारकादित्वादित्य इति साधनीयम् । अन्यथा मृतमिति स्प  
वधेयम् । ऊर्वोराधारभूतयोर्वेषधुः कम्पः मन्देऽप्यल्पोऽपि याते गमने सति  
इत्यन्वयः । अतो हेतोर्वायुः मृगाध्याः शेदं करोति । कीदृशः । अवयवः सती

भानुमती—(हर्ष के साथ) सौभाग्य ॥ यहाँ उत्पात-वायु नहीं सता रही है ।

सखी—महाराज, प्रियवशी की दोनों जङ्घाएं (अपर) चढ़ने की शोभना  
रण अशक्त हो गई हैं । तो अब महाराज आसन-वेदिका (चबूतरे) को  
नहीं अलङ्कृत करते ?

राजा—(देवी को देखकर) भद्रे, जाँधी ने तो बड़ा ही अपकार किया है ।  
क—

अस्य भी धूलि नेत्रों के विशाल होने से अधिक पीड़ा दे रही है; पीड़ा-मा  
ज्जन स्तूल स्तनों के भार वाले तथा हार पड़े हुए वसःस्थल की पीडित  
रहा है; धीरे-धीरे चलने पर भी स्तूल अघन (कटि) के भार के कारण  
। जङ्घाओं में कम्पन बढ़ रहा है । (इस प्रकार) अयमशो का अवतम्बन  
हुई बावसा मृग-नयनी को बहुत बेर तक कह दे रही है ॥२१॥

( सब बैठते हैं )

राजा—परानु महाराणी नंगे ही कठोर शिलातल पर क्यों बैठ रही हैं ?

करम (हथेली का कलाई और छोटी अंगुली ॥ बीच का भाग) के समान  
ओं वाली, वायु से चञ्चल पट के छोर वाला और गुम्हारी दृष्टि को हरने  
मेरा यह उर-पुगल चञ्चल वस्त्र वाले और मेरे नेत्रों की प्रिय गुम्हारे  
। स्थल के चिरकाल तक आश्रय लेने के लिये पर्याप्त है ॥२२॥

( पराई हटाकर प्रवेश करके बबराया हुआ )

नात्रिभिर्वैतहस्तः कृत्वाहित्य इत्यर्थः । उभाभ्यामेव पीडा देव्या इति  
शब्दः ॥ २१ ॥

अनास्तीर्ण वस्त्रादिना अनाच्छादितम् ।

सोनेति । हे करभोर तव अघनस्थलस्याध्यासितुं अघनस्थलस्याधपराय  
नयोरपुण्यं पर्याप्तमेव घटमेव । कीदृश्यः । [सोतांशुस्य] अपसवराज्यः ।  
[नम सोचनवाग्धवस्य] मदीयनेत्रमित्रस्य । कीदृश्यम् । बाठातुनिर्वांशुबान्तम् ।  
परीपट्टिहृत्पुण्ड्रं ॥ अघनस्थलस्येत्यत्र येने वशी इति शूनेण पट्टी । इत्यत्र  
शब्दो बहिः । इत्यमरः ॥२२॥

॥ सोनेत्यादिमानमित्रनेत्रेण चरमन्धिरः । इत्यर्थदुक्तं यदात्रं मादोऽयं-



कञ्चुकी—महाराज, तोड़ दिया, तोड़ दिया ।

( सब भय से देखते हैं )

राजा—क्या हुआ ?

कञ्चुकी—भीम ने तोड़ दिया ।

राजा—अरे ! क्या बक रहा है ?

कञ्चुकी—(भयपूर्वक) निश्चित ही भीम ने आपका तोड़ दिया ।

राजा—पिट्टार ! बकचारी, भयम वृद्ध, आज मुझे यह क्या बुद्धि-विभ्रम हो गया है ?

कञ्चुकी—महाराज, (मुझे) बौद्ध बुद्धि-विभ्रम नहीं हुआ है । किन्तु तब कह रहा हूँ—

मन्दूर वायु से तोड़ दी गई आपके रथ की ध्वजा, पुंजुरियों के शय से शीतल करती हुई, मानो, दृष्टी पर गिर पड़ी है ॥२३॥

राजा—तीव्र वायु के वेग से जगत् के कंठ जाने पर रथ की ध्वजा टूट गई ही क्या कारण है कि इस तरह जोर जोर से बक रहे हो—‘तोड़ दिया, तोड़ दिया ।’

कञ्चुकी—महाराज, कुछ भी नहीं । किन्तु इस अनिष्ट के क्षमन के लिये महाराज को मुचिन्तन कर देना चाहिये, यह श्लाघि-भक्ति ही मुझे कहने के लिये बोल कर रही है ।

बाणभती—आर्यपुत्र, प्रत्यक्ष हुए ब्राह्मण के वेद-वाङ्मय और मन से इस अपराध का विचारण करा दीजिये ।

राजा—(तिरस्कारपूर्वक) अपना कामो । पुरोहित मुचिन्तन से कह दो ।

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा । (दाहर बना जाता है) ।

( श्रवण करते )

अनीहारी—(दरवाज़े हुई मधोम जाकर) अब हो, महाराज की अब हो ।

वपेन्म । वेननं विह्वम् । निहिन्विषाणः सुदधन्विषाणः [तेन वाङ्मयं कञ्चुकी देव] ॥२३॥

वपेन्मो वपेन्म केतुः विह्वम् । [अनिहितमन्दूरकः] । आर्यपुत्र आनीहारी-  
नो-वपेन्म वपेन्म केतुः विह्वम् । [पुरोहितेति] । अथ वाङ्मय-वेदोक्तमप्यनी-

जामातुः सिन्धुराजस्य माता दुःशला च प्रतीहारभूमौ तिष्ठति । [अयं महाराजो । महाराज, एषा कस्य जामातुणो सिन्धुराजस्य माता पुनः पट्टिहारभूमौ एषि तिष्ठति ।]

राजा—(किञ्चिद्विचिन्त्यात्मगतम्) किं जयद्रथमाता दुःशला चेति । भिमशुक्रपामर्षितैः पाण्डुपुत्रेण किञ्चिदत्माहितमावेष्टितं मये । [अ गच्छ । प्रवेशाय शीघ्रम् ।]

प्रतीहारी—यन्महाराज, आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्ता) । [अंश आणवेदि ।]

( ततः प्रविशति संप्रान्ता जयद्रथमाता दुःशला च )

( उभे सासं दुर्योधनस्य पादयोः पततः )

माता—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः । [परितामदु परितामदु कुं ( दुःशला रोदिति )]

राजा—(ससंभ्रममुत्थाप्य) अम्ह, समान्धसिहि समान्धसिहि । निरपहितम् । अवि कुशलं समराङ्गणेव्यप्रतिरक्षस्य जयद्रथस्य ।

माता—आत, कुतः कुशलम् । [आत कुदो कुशलम् ।]

राजा—कथमिदम् ।

माता—(सासं कुं) अयं खलु पुत्रवधामर्षोद्दीपितेन गान्धीविना अनपेक्षितविषमभावे तस्मै वधः प्रतिज्ञातः । [अयं कस्य पुत्रवधामर्षिमुद्दीपितेन गान्धीविना अनपेक्षितविषमभावे दिवहृणाहे तस्मै वधो पट्टिणादो ।]

राजा—(सस्मितम्) इदं तदधुकारणमन्त्राया दुःशलायाश्च । पुत्रवधो गुप्ततस्तस्य किरीटिनः प्रलापैरेवमवस्था । अहो पुत्रवधमवलम्बाम् । अम्ह, विषादेन । वशी दुःशले असमभुपातेन । कुतरवार्धं तस्य धनजयस्य प्रयुक्तो धनबाहुपरिपरितस्तस्य महारथजयद्रथस्य विपत्तिमुत्पादयितुम् ।

माता—आत, ते हि पुत्रवधपामर्षोद्दीपितकोपानता अनपेक्षितवीराः परिक्रामन्ति । [आत वे हि पुत्रवधपामर्षिमुद्दीपितकोपानता वेविजदगरीरा वीरा पट्टिमन्ति ।]

... । आसीर्वाधचोयुक्त एव रात्रिरोदितः ॥ इति । अयं

हाराज, आमाता सिन्धुराज की माता और दुःशला द्वार-भूमि पर उपस्थित हैं।

राजा—(बुद्ध सोचकर, स्वगत) क्या ? जयद्रथ की माता और दुःशला ?  
हो अमिमन्धु के दण्ड से कुछ पाण्डु-पुत्रों ने कुछ अनर्थ तो नहीं कर दिया ?  
(फट में) जाओ, शीघ्र अन्दर से आओ ।

प्रतीहारो—जैसी महाराज आज्ञा रहे । (यह कहकर बाहर जाती है) ।  
(तत्पश्चात् पक्कई हुई जयद्रथ की माता और दुःशला प्रवेश करती हैं )  
( दोनों आँसू भरकर दुर्योधन के पैरों में पड़ती हैं )

माता—बचाइये, कुमार बचाइये ।

( दुःशला रोती है )

राजा—(जल्दी से उठकर) माता जी, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये । क्या  
नर्थ हुआ ? अप्रतिम वीर जयद्रथ का युद्ध-भूमि में कुशल तो है ?

माता—पुत्र, कुशल कहाँ से ?

राजा—बघों, क्या हुआ ?

माता—(आश्चर्यपूर्वक) आज पुत्र के दण्ड से उत्पन्न क्रोध से भड़के हुए  
श्रीवधारी (अर्जुन) ने सूर्य के छिपने से पहले ही उसके दण्ड की प्रतिज्ञा  
की है ।

राजा—(मुस्करा कर) तो माता जी और दुःशला के आँसुओं का कारण  
ही है । पुत्र के शोक से पागल हुए अर्जुन के प्रताप हैं यह अवस्था है । ओह !  
यों में कितना भोलापन होता है ! माता जी, दुःख न कीजिये । प्रिय  
शला, आँसू न गिराओ । दुर्योधन की भुजा कभी परिणत से रक्षा किये गये  
गएँ जयद्रथ के लिये विपत्ति पैदा करने का सामर्थ्य अर्जुन में कहाँ है ?

माता—पुत्र, पुत्र और कन्युओं के दण्ड को न सहने हैं प्रज्वलित क्रोधान्ति  
ले वह (पाण्डव) वीर अपने शरीर की चिन्ता न करके घूम रहे हैं ।

विहितं क्षुप्यन्निहान्तिवशीष्टिकम् । इत्यग्निपुराणम् । सिन्धुराजमाता । अत्र  
पुत्राश्च जयद्रथः । [प्रतीहारमुनिर्द्वारम्] । [अमर्ष एषां संज्ञातः इति  
विज्ञातः तैः ।] अस्माद्विहितमनसः । अप्रतिरथस्य अविद्यमानः प्रतिरथः यस्य ।  
पत्तस्य जातचित्तविभ्रमस्य । मुख्यत्वं विचारवैकल्यम् । दुर्योधनस्य बाहू  
[यो अर्धे इव ताम्बा रक्षितस्य] ।

राजा—[गोपकपत्रं हस्तेन] सर्ववस्तुनिर्वाहकम् ।

पश्य—

हस्ताकृष्टनिर्वाहकमना बुद्ध्याग्नेनाजना  
पाञ्चाली मम राजनत्पुत्रो गौर्गोर्गतिं ददातु ।  
तस्मिन्नेव म किं नु गाण्डिवमगो नामीन्पुमानन्दो  
यूनः क्षत्रियवंशजस्य शूचिनि क्रोधाभ्यर्त्तं किं न त्व ॥२॥

धर्मा—अन्यथाप्रतिष्ठापयित्वा यथावच्छेदयेत् प्रणितातः । [अन्यथाप्रतिष्ठापयित्वा]

भरतः प्राप्तवदो मे पश्चिमाधो ।]

राजा—यद्येवमगमानन्दस्यानेन ते विनाशेन । ननु बलवन्पुत्रः कुरु  
युधिष्ठिर इति । अथवा यानः, का शक्तिरिति धनप्रदायादयम् वा बुद्ध्याग्नेना  
वार्षादिमहिम्नः इत्युक्तं गोपकपत्रादिवहस्तस्य शूचीपुत्रो निर्वाहकमिति  
मामापि प्रहीतुं ते तत्राय । अपि पुनराकमानभिर्त्तं,

धर्मात्मजं प्रति यमो च कथं न नास्ति ।

मध्ये शूकोदरकिरीटभृतोर्वसेन ।

एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं

कः सिन्धुराजमभिप्रेषयितुं समर्थः ॥२५॥

अमपिता क्रोधाश्लिता ।

हस्ताकृष्टेति । [मम आत्मया बुद्ध्याग्नेना हस्तेन आकृष्टवत् एव विन्दे  
केशाश्च वसनं च केशवसनं यस्याः सा हस्ताकृष्टवित्तोक्तकेशवसना पाञ्चाली  
राजवत्पुत्रः गौः गौः इति व्याहृताः ।] व्याहृतेति शिष्टवर्गम् । तेन व्याहृतं  
तेत्यर्थः । राजवधूनां गौर्गोर्गतिविधानमतिहानिकरमिति समाचारः । तस्मिन्  
तता विस्तृता ज्या पतञ्जिका यत्र तादृशं पण्डितं धनुर्वेद्यस्य सः । पाञ्चाली  
गण्डिवम् इति शब्दभेदः । पृथानन्दोऽर्जुनः । [ नासीत्किन्तु । अपि त्वसीदेव  
न । तत्रापि युनो योवनशास्त्रिनः । न तु वार्षाद्याद् यत्नितोत्साहः  
कृतिनः कृतहस्तस्य युद्धकलाप्रवीणस्येत्यर्थः ।] आस





भानुमती—आर्यपुत्र, रक्षयेवं तथापि गुरुकृतप्रतिज्ञामरौ  
 धनु शङ्कायाः । [अजउत्त जइवि एव्वं तइवि गुरुकिदपटिण्णामरौ वर  
 द्वाण वधु संकाए ।]

माता—आते, साधु कालोचितं त्वया कथितम् । [जादे हाट्ट बानो.  
 मन्तिदं ।]

राजा—आः, ममापि नाम दुर्योधनस्य शङ्कास्थानं पाण्डवाः ।

कीदृग्दृज्याकिणश्च रणितरिपुभिः कङ्कटोन्मुक्तदैः  
 श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिमुत्पादयद्भिः ।  
 रेणुप्रस्तार्कभासां प्रचलदसिलतादन्तुराणां बलाना-  
 माक्रान्ता भ्रातृभिर्मै दिशि दिशि समरे कोटयः संपतन्ति ॥

अपि च भानुमति विज्ञातपाण्डवप्रभावे, किं त्वमप्येवमाशङ्कते । पाण्ड-

दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने

दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे ।

तेजस्विनां समरसूर्धनि पाण्डवानां

जेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ॥२७॥

नः कोऽत्र भोः । अत्र मे रथमुपकल्पय तावत् । यावदहमपि तस्य प्रयत्नमात्रेण  
 जयद्रथवधोत्पन्नमेव मिथ्याप्रतिज्ञार्थं त्वयः संपादितमशङ्कपूर्तं मरणमुपदिशति

कीदृग्दृजेति । कीदृग्दृजे धनुः । [तस्य कयायाः किञ्चो मयेत्युक्तं विह्व-  
 लो देवा तैः । अगणितं ध्वनिगिता रिपवः यैः । कङ्कटेन संवाहेन ज-  
 ञ्जाघ्नितो दैहो देवा तैः ।] तथा पातमयोरवारणनाहमनुवर्तीति  
 [कङ्कटामुगदैरिति पाठे कङ्कटा आमुत्ताः पिनदाः देवु तथा देहा देव-  
 श्लिष्टमग्न्योऽग्नयः] आनयन् दध । तैः करणभूतैः अतकममयनभ्रमं कुर्व-  
 [ये भ्रातृभिः आकाशताः । रेणुना वरताः कंस्य भा यैः तेषाम् । प्रचल-  
 आनमनाः अग्नयः] दम्बुराणां निम्नोऽग्रानां बलानां कोटयः संपदाभेदाः  
 । संपतन्ति दम्बुराणि । कोटिरथे अत्र ये च संख्यातारवंप्रदेशयोः इति वि-

भातुमती—आर्यपुत्र, यद्यपि यह ठीक है। फिर भी की गई प्रतिज्ञा की भार वाला अर्जुन सञ्जू का कारण हो सकता है।

माता—पुत्री, तूने ठीक समयोचित बात कही है।

राजा—ओह ! क्या मुझे दुर्योधन के लिये भी पाण्डव मय का कारण होना है ? देखो—

धनुष की डोरी के घाव के विह्वल बाले, शत्रुओं की विन्ता न करने वाले (सलिये) शरीर पर ॥ कवच खोल देने वाले और परस्पर लड़े हुए छत्रों से त कम्पनों के वन की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले मेरे भाइयों से अर्पित शत्रुओं की कोटि-कोटि संख्याएँ, जिन्होंने धूलि से सूर्य की कान्ति प्राप्त की हैं और धुमाई गई तलवार कभी सत्ताओं से बिकराल हैं, विशा विशा मे पुष्ट-मैं में मिसकर जा रही हैं ॥२६॥

और, पाण्डवों के प्रभाव को जानने वाली भातुमती, तू भी ऐसी भावपूर्ण कर रही है ? देख—

दुःशासन के हृदय से बधिर कभी जल के बीने और गदा से दुर्योधन की दा को लोड़ डालने के विषय में तेजस्वी पाण्डवों की खंसी प्रतिज्ञा थी, वेसी पुष्ट-भूमि में जयद्रथ के वध के विषय में भी समयानी चाहिये ॥२७॥

भरे, यहाँ कोई है ? मेरे जय-शील रथ को तैयार करो। तो अब मैं भी जयद्रथ की रक्षामात्र से उस चट्ट पाण्डव को भूँडी प्रतिज्ञा ॥ उत्पन्न से किये गये और शत्रु से परित्र न किये गए मरण का उपदेश देता हूँ।

रथः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रियाम् । इत्यमरः ॥ २६ ॥

दुःशासनैति । यथा दुःशासनस्य हृदयरक्तमेवायम् अस्ति तस्य पाने । दद्यात् कथितस्य ऊवभङ्गे ऊर्गोः भङ्गविषये । तथा समरपूर्वनि रणशिरसि जयद्रथ-प्रति तेजस्विना पराक्रमिणा पाण्डवानां प्रतिज्ञा ज्ञेया । रक्तशतजलोहितम् अमरः ॥ २७ ॥

[अत्रमिति जेतृगन्दात् प्रज्ञादित्वाद्यम् । उरकल्पय मज्ज कृत्वा त्व । प्रगतमरस्य धृष्टस्य पाण्डवस्यार्जुनस्य । मिथ्याप्रतिज्ञा तथा यद् धैर्यं ॥ तेन संशयितं विहितम् । अस्त्रेण अस्त्रध्यापारेण युतं अस्त्रयूतम् । युद्धे

( पृ. १३३ )

रङ्गपुत्री—देव,

उद्घातकगितगिभोतहमघष्ट.

प्राप्तम्बद्विगुणितनामरप्रहामः ।

मञ्जोऽयं नियमितवस्तिताकुलायः

तन्मूला क्षपिणमनोरथो रथस्ते ॥२८॥

राजा—देवि, प्रविश स्वाम्यन्तरमेव । (वाचस्पत्येति तस्य प्राप्ताया  
इत्यादि पठन् परिक्रामन्) ।

( इति निष्क्राम्या मर्त्ये )

\* इति द्वितीयोऽङ्कः \*

वास्तवप्रकारेण भूतस्य वीरस्य स्वर्गप्राप्तिहेतुस्वात्ममरणस्य भूतत्वम् । अ  
भवतीति अशस्त्रभूतम् । ] अथ चमयातिनम् । अशस्त्रभूतमशस्त्रभूतम् ॥

उद्घातेति । उद्घात आघातः तेन कलिताः सम्भिता विजोः । प्र  
हेमघष्टा यस्य । ] वडा स्वादम्यादानशुद्धात आरम्भः इत्यमरः । तेनो  
उपक्रम इत्यर्थः । प्राप्तम्बो लम्बितो हारः । [तेन द्विगुणितः चामरस्य  
धवनिमा यत्र । प्राप्तम्बं द्विगुणितं द्विपार्श्वे द्विधावद्ध यच्चामरं तस्य प्र  
यत्र इति केचित् । ] प्रहाराः प्रकाशः । [नियमिता अतएव वस्तिताकुला  
। नियमितं वस्तितां येषां तेषाम्भूता अतएव आकुला अस्यां यस्यां

इति पाठे नियमितं वस्तु चारु वस्तितां येषां तेषां

( प्रवेश करके )

रञ्जुकी—महाराज,

प्रतिघात से बजती हुई चञ्चल सुवर्ण की धव्यियों वाला, सटकती माताओं  
जुने किये गये चामर के हास (व्यवहारा) वाला, गति के नियन्त्रित होने से  
। घोड़ों वाला और शत्रुओं के मनोरथों को नष्ट कर देने वाला आपका  
य तैयार है ॥२८॥

राजा—देवी, तुम भी अन्दर आओ । (‘तो अब मैं उस घृष्ट पाण्डव ...’  
वे कहता हुआ प्रेमता है) :

( सब निकल जाते हैं )

\* द्वितीय अङ्क समाप्त \*

इति । ] नियमितो वेदितेन गतिविशेषेणावृत्तितोऽप्यसौ यत्र स तथा ।  
अत्रुणा कविता माशिता मनोरथा येन स तथोक्तः । अत्र अत्रुणामिति पशुपा  
शोरसेन सम्बन्धः । सापेक्षत्वात्समाप्तः । तदुक्तम् — सम्बन्धिशब्दः सापेक्षो  
त्यं सर्वः समस्यते । वाक्यवत्सा व्यपेक्षापि कृतावपि न हीयते ॥ इति । ] ॥२८॥  
अत्राहुः, नायिकाचेत्योर्भाषा शौरसेनी । तदुक्तं तत्रैव — नायिकायां च  
त्यो च तथा चैव विदूषके । शौरसेनी समाश्रित्य भाषा योज्या ॥ नाटके ।  
इति । एवमन्यत्रापि ॥

असूत यं रत्नधरो गुणीको नानागुणाद्या दमयन्तिकापि ।

जगद्धरं तस्य कृती गतोऽयमङ्को द्वितीयो वरटिप्पनेऽत्र ॥

● द्वितीयोऽङ्कः ●

## तृतीयोऽङ्कः

( गतः प्रविशति विहृतवत् राक्षसी )

राक्षसी—(विहृतं विहृत्य । सगरितोऽयम्)

हतमानुषमांगभारवैः कुम्भमहम्प्रयसाभिः संचितैः ।

अनिशं च पिबामि क्षीणितं वर्णगतं समरो भवतु ।

(गुरुवन्ती सगरितोऽयम्) यदि तिम्युरात्रवप्रविशन् इव प्रतिपद्यतेऽर्जुनतया पर्याप्तभुजबोहागारं मांसक्षीणितं गृहं प्रविशति ।  
(विशोऽयसोऽयम्) अथ कः नु खलु रुधिरप्रियो भविष्यति ।  
प्रियभर्तारं रुधिरप्रियमन्वेषयामि । (परिक्रम्य) भवतु । तस्मादेव  
अरे रुधिरप्रिय, रुधिरप्रिय, इत एहि, इत एहि ।

[हृदमाणुसमंगभारणं कुम्भमहद्वज्रवशादिं संविष्ट ।

अणिशं च पिबामि क्षीणितं वर्णगतं समरो भवतु ।

जह शिन्दुसात्रवहद्विजहे विज्र विज्रहे-दिमहे समस्तकम् प्रविशति ।  
ततो पञ्चसर्पशिरःकोट्यागते मण्डपोलिपिं मे मेहे हवीप्रदि । अहं  
सुहितपिपि हवीप्रदि । ता जाय इमं च समले विज्रमत्तानं सुहितपि  
शामि । होहु । महाइसं दाव । अले सुहितपिपि सुहितपिपि इति  
एहि ।]

( ततः प्रविशति तस्याविधो राक्षसः )

राक्षसः—(धमं नाटयन्)

प्रत्यग्रहतानां मांसं यद्युष्णं रुधिरं च लभ्येत ।

तदेव मम परिश्रमः क्षणमात्रमेव लघु नश्येत् ॥२॥

[पञ्चमहदाहं मंसं जह जंहे सुहिते च लभ्येत ।

ता एते मह परिश्रमे नश्येतां एव लघु नश्येत् ॥२॥

( राक्षसी पुनर्यादिरति )

[विहृतः भीमस्तः वेपो यस्याः । विहृतं विहृतम् । ]

## तृतीय अङ्क

( तलाश्चाद् बीभत्स वेष वाली राक्षसी प्रवेश करती है )

राक्षसी—(भयङ्कर हँसी हँसकर सन्तोष के साथ)

मरे हुए मनुष्यों की मांस-राशि के हथारों धड़े खर्चों सहित सञ्चित कर  
र मैं दिन-रात रुधिर पी रहो हूँ । यह युद्ध सौ वर्ष तक चसता रहे ॥१॥

(नाचती हुई सन्तोष के साथ) यदि सिन्धु देश के राजा (जयद्रथ) के बध  
न के समान प्रतिदिन अर्जुन युद्ध-पराक्रम करता रहे, तो मेरा घर मांस  
रुधिर से पूरे भरे हुए कोठे वाला हो जायेगा । (घूमकर और चारों ओर  
र) न जाने रुधिरप्रिय कहाँ है ? तो इस युद्ध-क्षेत्र में अपने प्रिय पति  
प्रिय का पता लगाऊँ । (घूमकर) अन्ध, पुकारती हूँ । ओ, रुधिरप्रिय,  
प्रिय, इधर आ, इधर आ ।

( तब उसी प्रकार का राक्षस प्रवेश करता है )

राक्षस—(धकान का नाट्य करता हुआ)

यदि ताजे मरे लोमों का मांस और गर्म रुधिर मिल जाये तो मेरी  
कान क्षण-भर में ही तुरन्त मिट जाय ॥२॥

( राक्षसी फिर पुकारती है )

[हतेति । हतानां मानुषाणां मांसस्य भार एव भारकः तस्मिन् । कुम्भानां  
तेन परिच्छिन्नाभिः वसाभिः सह संचिते सति अग्निशमहोरात्रं शोणितं  
निवामि । समरो युद्धं वर्षशतं शतवर्षपर्यन्तं भवतु ॥१॥]

अमरकर्मप्रतिप्रवर्तयत्यर्जुनस्त्वदा पर्यन्तं भुतकोष्ठागारं भय मांसशोणितं हं  
पति । भवतु । वादयिष्ये । अरे रुधिरप्रिय रुधिरप्रिय एहि तावद् ।

[यदि प्रत्यर्थं सद्यः हतानां मांसम् उष्णं कोष्ठां रुधिरं च सम्प्रेत, तत्तदा  
प परिषमः श्वेदः क्षणमात्रमेव सधु द्राक् नश्येत् क्षयमिमाद् ॥२॥]

गारं कोष्ठाज्जडम् । अरे को मां वादयते । कथं प्रिया मे वसागन्धा ।

रासतः—(आनन्दं) अरे कंठा मी मन्नापने । (फिलोस)  
 वनागन्धा । (उपगृह्य) वनागन्धे, वसन्ताम्ना मन्नापने ।  
 गदावेदि । कहं निभा मे वनागन्धा । वनागन्धे कीन मं मन्नापने ।

रुधिरासवपानमनिके रणहिण्डनस्त्रलद्रात्रिके ।

शब्दायसे कस्मान्मां प्रिये पुरुषसहस्रं हतं श्रूयते ।

[सुहृत्सामवाणमतिरुधिरहिण्डनस्त्रलद्रात्रिके ।

गदाभ्रमि कीन मं गिरुमिन्नसहस्रं हतं सुलीत्रदि ।

रासती—अरे रुधिरप्रिय, इहं लघु मया तव कारणात्प्रत्यक्षं  
 राजर्षेः प्रभूतवतास्तेहचिह्नं कोष्णं नवरुधिरमप्रमांसं चानीतम् ।  
 [अते सुहृत्सामवाण एतं वन्दु मए तुह कासलादो वसन्ताम्ना मन्नापने ।  
 गिरुमिन्नो स्पृहदवसाधिलेहचिह्नं कोष्णं गुर्वसुहृत्सं वसन्ताम्ना मन्नापने ।  
 विवाहि एम् ।]

रासतः—(सपरितोषम्) साधु, वसन्ताम्ने, साधु । शोभनं तव  
 बलवदस्मि विपासितः । तदुपनय । [साधु वसन्ताम्ने साधु । शीघ्रं तु  
 वलिभ्रष्टि विवाशि । सा उवरोहि ।]

रासती—अरे रुधिरप्रिय, इहमे हतनरगजपुत्रसङ्गमशोभितवताम्  
 समराङ्गणे परिभ्रमस्तव विपासितोऽसीत्यादिव्यंमारुच्यंम् । [अने तु  
 एवमे हदणलमजनुसङ्गमशोभितवताम्ना मन्नापने ।  
 विवाशि एशि ति-अचलितं अचलितम् ।]

रासतः—अधि सुस्थिते, मनु पुत्रशोकस्ततस्तद्वदया स्वामिनीं हि  
 प्रेक्षितुं गतोऽस्मि । [अरु सुस्थिते-ए पुत्रशोकस्ततस्तद्वदया स्वामिनीं  
 देवीं वेनिलदुं गदहि ।]

रासती—रुधिरप्रिय, अद्यापि स्वामिन्या हिहिम्बादेव्या घटो  
 मोषशाम्यति । [सुहृत्सामवाण अद्यापि सामिलोए हिहिम्बादेवीए वदुम्  
 उपनय ।]

गददनामुत्तमि । वनागन्धे विनिमित्तं —

राक्षस—(मुनकर) अरे ! यह कौन मुझे पुकार रही है ? (देखकर)  
मेरी प्यारी बसामन्वा ! (समीप जाकर) बसामन्वा, मुझे क्यों पुकार  
रही ?

रक्षिणी—असुर के पीने से मत्त हुई, पुत्र-शोक से भ्रमण से शिथिल-  
बाली, हे प्यारी, तू मुझे क्यों पुकार रही है ? हमारों पुरुष मरे हुए तुने  
[ ॥३॥

राक्षस—अरे रक्षिणीय, मैं यह तेरे लिये ताजे मरे हुए किसी राजपि-  
यविक चबों की बिकनाई से बिकना, कुछ फलें लाजा रक्षिणी और हृदय  
मात (कलेजी) लाई हूँ । इते पी ले ।

राक्षस—(सन्तोष के साथ) शाबास ! बसामन्वा, शाबास ! तूने बड़ा  
का किया । मैं बहुत ही प्यासा हूँ । तो मेरे पास लाओ ।

राक्षस—अरे रक्षिणीय, बड़ा आश्चर्य है कि तुम ऐसी पुत्र-भूमि में, जो  
मरे पुरुषों, हाथियों और घोड़ों के रक्षिणी और चबों के समुद्र से पुर्ण है,  
तुने हुए भी प्यासे हो ।

राक्षस - अरी, निश्चित बंटी हुई, मैं पुत्र-शोक से व्याकुल हृदय वाली  
मिनी हिडिम्बा देवी को देखने गया था ।

राक्षस—रक्षिणीय, तो अभी स्वामिनी हिडिम्बा देवी का घटोत्कच की  
से उत्पन्न शोक शान्त नहीं हुआ ?

रक्षिणीयवचनमस्ते रक्षिणीयस्त्वत्पुत्राणि । वादयमे निमित्ति मुन्दरि मा  
वर्त हतमिति श्रूयते ॥३॥

प्रभूतवसातोऽर्णव मंस्तिष्कचिह्नलम्पप्रभावं चानीतम् । तरवाद्य । विव  
उतासवम् । अत्र प्रत्यक्षं नवम् । प्रभूतमुपनिषत् । मंस्तिष्कं गोदीति  
इम् । अर्णवप्रमभागमुत्तमं वा । [बलवत् अत्यन्तं] पिपासितः [पिपासा  
संशता स तथा । अत्र सुष्ठु मनोहरम् । नलितोऽतिनयितः । ननु पुत्र-  
वर्तता देवीमन्वेष्टुं गतोऽस्मि । हे सुस्थिते । ननु भवामि । अरे रक्षिणीय  
मयाप्यस्याः स्वामिनी हिडिम्बादेव्याः पुत्रस्य घटोत्कचस्य लोको हृदया-  
वाग्निः ।





राक्षसी—रक्षिरप्रिय, कुमार भीमसेन के पीछे-पीछे किस कारण घूमते हो?

राक्षस—बसागंधा, स्वामी बुकोबर (भीमसेन) ने दुःशासन का रक्षिर की प्रतिज्ञा कर रखी है। वह (कुमार भीमसेन के शरीर में) प्रविष्ट हम राक्षसों को ही पीना होगा।

राक्षसी—(हर्ष के साथ) चम्प हो, स्वामिनी, चम्प हो। आपने मेरे पति के अच्छी व्यवस्था कर दी है।

( नेपथ्य में तीव्र कलकल ध्वनि होती है। दोनों मुनने ५ )

राक्षसी—(मुनकर ध्वराहट के साथ) अरे रक्षिरप्रिय, वह कंसा तीव्र र शब्द सुनाई दे रहा है ?

राक्षस—(देखकर) बसागंधा, यह श्रेण दृष्टद्युम्न द्वारा केशा खींच कर : से मारा जा रहा है।

राक्षसी—(हर्ष में) रक्षिरप्रिय, आओ। चलकर श्रेण का रक्षिर पीवेंगे।

राक्षस—(भय से) बसागंधा, यह साहस्य का रक्षिर है। गले की जलाता मर जाता है। इसलिये इससे क्या (साध) ?

( नेपथ्य में फिर कलकल ध्वनि होती है )

राक्षसी—रक्षिरप्रिय, वह पुन तीव्र कलकल शब्द सुनाई दे रहा है।

राक्षस—(नेपथ्य की ओर देखकर) बसागंधा, यह अवस्थामा तलवार

उत्तकं । एतत्कालीनेनैतत्पर्वः । अरे रक्षिरप्रिय कीदृश स्वामिण्या हिहिम्वा-  
न सविभावः इतः । पुन रक्षिरप्रिय अक्षप्रभृति त्वया नाथभीमसेनस्य  
समर बाहिर्गितव्यमिति । ततस्तस्य मार्गानुगामिनो हतमानुपशोणितनदी-  
नेन प्रणष्टा मे वृमुसा पिपासा च । स्वमपि विश्वस्ता भूत्वा रक्षिर दत्ता  
च संवेप्यसीतीहैव सुरलोको भविष्यतीति अथ । बुभुक्षा भोक्तुमिच्छा ।  
तत्ता विश्वासवती । सुमंविभागो यम भर्ता कृत । अरे रक्षिरप्रिय रक्षिर-  
वत्तिष्ठोतिष्ठ । कुतः सत्त्वेष महान्कलकलः श्रूयते । तदल समंतेन । अरे  
प्रिय रक्षिरप्रिय वत्तिष्ठोतिष्ठ । पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते । बसागंधे  
सत्त्वभस्माकृष्टासिपत्र इतः समरभूमिमवतरति । कदाचिद् द्रुपदमुत्तरोपेया-  
राभसान्द्रेय व्यापादयिष्यति । तदेहि । पलायावहे । अत्रासिपत्रः सङ्गः ।

हिहिमवादेवीए वाचकुमाणं वाहाविअ आणुत्ते अहं सुहिनपिआः ।  
अअउत्तएत्ता भीमसेणइत्ता विट्ठोरोणुविट्ठं वमने आहिण्डइत्तं नि ।  
अनुमगगामिणो हअमाणुसओणिअएईदंअणुण्णएणुट्ठुभुत्ताविवाअए  
मे वमगलोओ हुवीअदि । तुमं वि वीजइत्ता भविअ सुहितवसहि ।  
तंवेदि ।]

राससी—रधिरप्रिय, किनिमित्तं कुमारमीदत्तेनस्य पृष्ठतोऽनुदृश्यते  
[सुहिलपिआ, किणिमित्तं कुमारभीमसेणस्य विट्ठोरोणुविट्ठं आहिण्डइत्तं नि ।

राससः—वसतागम्ये, तेन हि स्वामिना वृकोदरेण वृत्तापरस्य स्त्री  
प्रतिभातम् । तस्मात्स्वामी राक्षसैरनुप्रविश्य पातव्यमिति । [वसतागम्ये, ते  
वामिणा विओदत्तेण वृत्तापरस्य सुहितं पादुं पङ्क्तिणादम् । तं व  
सकन्दौहि अणुण्णविशिअ पादव्यंति ।]

राससी—(सहपंम्) साधु, स्वामिति, साधु । सुसंविधानो मे कृतः ।  
[साधु वामिणोए साधु । सुसंविहाणे मे भत्ता कुए विदे ।]

( नेपथ्ये महान्कलकसः उभावाकर्तव्यतः )

राससी—(आकर्ष्य ससंभ्रमम्) अरे रधिरप्रिय, किं नु सत्त्वेव महान्कल  
भूयते । [अले सुहिलपिआ, किं नु वधु एते महन्ते कलप्रले कुलीअदि ।]

राससः—(दृष्ट्वा) वसतागम्ये, एव वधु एहवृत्तमेव द्रोणः केसोर्वाह  
व्यापाद्यते । [वसतागम्ये, एते वधु विट्ठगुण्णोए दोणे केसेणु आम्हि  
वत्तेण वावादीअदि ।]

राससी—(सहपंम्) रधिरप्रिय, एहि । गत्वा द्रोणस्य रधिरं विहा

[सुहिलपिआ, एहि । गच्छिअ दोणस्य सुहितं नि

राससः—(समयम्) वसतागम्ये, आह्वयसोणितं वृत्तवेत्तम् । तस्य र  
वाति । तत्किमेतेन । [वसतागम्ये, वृत्तापरसोणितं वधु एदं । गत्तं व  
ववितादि । ता कि एदिणा ।]

( नेपथ्ये पुनः कलकसः )

राससी—रधिरप्रिय, पुनरप्येव महान्कलकसः भूयते ।

[सुहिलपिआ वृत्तोवि एते महन्ते कलप्रले कुलीअदि ।]

—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) वसतागम्ये, एव वृत्तव्यवस्थामा

राक्षसी—रक्षितप्रिय, कुमार भीमसेन के पीछे-पीछे किस कारण घूमते हो?

राक्षस—बसामन्या, स्वामी पुत्रोदर (भीमसेन) ने दुःशासन का रक्षित की प्रतिज्ञा कर रखी है। वह (कुमार भीमसेन के शरीर में) प्रविष्ट कर हम राक्षसों को ही पीना होगा।

राक्षसी—(हृष के साथ) धन्य हो, स्वामिनी, धन्य हो। आपने मेरे प्रति लिये अच्छी व्यवस्था कर दी है।

( नेपथ्य में तीव्र कलकल ध्वनि होती है। दोनों मुनते हैं )

राक्षसी—(मुनकर पथराहट के साथ) अरे रक्षितप्रिय, यह कंसा तीव्र कल शब्द सुनाई दे रहा है ?

राक्षस—(देखकर) बसामन्या, यह द्रोण पट्टपुत्र द्वारा केश खींच कर बार से मारा जा रहा है।

राक्षसी—(हृष से) रक्षितप्रिय, आओ। चलकर द्रोण का रक्षित पीजेंगे।

राक्षस—(भय से) बसामन्या, यह काश्यप का रक्षित है। गले को जलाता मग्न हो जाता है। इसलिये इससे क्या (लाभ) ?

( नेपथ्य में फिर कलकल ध्वनि होती है )

राक्षसी—रक्षितप्रिय, वह पुनः तीव्र कलकल शब्द सुनाई दे रहा है।

राक्षस—(नेपथ्य की ओर देखकर) बसामन्या, यह मध्वरथामा तलवार

नष्टेन । एतदानीनेनेतवर्षः । अरे रक्षितप्रिय कीदृशः स्वामिन्या द्विद्विधा-  
 र्थ्या सविभागः कृतः । पुन रक्षितप्रिय अद्यप्रभृति स्वया नापभीमसेनस्य  
 रक्षावदर आह्वितकर्ममिति । ततस्तस्य मार्गानुगामिनो हजमानुपसोरितनदी-  
 र्शनेन प्रणष्टा मे बुभुक्षा विगता च । त्वमनि विश्रस्ता भूत्वा रक्षितं वतां  
 तं च तवेव्यसीतीहैव मुरलोको भविष्यतीति अत्र । बुभुक्षा मोक्षमुमिच्छा ।  
 वृथाता विश्वासवती । मुमविमामो मम भर्ता कृतः । अरे रक्षितप्रिय रक्षित-  
 र्थ उतिष्ठोतिष्ठ । कृतः नस्वेव महान्नलकलः धूयते । तदसं मयैतेन । अरे  
 रक्षितप्रिय रक्षितप्रिय उतिष्ठोतिष्ठ । पुनरप्येव महान्नलकलः धूयते । बसामन्ये  
 न तन्मध्वरथामाकृष्टानिपत्र दनः समरभूमिमवतरति । वदाभिद् द्रुपदगुप्तेनेना-  
 नापसाम्नेष्य स्वाभारविष्यति । तदेहि । पलायकहे । अत्रातिरथः सद्यः ।



अनुरूप है, राज्यों के भञ्जक बिना ने निश्चिन्त रूप से (आज) वही कर्म प्रारम्भ कर दिया है ॥५॥

(पीछे की ओर देखकर) यहाँ कौन है ? रथ लाओ । अथवा अब मुझे यह रथ की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये । जल से भरे मेघ की कान्ति के समान चमकने वाले और अच्छी प्रकार पकड़ने योग्य तथा निमग्न सुवर्ण निमित्त झूठ वाले इस खड्ग ॥ अस्त्र-सम्पन्न हूँ ही । तब युद्ध-क्षेत्र में उतरता हूँ । (धूमकर और बायें नेत्र की पकड़न को सूचित करके) ओह ! मुझ अश्वत्थामा के लिये जी, जिसे युद्ध-क्षेत्री महोरसव का अत्यधिक हर्ष है और जिसे पिता के पराक्रम को देखने की तीव्र अभिलाषा है, ये अवश्यकुन युद्ध में जाने में बिचन उत्पन्न कर रहे हैं । अच्छा, जाता हूँ । (अकड़ के साथ धूमकर और देखकर) साधवर्त्म की खोज करने वाली, सम्प्रदीक्षित सत्त्वा के आचरण को स्थाप्य देने वाली, स्वामी द्वारा किये गए सत्कार को धुला देने के कारण क्षुद्र चित्त वाली, कुल एवं वंशान्ति के अनुरूप पराक्रम-व्रत की चिन्ता न करने वाली, युद्ध-क्षेत्र से चारों ओर भाग खड़ी होने वाली और हाथी, घोड़ों तथा पदातिवृत्तों की सेनाओं का यह महान् कोलाहल क्यों है ? (देखकर) ओह ! पिछार है ! ये कर्ण आदि महारथी भी युद्ध से क्यों भाग रहे हैं ? पिता से संघातित होने पर भी सेनाओं की यह वशा कैसे हो सकती है ? अच्छा, मैं (इन्हें) रोकता हूँ । हे कीरव-सेना कपी समुद्र के तट की रक्षा के कार्य में विद्याल पर्वतों के समान, राजा लोगों, युद्ध से पलायन के इस दुष्कृत्य से बस करो ।

देवर्षेः तुरंगमध्वर्यश्च धरन्तीति तच्छीलानाम् । चारीति तापदीप्तिको गिरिः । अग्नितं कुलस्य यशः तस्य सदृशं पराक्रम एव व्रतं यैः तेषाम् ।] अप्रयामती लायमानानाम् । अत्रक्रमोऽप्ययानं स्यात् इत्यमरः । हा हा ओकेर्जि निन्दायाम् नि । [कीरवसेना एव समुद्रस्य यैता मर्यादास्थितस्याः परिपालने महामहो-रसः ।] वेला तत्तीक्ष्णीयोः इत्यमरः । महोपरो गिरिः । कृतं निष्कलम् । इतं नीचं तु निष्कले इति विश्वः । [वृत्रमर्तं भा कुस्तेत्यर्थः ।]

अथवा—(विशेष) जो कर्म साधन साधिकादि । इ  
प्रयोगसाधनसाधन साधिकादि । इ वत्तः वित्तादिदिदिदि ।

पूः—(उपान गच्छाद्) दूरोऽपि ते हवः ।

अथवा—(नाशेनम्) किं तावद्दुःखं नास्ति ।

शुभः—मयं हिम् ।

अरथायामा—हृत्तान् । (इति षोडशोपनिषत्) ।

पुनः—दुमार, तामाश्चमिहि तामाश्चमिहि ।

**भरवापाया—**(सत्यमज्ज. नागव) हा ताप, हा गुणवाताप, हा शोक धनुर्धर, हा ज्ञानवाग्द्वारात्तर्हयज्ञनिष्ठप्रणविद्, कृति । प्रथमतः ये इति

सूत्रः—कुमारः, असमाश्रितलोकाद्येन । धीरपुत्रयोर्वितां विनि-  
वितरि त्वमपि तदनुदयेनैव धीर्येण लोकमागम्यतोर्व सुखी भव ।

अवधारयामा—(अधूणि विमुच्य) भार्ये, कथय कथय न्वयं तावन्तु  
 नागरस्तालोऽपि नामाप्रस्तमुच्यतः ।

किं भीमाद्गुरुदक्षिणां गुरुगदाद्वीमप्रियः प्राप्तवान्

सूत्रः—शान्तं वायम् । शान्तं वायम् ।

**अथवा—**

अन्तेवासिदयालुरुज्जिह्वतनयेनासादितो जिष्णुना ।

सुतः—रूपमेव सविध्यति ।

## REFERENCES

गोविन्देन सुदर्शनस्य नियतं धारापयं प्रापितः

[जमदग्नेरपत्यं पुमान् जामदग्न्यः परशुरामस्तस्याश्चाग्न्येव सर्वस्वं तत् प्रतिग्रहे स्वीकारे प्रणयो विद्यते अस्य तत्संबुद्धिः । विपत्ति मरणम् । तत् रूपेण सदध्येन ।] प्रतिग्रहो ग्रहणम् ।

॥ भीमाविति । शिष्याद्भीमात् । गुरुगदामेव गुरुदक्षिणात् । [गुरुगदादिति  
भीषणा मङ्गनी वा गदा यस्य तस्मात् ।] भीमः प्रियो मित्रं यस्य च  
- शिष्यः । उद्विष्ये दद्यात्तुर्द्वयायुतः । [उज्जितस्यतः नमो

अश्वत्थामा—(देखकर) अरे ! कैसे ? पिता का सारथि अश्वत्थेन ? आर्य,  
 लोको की रक्षा करने में समर्थ (मेरे पिता) के सारथि हो । क्या मुझसे  
 चाहते हो ?

सूत—(उठकर करुणापूर्वक) अब तुम्हारे पिता कहीं ?

अश्वत्थामा—(आवेग के साथ) क्या पिता ही नहीं रहे ?

सूत—और क्या ?

अश्वत्थामा—हाय ! तात ! (यह कहकर मुछित हो जाता है) ।

सूत—कुमार, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये ।

अश्वत्थामा—(बैतना प्राप्त करके आसू भरकर) हाय तात ! हाय पुत्र-  
 त ! हाय तीनों लोकों में अद्वितीय धनुर्धर ! हाय परशुराम के अश्व-वपी  
 के लेने में प्रेम रखने वाले ! तुम कहीं हो ? मुझे प्रत्युत्तर दीजिये ।

सूत—कुमार, आघात शोक के आवेग से बस करो । पिता के वीर पुत्र  
 भीम मृत्यु पाने पर तुम भी उनके अनुसृत्य ही पराक्रम से शोक-सागर को  
 कर सुखी होगो ।

अश्वत्थामा—(आसू बहाकर) आर्य, बतलाओ, बतलाओ—बंसे (भीम)  
 का सागर, पिता भी कैसे मृत्यु को प्राप्त हो गया ?

क्या भीम से प्रेम करने वाले (पिता) ने भारी गदा वाले भीम से गुद-  
 ना पा ली है ?

सूत—वाप शान्त हो, वाप शान्त हो ।

अश्वत्थामा—

(तो) उचित आचार का परिपालन करके शिष्य (अर्जुन) ने शिष्य पर  
 (पिता) की अभिभूत कर दिया है ?

सूत—ऐसा कैसे होगा ?

अश्वत्थामा—

(तो) निश्चय ही गोविन्द (कृष्ण) ने सुदर्शन की धारा के वश की प्राप्त  
 दिया ?

यार्थों गुरो भक्तिरेवोचितं न तु वृत्तसत्त्वमित्येतद्रूपः येन ।] शिष्यना



सूतः—एतदपि नास्ति ।

शङ्के नापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम् ॥

सूतः—कुमार,

एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रिणाणेः

किं ध्वजंटेरिव तुलामुपयान्ति संख्ये ।

शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं

त्यक्तं तदास्य विहितं रिपुणाऽतिथोरम् ॥१०॥

अश्वत्थामा—किं पुनः कारणं शोकस्याऽश्वत्थामस्य वा ।

सूतः—ननु कुमार एव कारणम् ।

अश्वत्थामा—कथमहमेव नाम ।

सूतः—धूयताम् । (अथूणि विमुच्य) ।

अश्वत्थामा हत इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा

स्वैरं शोपे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा ।

तच्छ्रुत्वाऽसौ दयिततमयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः

शत्र्याप्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ॥११॥

अश्वत्थामा—हा तान्, हा मुन्यतस्तत्, हा वृथामहर्षपरिवृत्तजीविनः, हा शीर्षराजो, हा निष्प्राणिव, हा पुर्विद्विषयपातिन् । (इति रोदिति)

सूतः—कुमार, अतमाश्रयतपरिवेदनकार्येण ।

अश्वत्थामा—आमादिनः साति इत्यर्थः । निवर्तं निभिनम् । गुरतंभो हरिषः । गुरतंभो इत्यर्थः । अश्वत्थामा—आमादिनः साति इत्यर्थः । निवर्तं निभिनम् । गुरतंभो हरिषः । गुरतंभो इत्यर्थः ।

एनेजीनि । एने भीमार्जुनरुष्णाः । तस्ये संवाये ध्वजंटेर्हृदये [इव कुपितस्य मुनामुपयान्ति इति] । नैवेत्यर्थः । हृदयेनेत्याचार्यविशेषणं । [यत् !

अश्वत्थामा—आमादिनः साति इत्यर्थः । निवर्तं निभिनम् । गुरतंभो हरिषः । गुरतंभो इत्यर्थः ।

अश्वत्थामा—आमादिनः साति इत्यर्थः । निवर्तं निभिनम् । गुरतंभो हरिषः । गुरतंभो इत्यर्थः ।

सून—यह भी नहीं है ।

अश्वत्थामा—

इनसे अनिश्चित किसी चीजे से मैं पिता की विपत्ति की आशङ्का नहीं करता ॥८॥

सून—कुमार,

क्या ये सब लोग भी, शिव के समान हाथ में महाम् अस्त्र धारण करने लगे, कुपित हुए उसका युद्ध में सामना कर सकते हैं ? लेकिन जब शोक से तन्नास्त हृदय वाले (मापके पिता) ने सस्त्र त्याग दिया, तब शत्रु ने इसके नि अतिदारुण कर्म किया ॥९॥

अश्वत्थामा—लेकिन शोक अथवा सस्त्र-त्याग का क्या कारण था ?

सून—बस, कुमार ही कारण थे ।

अश्वत्थामा—मैं ही कैसे ?

सून—मुनिवरे । (आँसू बहाकर)

सत्यवादी पृथा के पुत्र (मुनिहिर) ने 'अश्वत्थामा मारा गया' यह स्पष्ट कर (बाक्य के) शेष (भाग) में 'गज' यह पर धीरे से कहा । उसे सुनकर राजा (मुनिहिर) के विश्वास से पुत्र की प्रेम करने वाले इसने युद्ध-भूमि पर गिरा दिये और साथ ही आँसू भी गिराये ॥१०॥

अश्वत्थामा—हाय तात ! हाय पुत्रवत्सल, हाय ! क्यर्थ ही मेरे कारण त्यागने वाले, हाय धीर्य-राशि ! हाय मुनिहिर का वसपात करने वाले ! प्रकार विलाप करके रोता है) ।

सून—कुमार, अत्यधिक विलाप और कातरता से बस करो ।

अश्वत्थामेति । पृथामुनुना मुनिहिराण । स्वैरमर्त्यं [अस्पृष्टमित्यर्थः] । शैवे स्वेति शेषः । किल निश्चये । ध्याहृतमुक्तम् । असावाचार्यः । दयितः प्रियः-पुत्रो यस्य स तथा । प्रत्ययास्वतीतेः । आञ्जो संश्रामे । शस्त्राणि भुमोच-मुत्सवं धनुःसमकालं नयनसन्निभं च भुमोचेत्यन्वयः । इहामृताहरणरूपः-यः । यदाह—उक्तं मुक्तं तु यदाक्यममृताहरणं तु तत् । इति । अश्वत्थामा ॥११॥

अवस्थायां—

श्रुत्वा वधं मम मृषा मुतवत्सलेन

तात त्वया सह शरैरसवो विमुक्ताः ।

जीवाम्यहं पुनरयं भवता वियुक्तः

कूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपातः ॥१२॥

(इति मोक्षमुपगतः)

सूतः—समारब्धसिन्धु समाश्वसिन्धु कुमारः ।

( ततः प्रविशति हृषः )

हृषः—(सोद्वेगं निःश्वस्य)

धिक् सानुजं कुरुपति धिगजातमाहुः

धिग् भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।

केदाग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया

द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ॥१३॥

तत्कर्णं तु खलु वत्सं द्रव्याम्यवस्थामानम् । अथवा हिमवत्तापुर्णम्  
ज्ञातलोकस्थितौ तस्मिन् खलु शोकावेगमहमाशङ्कम् । किं तु विदुः परिगण्य  
हृषमुपप्लुत्य न जाने किं व्यवस्थतीति । अथवा—

एकस्य तावत्पाकोऽयं दारुणो भुवि वर्तते ।

केदाग्रहे द्वितीयेऽस्मिन्नूनं निःशेषिताः प्रजाः ॥१४॥

[युधिष्ठिरे पक्षपातो विद्यते यस्य । कार्पण्येन वैकन्येन । प्राकृतयत्नान्ते  
वर्जो मा भूरिरयंः ।]

भूत्वेति । [मृषा विषय मम वधं श्रुत्वा ।] मत्तवः प्राणाः ॥१२॥

ततः प्रविशति हृष इति । अत्र मृषनाम्यतिरेकेणैव प्रवेग इति प्रयेगे  
अभिचरतीत्यवधेयम् ।

धिगसानुजमिति । सानुजमिति धिगयोगे द्वितीया । अज्ञातानां युधिष्ठिर

अरकावामा—

हे तान, तुम को प्रेम करने वाले आरने मेरे वप को भुटो वान गुनकर  
 को के साथ (हो) प्राय (थो) गपान रिये । तेरिन दह मे आगमे विपुल हो-  
 : भी ओरित हूँ । इतलिये मुम निहंटी वर आपका पक्षपान स्वर्ध ही था ॥१२॥  
 हे वरकर मुद्रित हो जाला है) ।

मुन—दुपार पंडे रचिये, सर्व रचिये ।  
 ( मल्लभाम् दृष्ट प्रवेष्ट करता है )

मि—(उदंगपुत्रक मल्लभाम् मीन लेकर)  
 अनुको तल्लि दुकरनि को पिट्टार है; अजातपाम् (गुविहिर) को पिट्टार  
 पात्राओं को पिट्टार है; निरवर्क पात्र चारन करने वाले हगको पिट्टार  
 दिहूनि विप्र-तिथिन के समान तब दुपद को पुत्री के भीर आज शीन के  
 दह को देखा है ॥१३॥

तो तुम अरकावामा को कंते देष्ट करूँगा ? अथवा हिमालय के समान  
 गोपी और उदार बिल जाने तथा गीत-मर्यादा को जानने वाले पत  
 म्भामा) में मुझे शोक के आशेन की आकाश्टा नहीं करनी चाहिये । तिम  
 नहीं कि निना के अनुचित अवमान को मुनकर वह क्या कर जाने ?

मि—  
 एक (देष्ट-दह) का तो वृष्ठी वर दह (महाभारत वप) भयदुर  
 माय है । इस द्वितीय देष्ट-दह होने वर निरवय हो समस्त प्रजा मष्ट  
 मयेगी ॥१४॥

तस्मिन् कृष्णानि विभ्रतीति तान् ।] वस्तु प्रतिज्ञो निभये वा । शीवद्याः  
 दृष्टादाय शीवाम्य च यः [निधिनं प्रियगर्नरिव] वीरित इत्यन्वयः ॥१३॥  
 [शिपयः पादः] हिमवतारो द्विपालयवसम् । [तद्वद् गुप स्थिरं चेतो  
 ।] स्थितिः स्वयम् । [मर्यादा व्यवस्था वा ।] तस्मिन्प्रदंस्यामि ।  
 यति करोति ।

एकस्येति । एकस्य [शीव्याः] केनप्रहस्य । तावच्छब्द उपक्रमे । निःशेविना  
 । दृष्टादित्यन्तो गर्भमयिः । यदाह—वीरस्योच्छेदन यत् तदादित्यमुदा-  
 ॥१४॥



(देवदत्त) तो वह जान अरबाबाया क्या है । समीप जाता हूँ । (समीप र वज्राट्ट के साथ) बात, धैर्य रखो, धैर्य रखो ।

अरबाबाया—(बैठना पाकर आगु भरे हुए) हाय तात । हाय सम्पूर्ण । के प्रधान पुत्र । (आबाय की ओर देवदत्त) पुत्रिद्विर । पुत्रिद्विर, बाय से लेकर आने (कभी) भूट नहीं बोला, क्योंकि तुम सोचो से हुं व रते हो, इसलिये तुम अज्ञातधनु (कहलाते हो); लेकिन मेरे बाय के । (तुमने) आचार्य और धेड़ काटण (मेरे) विना के विषय में वह सब एकरम कंते छोड़ दिये ? ॥१३॥

न—कुमार, वह तुम्हारे मामा आरहत समीप में लड़े हैं ।

अरबाबाया—(पारस्य से देवदत्त आगुओं के साथ) बाबा, बाबा ?

न—मेनारवि के साथ आज आज पुत्र-पुत्रि में गये थे; जो अकेला ही ी पुत्र की पारी बुझती को मिटा देने वाला था; जिसके साथ हमेशा - जोड़े हूँ-बड़ाक हुआ करते थे; आपकी बहन का अर्थात्तनीय पनि वह, बाबा, कहाँ जाता गया ? ॥१४॥

द्वि—आप सब आतम्य जानते ही हैं । इसलिये बहुत शोक के आवेग से कीजिये ।

अरबाबाया—मानुस, मैंने बिनाप छोड़ ही दिया । अब मैं भी पुत्र-प्रेमी का ही अनुगमन करता हूँ ।

द्वि—बात, आज जंतों के लिये वह उचित नहीं है ।

द्वि—कुमार, दुःसाहस न करो ।

अरबाबाया—आर्य आरहत,

गत इति । [येन सैन्यपतिना सह अद्य त्वं रणभुवं गतः । यः एकः दूरगता । या समस्तस्य युद्धस्य कण्टः भुजयोः कण्टूतिस्तस्याः निकषणः । । कण्टूतिक-कण्टूनिवारणः । [येन सह सवतः विद्याः । परीक्षाया नयभाषणानि सनतम् ।] हे मानुस सः ते स्वभुवंगिन्याः द्याप्यो भर्ता । क तु कुत्र तु खलु परिषत्तं ज्ञानं परिगन्तव्यं ज्ञानव्यं येन स तथा । परिदेवितं विज्ञातः ।

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः ।

करोमि विरहं तस्य वत्सलस्य कथं पितुः ॥१७॥

श्लोकः—वत्स, यावदयं संसारस्तावत्प्रणिद्धंवेयं लोकायां मयुर्कः ।  
लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । पश्य—

निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः ।

तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा ॥१८॥

सूतः—आपुष्पम्, ययैव मातुलस्ते शारद्वत्तः कथयति तत्तथा ।

अन्वयः—आयं, सत्यमेवेदम् । किं त्वत्तिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्यं  
तावद्विरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम् । तद्वच्छामि तमेवोद्देशं यत्र तव  
मपि पितरं द्रक्ष्यामि । (उत्तिष्ठन् वत्सलस्य विचित्रम्) कृतमप्यपि  
ग्रहणविशम्भनया । भगवन् शम्भु,

गृहीतं येनासीः परिभवभयाश्लोचितमपि

प्रभायाद्यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्न विषयः ।

परित्यक्तं तेन त्वमसि सुतशोकात्तु भया-

द्विमोक्षये शस्त्रं त्वामहमपि यतः स्वस्ति भवते ॥१९॥

( इति उत्सृजति )

( नेष्ट्ये )

भो भो राजानः, कथमिह भवस्तः सर्वे गुरोर्भरद्वाजाय परिभ्रमन्  
भृशं तेन प्रनुत्तमुपेक्षन्ते ।

मदिति । अविरहं समाश्रयं [मात्रिष्यमित्यर्थः] ॥१७॥

लोकाये इहलोके परलोके च [अनुवर्तनीया आनुस्त्वानुवर्तनीयाः । इति  
मोक्षमये विना हि महापापरागेन परलोकगते श्राद्धादिकर्मणोरप्यर्थः ।]

निवादेति । निवातः निवृत्तान् स्यान् इत्यमरः । निवापाञ्जलिदानं

[तस्य त्राणं दत्तुं शक्तेन] केतनैर्बुद्धैः [केतनैः ब्रह्ममोत्रैरित्यर्थः, साधुजनैः]  
अथ केतनं इत्येव । इत्यमरः । श्राद्धकर्मभिः च तस्योपकारे त्वं हि शक्यः  
शक्तः ।] किमुतान्यथा जीवन्वा शक्तः । अपि तु जीवन्वा जन्तुरित्यनेन

मेरे विरह के मय के कारण पिता यहाँ से परलोक चले गये । (तब) मैं  
तब प्रणयी पिता का वियोग कंते उत्पन्न कर सकता हूँ ॥१७॥

कृप—वस्तु, अब तक यह संसार है तब तक यह लोक-व्यवहार भी रहेगा  
त—पुत्र होने लोको में ही पितरों के अनुकूल व्यवहार करें । देखो—

बुध जलाजलि-दान, ब्राह्मण-भोज और बाण्ड-वर्म द्वारा उसके उपकार में  
लिखित रहते हुए समर्थ हो सकते हो अथवा अन्यथा (अनुमन करके) ॥१८॥

सूत—आपुनम्, तुम्हारे मामा दारुद्र्य जैसा कह रहे हैं, वह भीत है ।

अन्धायामा—आर्ये, यह सच ही है । परन्तु दुःख-भार के अत्यधिक असह्य  
ने के कारण पिता से विमुक्त मैं जल भर भी प्राण-धारण नहीं कर सकता ।  
[व उस ही जगह जाता हूँ जहाँ उस वृद्धा में वर्तमान (मृग) भी पिता को  
छोड़ सके । (उठते हुए तलवार को देवद्वार और साँवर) अब शस्त्र धारण  
करने के उपहास से बच करना चाहिये । भगवद् शस्त्र,

जिसने लिखित न होते हुए भी अपमान के मय से तुम्हें धारण किया था  
और जिसके प्रभाव से कोई तुम्हारा विषय नहीं हुआ, यह बात नहीं थी,  
क्योंकि उसने पुत्र के शोक के कारण, न कि भय के कारण, तुम्हें छोड़ दिया है,  
इसलिये हे शस्त्र, मैं भी तुम्हें छोड़ रहा हूँ । अपना कृत्याण हो ॥१९॥

( यह कहकर छोड़ देता है )

( नेत्रमय मे )

हे राजा लोगों, यहाँ लड़के आप लोग इस क्रूर द्वारा किये गये आचार्य  
भारद्वाज (श्रीग) के अपमान की कैसे उपेक्षा कर रहे हैं ?

विषय इति भावः ॥१८॥

गृहीतमिति । येनाचार्येण । [परिभवी विमानना तस्य भयात् । नीक्षितमपि  
गृहीतमतीति । यतः शस्त्र द्विजातिभिर्ग्राह्यं तर्मा यथावदुच्यते इति स्मरणात् ।]  
पत्न्याचार्यस्य प्रभावात् । तत्र विषयः कश्चिन्नाभूदेवं न खलु । सर्वे एव विषयो-  
भूदित्यर्थः । तेन त्वं, कुलशोकात्परित्यक्तमसि न तु भयात् । हे शस्त्र यतः  
ग्रहणम् ] विमोक्षये त्यस्यापि । अतो भवते स्वस्त्यस्तु । स्वस्तियोगे यम-  
स्ति-इत्यादिना चतुर्थी ॥१९॥



मद्वियोगभयानां परलोभितो नतः ।

कर्मोमि विरहः तस्य यन्मनस्य वयं पिनुः ॥१॥

इति.—यस्य, यावत्तत्वं तन्मात्रभावात्प्रतिबुद्धेयं मोक्षदाया वयं वि-  
तोषद्वयेः। यन्मनस्य भोवा इति । वाच—

निघाताकुनिदानेन केतनः श्वादकर्ममिः ।

नम्योपकारे जस्तस्य किं जीवन्निमुत्तान्यया ॥२॥

शून्य—आयुष्मन्, यन्मन् यावत्तत्वं शारङ्गः कथयति तत्तत्त्वं ।

अथायामा—आयं तस्यमेदेशम् । किं त्वन्निमुत्तान्यया उपकारस्य न दत्तं  
ता विरहितः क्षणमपि प्राप्ताम्पारविष्टम् । तद्वत्तानि तमेवोद्भूतं यत् तमेव  
मपि विसर्गं दृष्टवानि । (उनिष्टम् नान्मन्मोक्षं विविक्तम्) इत्यन्त्यां

मेरे बिरह के मय के कारण पिता यहाँ से परलोक चले गये । (तब) मैं प्रणयी पिता का विधीन कैसे उत्पन्न कर सकता हूँ ॥१७॥

रूप—वत्स, जब तक यह संसार है तब तक यह लोक-व्यवहार भी रहेगा :—पुत्र दोनों लोकों में ही पितरों के अनुकूल आचरण करें : देखो—

तुम जलाजति-दान, बाह्यन-भोज और धातु-कर्म द्वारा उसके उपकार में दित रहते हुए समर्थ हो सकते हो अथवा अशक्त (अनुगमन करके) ॥१८॥

सूत—आपुष्पन्, तुम्हारे मामा शरद्वत जैसा कह रहे हैं, वह शोक है ।

अशक्त्यामा—आप्रे, यह सच ही है । परन्तु दुःख-भार के अत्यधिक असह्य ने के कारण पिता से विमुक्त मैं लथ भर भी प्राण-धारण नहीं कर सकता । व उस ही जगह जाता हूँ जहाँ उस दशा में वर्तमान (मृत) भी पिता को उ सचूँ । (उठते हुए सनवार को देववर और भोववर) अब शस्त्र धारण करने के उपहास से घस करना चाहिये : भवन्तु शस्त्र,

जिसने उचित न होते हुए भी अपमान के मय से तुम्हें धारण बिधाया और जिसके प्रभाव से कोई तुम्हारा विषय नहीं हुआ, यह बात नहीं थी, क्योंकि उसने पुत्र के शोक के कारण, न कि भय के कारण, तुम्हें छोड़ दिया है, सोचिये हे शस्त्र, मैं भी तुम्हें छोड़ रहा हूँ । अपना कल्याण हो ॥१९॥

( यह कहकर छोड़ देता है )

( नेपथ्य में )

हे राजा लोगों, यहाँ छोड़े आप लोग इस क्रूर द्वारा किये गये आचार्य भारद्वाज (श्रेण) के अपमान की कैसे उपेक्षा कर रहे हैं ?

विमल इति भावः ॥१८॥

गृहीतमिति । देनाकार्येण । [परिष्करो विमानना तस्य भयाद् । नोचितमा गृहीतनामोः । यतः शस्त्रं द्विजातिभिर्गृहीतं घर्मो यथावत्पश्यते इति स्मरणान् । अस्याचार्यस्य प्रभावान् । तत्र विषयः कश्चिन्मासुदेवं न खलु । सर्वे एव दिग्गो मूढिगर्षः । तेन एवं सुनशोकवर्तित्यक्तमसि न तु भयान् । हे शस्त्र यत् अहमपि ] विमोक्ष्ये रक्षयामि । अतो भवते स्वस्वस्तु । स्वस्तिपोगे नम स्वस्ति-इत्यादिना चतुर्थी ॥१९॥

मृदुर्द्विधासोयद्रविणमदमतस्य च ग्मिो-

मेर्मनाय गार दिग्मि निहितमनस्य न करः ॥२२॥

वाः दुरासनाञ्जानागध,

तानं नरप्रहणविमुखं निरुपयेनोत्तमस्य

त्यक्त्वा नृणां गम्बु विदधनं पाणिमरयोत्तमाङ्गे ।

अथान्यामा कम्पुनघनुः पाण्डुपाञ्जालमना-

तूलोत्थेषप्रलयपवनः किं न याग स्मृतिं ते ॥२३॥

पुषिद्विह, पुषिद्विह, अज्ञानरात्रो, अविप्याशरिन्, अमनुज, सतुम्भ  
किमनेनापकृतम् । अथ वा किमनेनालीकप्रहृतिनिहृषेतसा । मनुज, सतुम्भ  
बाहुशालिभुकोदर व्याधय, युष्मन् नाम यवनां सुरानुरमनुजचोर्द्विप्रपुत्रा  
द्विजामनः परिणतवयसः सर्वाचार्यस्य विशेषतो वयं पितुरमुना दुस्प्रकृतकतई  
मनुजपशुना स्पृश्यमानमुत्तमाङ्गमुपेक्षितुम् । अथ वा तथै एवैते पान्थिन  
किमेतैः ।

कृतमनुमत दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातक

मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।

नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना-

मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिक्षां बलिम् ॥२४॥

दो गर्वस्तेन मत्तस्य । अथ पिनुः शिरसि करो न निहितः । किन्तु मयैव शिरसि  
दो निहित इत्यन्वयः ॥२२॥

तातमिति । उपलब्ध तात्वा । शङ्खं मनुजुत्तपारिभादिशङ्खम् । पशु  
सेदो । उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम् इत्यमरः [विदधतो व्यापार्यतेः] पान्थिना  
आत्मानां च सेना एव तूलः तस्य उत्तमेषे प्रलयपवनः कलान्तमास्तः । सीतमैव  
[रुद्धेदकारी इत्यर्थः] । अथान्यामा तथै स्मृतिं किं न यातः ॥२३॥

अज्ञानरात्रोऽपि न किमपि । कीदृशेन । अलीकानामनेन

इस शस्त्र-समूह की वन के मंद से मत्त हुए बाण का पंर हो मेरे तिर पर  
बसा गया, उसके (पिता के) तिर पर हाथ नहीं ॥२२॥

ओह ! दुष्ट, अधम पाश्चात,

पिता की निश्चित रूप से शस्त्र-ग्रहण से पराङ्मुख जानकर, (इतलिये)  
थ छोड़कर इसके तिर पर हाथ बालते ॥ तुम्हें क्या हाथ में धनुष धारण  
करने जाता और बाण तुम्हें पाश्चात सेना की रई की उड़ा देने में प्रलय-  
काल का, पवन, अज्ञातवाया वाद नहीं आया ॥२३॥

पुषिष्ठिर ! पुषिष्ठिर ! अजापराध ! सत्यवादी ! धर्मपुत्र ! अनुज सहित  
होरा इसमें क्या बिगाड़ का ? अथवा इस झूठे और स्वभाव से कुटिल चित्त  
जाल से क्या (अपेक्षा की जा सकती थी) ? अर्जुन ! सारथिक ! बाहुराजो  
भीम ! भाषव ! क्या, भाव लोगों को इस दुपर-कुल के कलशू, मनुष्य-पशु  
द्वारा छुए जाते, सुर, असुर और मनुष्य लोक में अद्वितीय धनुर्धर, ब्राह्मण,  
बुद्ध, सब के गुरु और विशेषकर मेरे पिता के तिर की अपेक्षा करना उचित  
था ? अथवा ये सब के सब पातकी हैं । इनसे क्या (अपेक्षा) ?

जिन मर्यादाहीन, शस्त्र धारण करने वाले मनुष्य रूप में वर्तमान पशु,  
भाव लोगों ने यह महान् पातक किया है, अथवा उसकी अनुमति दी है, अथवा  
से होते देखा है, नरक-रिपु (कृष्ण) के साथ साथ भीम और अर्जुन सहित  
ज सब के दधिर, धर्मी और मांस से मैं विद्याओं को बलि दिये देता हूँ ॥२४॥

[प्रतिबन्ध] इतरजमनककुटित चेत्ती यस्य तेन । [अलीका या प्रकृतिस्तथा  
महा चेत्ती यस्येति वा । सुरासुरमनुजानां लोकास्तेषु एकधनुर्धरस्तस्य ।]

इतिवर्ति । [यैः निर्गता मर्यादा येभ्यस्तैः निर्भयैः उद्वतानि आयुधानि  
या तैः उदाधुर्धः । प्रतिकर्तुं समर्थैरपीति यावत् । मनुजपशुभिः भवद्भिः इदं  
मानक इतमनुमतं द्रष्टुं वा । नरकरिपुणां सार्धं मनीषकिरीटिना लेपा  
मृगेश्वरोभार्यः अपमहं दिशा बलिं करोमि इत्यन्वयः ।] शुभं महच्छ सत्पातकं च ।  
रकरिपुः कृष्णः । असृष्टः । मेघो भज्रा । बलिमुपहारम् । बलिः पूजोपहारयोः  
नि पाश्चातः ॥२४॥

६१. - वाच, हि न भवामहे मातृभ्रातृभ्यां भ्रातृभ्याम् ।  
 सोऽन्ते पठन्ति ।

संख्या-भा—भा ॥, वाचस्पत्ययनोपनिषद्भाष्यभाष्यः संख्याभाष्यः।

पितुर्मृञ्जि तृष्टे उदगदनमभास्यत्परशुना

कृत्वा यशमेव श्रुतिमुपागत तत्र भवनाम् ।

किमद्याशब्दामा सदस्मिन्पिशागारविद्धम्

न कर्म कोधान्य प्रभवति विद्यानुं रणमुने ॥२१॥

पुनः कष्टं त्वं सर्वोत्तरमैः साधयामिर्न. तवांपुत्रं त्वेन महानात्मकस्य गहनमुपनयः ।

सूतः—यदातामपि कुमारः । (इति निष्क्रान्तः) ।

कृपः—वस्तु, अक्षरप्रतिफलं यद्येष्टिमन्त्रादौ प्रतिभवात् तर्हि  
कोऽप्यस्वामन्तरेण दासः प्रतिकर्तुम् । किं नू—

सम्भारयामा—दिम १: परम् ।

हृषः—सैनापात्ये अभिविषतं भवत्प्रविष्टाणि समस्तभुवमवतान्निभे।

अथार्यामा—मातुल, परतन्वमिदमल्लित्तरं च ।

उप: - वास, न त्वत्तु परतन्त्रं नास्ति चिरकृतं च । परम -

भवेदभीष्ममद्रोणं धार्तराष्ट्रवलं कथम् ।

यदि तत्तुल्यकर्मात्र भवान्धुरि न युज्यते ॥२६॥

प्राप्तः संप्रः । कोविदः पण्डितः ।

पितुरिति । [पितुर्जन्मदशनेर्मुञ्चि कातंवीर्यस्य पञ्चः स्पृष्टे तति ।]

[अथ लब्धं योजनरास्तद्वद्भास्वान् परशुर्यस्य तेन] रामेण परशुरामेण हनं क्षीय  
जनघातादिकं तदभयतां किं श्रुतिपदं न गतम् । वितुर्भूजि ह्रुपदेन स्पृष्टे  
अरवश्यामा हिमस्यापि तत्त्वमं विधातुं न शक्यति अपि तु प्रमत्तो  
एव] विषसो भोजनविशेषः [यस्मिन् तद्] । अतः विष  
। इत्यमरः ॥२५॥

५ हर—बस, भावद्वारा से सवार, जादुजाबी, दिव्य अस्त्र-समूह से सज्ज  
। मैं क्या सम्भव नहीं है ?

६ अरुणपति—हे पाण्डव, मलय, शोणक और आप्य आदि अथवा शत्रुओं,  
निता के तिर के छुड़े जाने पर अतली हुई अग्नि के समान चमकते हुए  
पुत्राने राम (परशुराम) के जो कर्ष दिया था, क्या वह आप लोगों के  
। मैं नहीं पहुंचा है ? क्या आज ओष से अग्रा हुआ अरुणपति युद्ध के  
। पर उन कर्म को, जिसमें शत्रुओं के शिर को कर्ष हो विघ्न (घिरा  
दिया जाने वाला अस्त्र) है, करने में समय नहीं है ॥२५॥

सुन, तुम जाओ और सब साधनों तथा युद्ध के अस्त्रों से युक्त हमारे  
हस्तगत' नाम के रथ को लाओ ।

सुन—कुमार को जाता हूँ । (यह कहकर बाहर जाता है) ।

हर—बस, इस अस्त्रान्त्र की अग्नि पर, जिसका अवयव ही प्रतिकार  
। अर्थात्, इस रथ में युद्धारे अनिरुद्ध और कौन प्रतिकार कर सकता  
किन्तु—

अरुणपति—तो इससे अधिक क्या ?

हर—सैनारि के रथ पर अभिविक्त हुए ही आपकी युद्धनुमि में उतारना  
ग हूँ ।

अरुणपति—मातुल, यह दूसरे के अधीन है और महत्त्वपूर्ण भी नहीं है ।

हर—बस, (यह) न पराधीन है और न ही महत्त्वपूर्ण । देखो,

यदि इन (भीष्म और द्रोण) के समान कर्म करने वाले आपको यहां पुरी  
। सञ्जय के रथ पर न भगवा जायेगा तो भीष्म और द्रोण से रहित  
इ के पुत्र की सेवा कैसे रह सकेगी ॥२६॥

संघर्षार्थकः [संग्रामः प्रभवन्ति संघर्षमिवाणि । तस्मै प्रभवति संतापा-  
ः इति ट् । निश्चरेति पाठे] निश्चरस्य परिभवस्य । निश्चरः स्वात्तरिभवः  
। संतापः । संतापतेर्भावः संतापतमम् ।

भवेदिति । भवतिराष्टवर्त्तं कर्त्तुं भवेदिति भवेदित्यर्थः । [उच्यते तुल्य कर्म यस्य ।  
स इति पाठे कदा पराक्रमान्तराधः यस्य ।] अत्र भुवि धृष्टाम् ॥२६॥

कृतपरिकरस्य भयाह्वयस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थीप्रवृत्तिं ।  
 हिरवत्तम् । तदेवं मन्त्रे परिकल्पिताभिषेकोपकरणः कौरवराजो  
 वामपक्षेक्षमाणस्तिष्ठतीति ।

अभ्यत्यामा—यद्येवं स्वरत्ने मे परिभयानतदह्यमानमिदं वेतस्तत्  
 जलावगाहनाय । तदहं गत्वा तातत्रयविषयममानसं कुरुपति संताराय  
 प्रणयतमारथासनया मन्दसंतार्यं करोमि ।

कृपः—वत्स, एवमिदम् । अतस्तमेवोद्देशं गच्छावः ।

( इति परिक्रामतः )

( उतः प्रविशतः, कण्ठदुर्योधनौ )

दुर्योधनः—अङ्गुराज,

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं

दाहुभ्यां व्रजति घृतायुधप्लयाभ्याम् ।

प्राचार्यः सुतनिधनं निशम्य संख्ये

किं दास्यग्रहसमये विशस्त्र आसीत् ॥२७॥

अथवा सुतनिधनमभिपुर्णः प्रकृतिर्वृत्त्ययेति । यतः शोक  
 विमुच्य क्षात्रधर्मकार्त्तव्यं द्विजातिधर्ममुत्तमो मार्गधरिपुहः कृतः

कथं—राजन् कौरवोवर, न वदितव्यमेवम् ।

दुर्योधनः—कथं तद्दि ।

कर्म—एवं विनाशयामिप्रायो यथा अभ्यत्यामा मया  
 अभियेक्ष्य इति । तस्यावाधादुद्धत्य मे आह्वयस्य दुर्या शस्त्रवद्  
 कृतवान् ।

दुर्योधनः—(गतिरुक्ताम्) एवमिदम् ।

परिहारः दुर्योधनः । [परिपन्थीप्रवृत्तिम् । प्रणियोज्यमित्यर्थः । र्षि  
 अभिरंक्षय] वरकरणादि गामदी [येन] । संतापयत्येव स्वयंघृहणं तथा  
 बाध्यः तेन ललाटवापका सम्भवेन तथा ।

वहेत प्रोदम् ।

२७१ दुर्योधनः [दुर्योधनस्य वरणीयः । उतः प्रादुर्योधनः]

हृद निश्चय किये हुए आप जैसे का तीनों लोक भी सामना नहीं कर सकते, फिर युधिष्ठिर को सेना तो क्या ? इसलिये मैं तो ऐसा समझता हूँ कि अनिष्टक सामग्री तैयार करके कौरव-राज अब तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा है।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा है, तो अपमान के अनन्त से जसता हुआ, यह मेरा भी प्रतिशोध के जल में प्रवेश करने के लिये उत्तापना हो रहा है। इसलिये चलकर पिता के वध से दुःखित चित्त वाले कुरुभ्रातृ को स्वयं सेनापति-वश विचार करने की प्रार्थना से साम्बना देकर उसके सन्ताप को दूर करें।

दृष्ट—परन्तु, ऐसा ही होना चाहिये। इसलिये उस ही स्थान पर चलें।

(दोनों घूमते हैं)

(उत्पत्त्यात् वहां और दुर्योधन प्रवेश करते हैं)

दुर्योधन—अज्ञानराज,

तेजस्वी (पुरुष) आपुण कथी भोका वारण की हुई भुजाओं से शत्रु द्वारा गारे गये प्रिय जन के शोक को वार भिया करता है। आचार्य पुत्र की मृत्यु को सुनकर वृद्ध में शस्त्र-ग्रहण के समय शस्त्र हीन क्यों हो गये ॥२७॥

अथवा सधाने लोगों ने ठीक कहा है—‘स्वभाव नहीं छोड़ा जा सकता।’ क्योंकि शोक से आक्रान्त हृदय वाले उस (आचार्य) ने क्षात्रधर्म की कठोरता को छोड़ कर ब्राह्मण-धर्म सुलभ मृदुलता अपना ली।

कर्ण—राजन्, कौरवाधिपति, यह बात नहीं थी।

दुर्योधन—तब फिर क्यों ?

कर्ण—उत्तका आशय यह था—‘मैं पृथ्वी के राज्य पर अश्वत्थामा को अभिविस्त कर्णों।’ उसके न रहने पर ‘मुझ वृद्ध ब्राह्मण का शस्त्र धारण करना व्यर्थ है,’ यह विचार कर उसने ऐसा किया है।

दुर्योधन—(सिर हिलाते हुए) ऐसा ही है।

दाम्प्यां ताम्प्या] बाहुभ्यां वज्रतीत्यन्वयः । प्लवः कोतः । उदुर्ध्वं तु प्लवः इत्यमरः । निगम्य धृत्वा । संख्ये संघाते ॥२७॥

मुक्तं शोभनमुक्तमभिमुक्तं नीतिज्ञः । [शोकेनान्धं युक्तायुक्तविवेकासमर्थं यतो यस्य तेन । क्षत्रस्याय । क्षात्रो धर्मस्तस्य तत्सम्बन्धि बार्हस्पत्यं वदित-





कर्ण—और इसी कारण कौरवों तथा पाण्डवों के प्रति कलमात होने के कारण महापुरुष ॥ प्रवृत्त हुए राज-समूह के परस्पर नाश की अपेक्षा करते हुए सने प्रधान पुरुषों के बध की अपेक्षा की ।

दुर्योधन—यह ठीक है ।

कर्ण—और राजन्, दक्षिण से ही इसके अभिप्राय को जानने वाले द्रुपद ने । इसे राज्य में वासरधान नहीं बिठाया ।

दुर्योधन—ओह, अङ्ग राज, ठीक । (आपने) बुद्धि की दात कही है ।

कर्ण—और यह एक मेरा ही विचार नहीं है । दूसरे चतुर लोग भी इसे यथा नहीं समझते हैं ।

दुर्योधन—ऐसा ही है । (हर में) क्या सन्देह है ?

यदि ऐसा न होता तो यह महारथी अभय देवन अर्जुन द्वारा बध किये हुए सिगुराज की अन्य किस कारण अपेक्षा करता ॥२३॥

द्रुप—(देखकर) वास्तव, यह दुर्योधन दूत-पुत्र (कर्ण) के साथ दंड-वृत्त की ग में बैठा हुआ है । तो पात बने ।

( घंटा बरके )

सोनी—कौरवों के अधिपति की जय हो ।

दुर्योधन — (देखकर) धरे ! कंते ! द्रुप और अचरधामा । (आमन में कर हुए से) आचार्य, मैं प्रणाम करता हूँ । (अचरधामा को लक्ष्य करके) तर्पण,

हमारे प्रयोजन से धारे गये पिता वाले, आओ; (अपने) आत्म अङ्गों से ॥ शरीर का गाड़ आनिर्झन करो । तुम्हारी भुजाओं का यह स्पर्श दे पिता (के स्पर्श) के समान है, जो महान् शोक में भी (हमे) शान्ति ॥२४॥

हृत्पुत्रेण मारिषमुनेन कर्णेन । मृतः दाता च मारिषः ॥ इत्यमर ।  
यो ब्रह्माष्टः इत्यमरः । दिव्यदक्षामिरयन विपराभ्यां जे. इति तद् ॥  
रहीति । एह्यागच्छ । [सतोर्माई-विस्मयार्थद्वयं पाङ्गम् । निर्गन्धमर

॥ कर्णेण दाता तथा । गाड़मित्यर्थः । [परिष्कारवाचिङ्ग] तद्ग्राहेषु  
भावम् । [तत्र भुजयोः एव स्पर्शः ते पित्रुः स्पर्शः । य-रागो महति शोके वि  
विह्वलि शान्तिमाश्रयति करोतीत्यर्थः] ॥२५॥

(आनिङ्गय पार्श्वं उपवेशयति) ।

(अश्रुत्यामा बाष्पमुत्सृजति)

कर्मः—श्रीपावन, अतमत्यर्यमात्मानं शोकानले प्रशिष्य ।

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, को विशेष आवधोरस्मिन्मदनमहात्मे । तस्य

तातस्तव प्रणयवान्स पितुः सखा मे

शस्त्रे यथा तव गुरुः स तथा ममापि ।

किं तस्य देहनिधने कथयामि दुःखं

जानीहि तद् गुरुशुचा मनसा त्वमेव ॥३॥

कर्मः—यत्त, यथाह कुरुतस्त्वयंवंतत् ।

अश्रुत्यामा—राजन्, एवं पक्षपातिनि त्वयि युक्तमेव शोभारं कुरु

सिन्धु

मयि जीयति मत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ।

कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्मृहाम् ॥३॥

कर्मः—श्रीपावन किमत्र क्रियते यथा तेनैव सर्वपरित्वत्राणहेतुना ।  
गुणगुणता तादृशीमवस्थामात्मा नीतः ।

अश्रुत्यामा—अङ्गराज, किमाह मयान् किमत्र क्रियन् इति । पुं  
वशिष्ये ।

यो यः शस्त्रं विभति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां वसूनां

यो यः पात्राणां गोत्रे मिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा ।

ताव इति । स तव तातो मे पितुः सखा मित्रविषयवयः । [यथा देहविलसं  
वसोवसो देहान् निष्कलेन । यन्मम कुत्रं तद् किं कथयामि । अत्र वन्द्यं वन्द्यं  
वन्द्यवति प्रतीकते । तावध्यात् । यथाह मिश्रतायः—[विशद्वान्तराजं  
(यन्मम) अति मायध्यायवयः । इति ।] तत्त्वमेव [गुरोर्गुरुः दत्ता ।  
गुरुशुचा तव भवता] जानीहीत्यन्वयः । [यथा तव वसो गुणगोत्र-दुःखं तव  
वसो-नीतिं वसो-दुःखं ] गुणा शोभेन ॥३॥

( ३ )

( अश्वत्थामा जन्म बहाता है )

कथं—द्रोण के पुत्र, अपने को अत्यधिक शोक कथो अग्नि में डालने से डरत है।

दुर्योधन—आचार्यपुत्र, इस विपत्ति के महासागर में हृष्य दोनों में क्या देव देखो—

वह तुम्हारे प्रणयी पिता मेरे पिता के मित्र थे। शस्त्र-विद्या में वह जैते थे तुम थे, बंते ही मेरे भी। उसके शरीर का अन्त हो जाने पर (होने) दुःख को क्या बतलाऊँ ? महान् दुःख वाले (अपने) मन से तुम ही तमस लो ॥३०॥

पु—वास्तव, कुवर्तिता संज्ञा कह रहे हैं, यह ठीक ही है।

अश्वत्थामा—राजन्, (हमारे प्रति) प्रेम रखने वाले आपका इस प्रकार (१) शोक-भार हल्का करना ठीक ही है। विष्णु—

मेरे जीवित रहते मेरे पिता ने केश-ग्रहण प्रारंभ किया, तब अग्य पुत्र वाले ने वामना कंठ करेगे ॥३१॥

कं—डीपायन, इसमें क्या किया जाय, जब सब को अपमान से बचाने में उसने ॥ शस्त्र-भण्ड करके हुए अपनी ऐसी वज्रा कराई है।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, क्या कहा आपने 'इसमें क्या किया जाय।' जो शय्या, सुनिये—

शत्रुओं की सेनाओं में से अपने भुजबल के अतिर्यक्त वाला जो भी शत्रु-हर्ता है, वाञ्छाल कुल में जो भी अधिक व्यवस्था वाला या गर्व कथो। जो विपक्ष शत्रु है; जो भी उस कर्म कर लाती है और जो भी मेरे

विपक्षी। पुत्रेभ्यः इत्यत्र स्पृहेरीभितः इति अनुर्थो ॥३२॥

य इति। वाञ्छालोना वाञ्छालसर्वग्यनीना समुत्तरी सेनानाम्। मध्ये ते। स्वभुजवीर्यदेतयर्थः। पुत्रेभ्यो यस्य स्याद्भुजः यः यः तावत् अधिकवशात्तरता बुद्धिः। तत्पर्यन्ततो तावत्कर्मजादृष्टा। तावत्तदपरात् इति वाञ्छालीति तिष्ठति। [अथ एवम् अथान् पुत्रेभ्योवर्ति

गो गम्नन्कर्मगाक्षी चरनि मयि गगो यध्न यध्न प्रतीप  
क्रोधान्धग्नस्य तस्य स्वयमनि जगनामन्तस्यान्तरोद्धवः॥१॥

अनि च, धो जामदाभ्यस्तित्व कर्त्तुं.

देशः सोऽयमगतिशोणितजनैर्वैस्मिन्लुदाः पूरिता  
क्षत्रादेय नयाविध रग्भिषस्तानस्य वैद्यग्रहः ।  
नान्येवाहितशस्त्रयस्मरगुरुप्यस्त्राणि भास्वन्ति मे  
यद्रामेग कृत तदेव कुम्भे द्रोण्यायनः क्रोधनः ॥३॥

दुर्वोधनः — आचार्यपुत्र, तस्य तपाविषस्यानन्यमाधारणस्य ते को  
किमप्यसदृशम् ।

कृपः — राजन्, सुमहान्पुत्रो द्रोणपुत्रेण कोटुमन्वभूमितः समरसार ॥  
मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुद्धेतुं लोकत्रयनवि समर्थः किं पुनर्वृषिभिः  
अतोऽभिविष्यतां संतापये ।

दुर्वोधनः — सुष्ठु पुण्यस्तानमनिहितं पुष्पाभिः । किं तु प्राक्प्रतिप्राप्तो  
ऽङ्गराजस्य ।

कृपः — राजन्, यत्तद्व्यापारिमवशोकतागरे निमज्जतमेनमङ्गराज  
नैवोदेक्षितुं युक्तम् । अस्यापि तदेवारिकुलममुशासनीयम् । अतः किमस्य  
न भविष्यति ।

अश्वत्थामा — राजन् वीरवत्वर, किमस्यापि युत्वायुक्तविधारणम् ।

यः यः] प्रतीपो विपरीतकारी [स्यात् । प्रतीपमिति पाठे यध्न यध्न रणे  
प्रतीप चरनि इति योज्यम् ।] तस्य जगतामन्तकस्य विनाशकस्य अन्तको  
विनाशको वा ॥३२॥

जानदाम्यः परधुरामः ।

देश इति । [सौम्यं कुंक्षेत्रम् ।] शोणितं रक्तं [उदेव अक्षम् ।] त्रि  
१२० ॥ ३ ॥ देशः] । क्षत्रात् क्षत्रियदृष्टात्परिमचः सर्वत्र जान इति देश



गो गमनमंगारादी चरति मदि रत्नं यच्च यच्च प्रतीतं  
कोभाःघ्नन्त्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तर्यामिनोद्वेगः

मदि च, धी जगतामन्तर्यामि च रत्नं,

देशः गोऽयमगानिजोनिनजर्मयस्मिन्नुदाः पूरिता

क्षरादेव तथाविधं तन्निभयस्नातस्य वैश्वप्रहः ।

नान्येवाहितसस्यघम्मरगुरुष्वस्त्राणि भाव्यन्ति ये

यद्रामेण कृतं तदेव कुन्ते द्रोणायनः क्रोधनः ॥३॥

पुष्योदनः — भाषार्थदुष्ट, तस्य तथाविधस्यानन्वयापारणस्य ते ते  
किमप्यत्सहसम् ।

कृपः — राजन्, सुमहान्दुष्टो द्रोणपुत्रेण कोटुमध्यवर्तितः समरमार ।  
मध्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुद्धेत् लोकत्रयनरि समर्थः किं पुनर्बुद्धिः  
अतोऽभिबिष्यतां संनापस्ये ।

पुष्योदनः — सुष्ठु पुण्यमानमभिहितं पुण्याभिः । किं तु प्राक्प्रतिपक्षे  
ज्जराजस्य ।

कृपः — राजन्, असह्यशक्तिमयशोकतागरे निमज्जन्तेनमङ्गात्  
नैवोपेक्षितुं युक्तम् । अस्यापि तदेवारिकुलसमनुयातनीयम् । अतः किमप्य  
न भविष्यति ।

अश्वत्थामा — राजन् बीरवरवर, किमद्यापि युक्तायुक्तविचारयथा ।

‘यः यः’ प्रतीतो विपरीतकारी [स्यात् । प्रतीतमिति पाठे यच्च यच्च] एते  
प्रतीपं चरति इति योज्यम् ।] तस्य जगतामन्तर्यामिनोद्वेगः प्रतीतो  
विनाशको वा ॥३॥

जामदग्न्यः परशुरामः ।

देश इति । [सौर्यं कुप्योदनम् ।] शोषितं - रक्तं [तदेव जलम् । इति  
परशुरामेणेति शेषः] । क्षत्रात् क्षत्रिणपट्टशास्त्रविभक्तः गर्जन् जल इति देश

भूमि में संवरण करने पर विरुद्ध होगा, जोध से अन्धा हुआ। मैं उन राज-  
-स्वयं जगत् के सहारक (यमराज) का भी नाश करने वाला होऊँगा ॥३२॥  
और भी, हे जमदग्नि-पुत्र के शिष्य कर्ण,

यह वही देश है, जिसमें शत्रुओं के रुधिर कभी जल से तालाब भर गये थे;  
॥ का केन्द्र-ग्रहण क्षत्रिय से हो होने वाला रक्षा ही अपमान है; मेरे वे ही  
जों के शस्त्रों के भस्मक और बलवान् चमकते हुए अस्त्र हैं, जो (पहले)  
पुराण में लिखा था, कुपित डोण-पुत्र (मो आज) वही करेगा ॥३३॥

दुर्योधन—भाचार्यपुत्र, तेरे ऐसे प्रतिष्ठ असाधारण पराक्रम के अनुकूल  
क्या हो सकता है ?

कृप—राजन्, डोण-पुत्र ने युद्ध का महान् भार वहन करने का निश्चय  
1 है। इससे मैं समझता हूँ कि आप से पुरस्कृत होकर यह तीनों लोको का  
विध्वंस कर डालने में समर्थ है, फिर युधिष्ठिर की सेना तो क्या है ? इ  
इसे सेनापति-पद पर अभिविक्त कर दिया जाय।

दुर्योधन—आपने ठीक युक्तियुक्त कहा है। परन्तु यह चीज तो पहले  
राज (कर्ण) के लिये स्वीकृत कर ली है।

कृप—राजन्, अज्ञराज के कारण असाधारण अपमान से जनित शोक  
मे हूँ हुए इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। इसे भी जल ही राज  
तो दण्ड देना है। क्या इससे इसे पीडा नहीं होगी ?

अथावा—राजन् कीटप्रायपति, अथ उचित-अनुचित का विचार



प्रयत्नपरिवोषित. स्तुतिभिरद्य दोषे निशा-

मनेऽवममाण्डत्वं भुवनमद्य निःसोमम् ।

इयं परिममाप्यते रणायाम् दोःशानिना

व्याप्तु नृपकाननानिगुह्यत भारो दुःख ॥३॥

कर्मः—(विद्युत्) कर्म नृपकर्मिणं नृपकर्मप्रधानम् । नृपः कर्मिणः । शक्तिः ।

अथवाच्यम्—अङ्गराज, एवमित्यम् । कर्मः कर्मिणोऽप्यत्र शक्तिः ।  
दुःखोपहतः शोकावेगवशात् क्वीमि न पुनर्वीरजनविसेवेन ।

कर्मः—पुनः, पुनितस्याधुनाः पुनितस्य चापुनितोऽप्यत्र शक्तिः ।  
तत्पुनितं नैवविधाः प्रमाणाः ।

अथवाच्यम्—(नृपकर्म) अरे रे राधानर्भमारम्भ नृपकर्म ।  
नामाधत्मानो दुःखितस्याधुनाः प्रतिक्रियामुपरिश्रमि न तत्परेत । अथ-

निर्वीर्यं गुरुदापभापितवशात्किं मे तवेवामुधं  
संप्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा ।  
जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले  
क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्त्रेण नास्त्रेण यत् ॥३॥

प्रयत्नेत्यादि । [हे राजन्, अद्य त्वं निशां सोमे दायित्वते । वर्तमानकर्म  
नृप । कर्मभूतः । निःसोपोन्निष्ठप्रसन्नत्वाद्वादिदामन्तः सन्] । कीदृशं त्वं  
स्तुतिनिर्माणधारिहृतस्तवैरद्य प्रयत्नेत परिवोषितः प्रबोषितः तथा च  
स्तवादिनापि परिहृतमग्निभीषणशोकः समस्ता निशां व्याप्य दयन विसे-  
भावः । सोमे इति वीर्यं स्वप्ने लटि मध्यमपुरुषस्यचने साधु । निशां  
कालाध्यनोरत्यन्तसयोगे इति द्वितीया । अद्य पुनर्भुवनमेतादृशमस्तु । कीदृशं  
केशवधूम्यं पाण्डवधूम्यं सोमवधूम्यं च । दोःशानिना गृह्यलक्षानि वीर्यं  
मपि रणकथा युद्धवार्ताषु [पाठान्तरे दोःशानिना] यथा परित्नाप्यते । न  
भुवो भारोऽप्येतु दूरं यातु । कीदृशः । नृप एव काननानि वनानि संतर्ण-  
यित्व इत्यर्थः । दोषा भुवा भुवः इत्यन्तरः [अत्र शेटकं नाम कर्मकर्तृ

आज रात्रि में (ऐसे सुष से) सोओगे कि (यातः) मङ्गल-स्तुतियों से पल से जाओगे । आज संसार के सब, पाण्डवों तथा सोमर-वंशियों ॥ रहित जायेगा । आज युस भुजशास्त्री द्वारा यह युद्ध की चर्चा समाप्त कर दी गयी । आज राजाओं एपी वनों के कारण अत्यधिक भारी दृष्टी का भार हो जायेगा ॥३४॥

वर्ण - (खोर से हँसकर) यह कहना सरल है, लेकिन पूरा करना बड़ा ठन है । कौरव-सेना में इस कार्य में समर्थ बहुत हैं ।

अर्वाधामा—अङ्गराज, यह सच है । कौरव सेना में इस कार्य में बहुत से हैं । विष्णु दुःष से अभिभूत हुआ मे खोर के आवेग के कारण ही ऐसा रहा हूँ, न कि खोर पुरुषों की निन्दा करने के लिये ।

वर्ण—मूर्ख, दुःखी पुरुष को आसु बहाना और कुपित को सस्त्र लेकर मि-भूमि में उतर जाना उचित होता है, इस तरह की बकवाद नहीं ।

अर्वाधामा—(बोध से) अरे रे । राधा के गर्भ के भारभूत ! अयम सुग ! अर्वाधामा को भी कुपित हुए को आसुओं द्वारा प्रतिकार का उपदेश है, न कि शास्त्र से । देख—

वया मेरे शास्त्र मेरे समान युद्ध के शास्त्र के द्वाप से बलहीन हैं; वया में मेरे समान के कारण युद्ध-भूमि छोड़कर भागा हूँ, वया में स्तुति और बंधन करने वाले दूतों के युग में उत्पन्न हुआ हूँ ? ओ भीष दानु द्वारा दिये प्रिय का आसुओं से प्रतिकार करें, न कि अस्त्रों से ॥३५॥

। संरम्भं शीटकं वचः इति तत्त्वसत्यात् ॥३५॥

गीतनाथिसेण [वीरजननिन्दनेच्छया ।] ननु रे स्वर्गादिमन्त्रे वदम् इति । गर्भस्य गर्भे का भारभूतः । राधा नाम सुनयनी तस्या ।

मेघीर्वमिति । [गुरोः परदुरामस्य कापमाविनस्य वदन्तः] । वरतः किम । शीषजनिष्यन्ति सगोप्यास्त्रविद्याज्ञिषाश्च परदुरामस्यान् नन ।

विद्या तस्य दत्ता । ततः कर्तव्यं सजिद इति तेन ज्ञानम् । अथ विद्या वीरवती न भवतु मय वदन्नादिनि परदुरामस्य दशार्थ-इति दृष्टम् । तत्रैव वया तत्रैवर्षः । स्तुति च वदन्तीति च [विदन्तीति तेना] ।

वया । स्तुतिर्ष्वं दृष्टवतीर्तम् । [यत् तेन भुजशास्त्री अरानिःच तेन वृत्तं वरविर्षं वत्] प्रतिकरौमि प्रतीकारविषय करोमि । अत्रैव नेत्रजयेन ॥३६॥

कनः — (सक्रोधन) अरे रे याचाट वृथाशस्त्रग्रहणदुर्विधाय बडो ।

निवीर्य वा सवीर्य वा मया नोत्सृष्टमायुधम् ।

यथा पाञ्चालभीनेन पित्रा ते बाहुशालिना ॥३६॥

अवि च

सूतो वा भूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥३७॥

अभ्युपगमा — (सक्रोधम्) अरे रे रथकारकुतकतकु राणागर्भमायुधम् ।  
आयुषामभिज्ञ, तातमप्यधिक्षिपसि । अथवा

स भीरुः दूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने

वृत्त यत्तेनाजौ प्रतिदिनमिय वेत्ति धनुधा ।

परित्यक्त दास्य त्वयिमिति स सत्यव्रतधरः

पूयानूनु माक्षी न्वममि रणभीरो ॥ तु तदा ॥३८॥

कनः — (विह्वल्य) एष भोकरहम् । त्वं पुनर्विधमंकरतां विनश्यदुत्तमं  
दक्षिणगोत्रं दृष्ट्वाग्ने तदप्यो आन । अवि च रे मूढ,

यदि दास्यमुन्मिन्नतमशरपाणयो

न निधारयन्ति किमरोनुदायुधान् ।

मरणेन मोनिदन्नेऽप्युदामिनं

गुपिर सिधेय नृपचक्रमनिधौ ॥३९॥

निवीर्य कन । उन्मिन्न त्वयम् ॥३९॥

मूढ इति । मूढः मार्गवि । एते वेति एतच्छब्दस्य प्रयोगः । स ह्यप्युत्तमः

कश्चिद्वापाराः प्रमुखाः । वा वा हत्यपि वाः ॥३९॥

[एष च भीरुः स वचसा । कर्मण्यम् ।]

भीरुः इति । विदुषः इति च । मूढो मार्गो वनः इति च ।

। इति च । इति च । इति च । इति च । इति च ।

कर्ण—(शोध से) अरे रे दय्याही, स्वयं ही शस्त्र धारण करने के समानो, ब्राह्मण के लड़के,

चाहे बलहीन हो, या बलवान् हो, मैंने पान्थात में अरे हुए तेरे भुज शालीना के समान शस्त्र-व्याप नहीं किया ॥३६॥

और भी,

मैं, चाहे सारथि होऊँ, चाहे सारथि-पुत्र होऊँ या चाहे अश्व कोई होऊँ ।  
तो कुल में जन्म तो माय्य के अधीन है, मेरे अधीन तो पुरुषकार है ॥३७॥

अरवायामा—(शोध से) अरे रे ! रथकार के कुल के कलङ्क, राधा के  
के भारमूल, अरे शस्त्रों के प्रयोग से अपरिचित, तू मेरे पिता पर भी  
अप कर रहा है । मयया

वह डरपोक या या घूर था, लेकिन तीनों सौको में प्रतिष्ठ भुजबल वाला  
; जो उसने प्रतिदिन युद्ध में किया है, उसे यह पृथ्वी जानती है; उसने  
त्र क्यों छोड़ा, इसमें वह साम्यकारी प्रथा का पुत्र साक्षी है; लेकिन, हे युद्ध  
रने वाले, तू उस समय कहाँ था ॥३८॥

कर्ण—(आर से हँसकर) हाँ, मैं ऐसा ही डरपोक हूँ । लेकिन तू एकमात्र  
स्व में आनन्द लेने वाले अपने पिता को याद करके क्या कर डालेगा,  
। मुझे बड़ा सम्बेह है । और भी, अरे मूर्ख,

यदि शस्त्र छोड़ भी दिया था, तो क्या शस्त्र से रहित (खाली) हाथ वाले  
शस्त्र उठाये शत्रुओं को रोकते नहीं हैं, जो वह राज-समूह के समीप में  
गल तक स्त्री के समान मौलि-दलन के प्रति उदास बैठ रहा ॥३९॥

तत् तत्र स [सत्यमेव वत सत्यव्रत तस्य धर ऽपामनु] बुधिविज  
सी ॥३८॥

यदीति [यस्त्रपाणयो न भवन्ति इति] अशस्त्रवाण्यस्त्यत्तास्था । उदापुपातु-  
तायात् । कि न निवारयन्ति । कि तु निवारयन्त्येव । अन्येन होलेन । दलने  
उने । उदासितमुदासीनीभूतम् । श्रियेवेति यथा स्थियोदास्यने इत्यर्थं । चक्र  
नरवाङ्मयोः इति विश्वः ॥३९॥

अश्वत्थामा - (मञ्जोर्ष मञ्जो ५) कुरात्पन् रात्रिचक्र, प्रगल्भं  
मार्तद्वयपाणि,

कगमदि न निगिद्यो दुःतिना भीरुणा वा  
द्रुपदननयपाणिस्तेन पित्रा ममाद्य ।

तव भुजयत्नदर्पाध्मायमानस्य वाम.

शिरसि चरण एव न्यम्यते वार्यनम् ॥४०॥

(इति तथा कर्तुंमुक्तिवृत्ति) ।

द्रुपदुर्वोचनी - द्रुपदुत्र, मर्षय । (इति निवारयतः) ।

( अश्वत्थामा चरणग्रहार नाटयति )

कर्णः—(उन्नोद्यमुत्थाप गद्गमादृष्य) अरे कुरात्पन्, वाचाल बहु  
स्मभाष,

जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विममुद्धृतम् ।

अनेन खूनं सङ्गेन पतित द्रक्ष्यसि क्षितौ ॥४१॥

अश्वत्थामा - अरे मूढ, कि नाम जात्या काममवध्योऽसि । इयं ता वा  
क्ता । (इति यज्ञोपवीतं धितति । पुनश्च सन्नोद्यम्) ।

अद्य मिध्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया ।

शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौली वा रचयाञ्जलिम् ॥४२॥

कथमपीति । तव शिरस्येव वामचरणो वामपादो मया न्यस्यते इत्यन्वयः ।  
योर्वतं तस्य दर्पस्तेन ।] आत्मायमानस्याध्मातस्य [न दक्षिण. पाणिः निद्रि  
पादः दीयते] ॥४०॥

वाचाल बहुभाषक । महाबन्धो अश्वत्थामान् । [वाह्याणाधम] महाबन्धु-  
निर्देश्येऽपि निगद्यते इत्यमरः ।

। [अकामानुमती कामम् इत्यमरः । जात्या ब्राह्मणस्याव्यक्त्वात् ।

। एव हि महाबन्धुत्वं

अश्वत्थामा—(क्रोध से काँपते हुए) दुष्ट, राजा के मुँह लगे, उच्छृङ्खल, तारवि, अटपटांग बचने वाले,

आज मेरे पिता ने, दुष्टी ने या उरपोक ने, चाहे किसी भी कारण दुष्ट के पुत्र के हाथ को नहीं रोना । भुजाओं के बल के अविमान से फूले हुए तेरे गिर पर यह मेरा बाया घरम रक्खा जा रहा है, इसे रोक ले ॥४०॥

( यह बहकर बैसा करने के लिए उठता है )

दुष्ट और दुर्षोषम—आचार्यपुत्र, समा करो । (दोनों रोक्ते हैं) ।

( अश्वत्थामा बाद से प्रहार का नाट्य करता है )

कर्ण—(क्रोध से उठकर और तलवार खींचकर) अरे दुष्ट, बकबादी, नीच हान, अपनी दोषी मारने वाले,

यद्यपि तू (बाह्य) जाति के कारण बच्य नहीं है लेकिन तू उठे हुए (मने) इस वर को (मेरी) इस तलवार से कटने पर दुष्म्यो पर पड़ा हुआ हैगा ॥४१॥

अश्वत्थामा—पूर्व, क्या कहा— 'मैं जाति के कारण बच्य हूँ । मे, यह जानि छोड़ दी ।' (यह बहकर यमोपवीत बाटता है और फिर क्रोध से),

आज मैं (तुझे मारकर) अर्जुन को असत्य-सम्य किये देता हूँ । या तो आज उठा ले या फिर (असत्य) छोड़कर हाथ जोड़कर सिर पर रख ॥४२॥

श्री नाम्नास्ति देहिकः ॥] अरण्यं सूर्यं सतिशती । पतिव ह्यमनीयन्वय । अर्जुनस्य वरणीयस्य इत्यमरः ॥४३॥

अर्जुनः । [अभूयितारं देष्टारं प्रवक्षार विकल्पनम् । भीमसेन नियोगाने कृत्यं कर्त्तव्यम् ॥ अर्जुनः प्रतिजानीते भीमस्य प्रियवाम्भया । कर्त्तुं कर्त्तव्यम् । अर्जुनः रते हन्तास्मि पतिभिः ॥ इति समापर्वणि अर्जुनेन कर्त्तव्यः प्रतिज्ञातः । अर्जुनोपासह अथ समाप्तो कुरीटो] मिथ्याप्रतिज्ञो [मिथ्या असत्या प्रतिज्ञा कर्त्तुं अथ तव वप्रासेन च सदकरणादिति भावः । [स्ववत्सा यस्मादिति ॥४४॥

( उवाच ) नन्दमाहुराग्योन्वयं प्रत्युद्योतनी । कृतुर्गोपनी तन्म  
 कुर्वीतः—नन्दे, वाचार्त्तुम्, तन्मत्तहृत्तेनानम् ।

इतः—नन्दे, कृतुम्, तन्मत्तहृत्तेनानम् ।

अरक्षणाया वागुत्त, वागुत्त, किं निवारयति । अरक्षति नान्दित्येव  
 गुणागमो वदन्मत्तहृत्तेनानम् ।

कर्म—रात्रम्, न कर्त्तव्यं निवारयितव्यम् ।

उपेक्षितानां मन्दानां धीरमत्त्वं रयजया ।

अत्रासितानां क्रोधान्धेर्भवत्येषा विकृत्यना ॥४३॥

अरक्षणाया—रात्रम्, कृतुम् कृतुर्गोपनी । अत्रासितानां मन्दानां धीरमत्त्वं  
 गुणधर्मगुणावयवतावत्तम् । अरक्षत्, रात्रम्, स्मिहेन कार्येन वा अरक्ष्येन  
 प्रकारिणं कुरात्मानं मत्तः अरक्षितगुणिवृत्ति तदुभयपक्षि कुर्येव । अरक्ष—

पापप्रियस्तव कथं गुणिनः सहायः

सूतान्वयः दशधरान्वयसंभवस्य ।

हन्ता किरीटिनमहं नृप मुञ्च कुर्या

क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम् ॥४४॥

( इति प्रहर्षमिच्छति )

कर्म—( लङ्गमुद्यम्य ) अरे वाचाट वाह्यनाथम्, अयं न भवति । तन्म  
 कृतुम् कृतुम् । न कर्त्तव्यं निवारयितव्यम् । ( हन्तुमिच्छति ) ।

( कुर्वीतकृपो निवारयतः )

[ तातस्य निन्दायां प्रगल्भः ] ।

उपेक्षितानामिति । अयजया ( प्रत्यपत्त्यं सुतो नास्माकं कापि क्षतिर्लभ्य  
 सया । ) धीरमत्त्वं सुमर्त्येक्षितानामित्यन्वयः । [ क्रोधान्धेः क्रोधमूर्छितैर्यो  
 तानामत्रासितानां ] मन्दानामेषा विकृत्यना भवति । अतोऽत्र मया नोपेक्षा इत्येव  
 भावः । अत्रासितानां वेदयासिनाम् ॥४३॥

निन्दीषो यन्नष्टं [ तेन सुतम् सुप्रापम् । अयजानं विनाशम् । ] अयजानं  
 मत्तकाशात् ।

[ दोनों तलवार खींचकर एक दूसरे पर प्रहार करने को उद्यत होते हैं ।

कृप और दुर्योधन रोकते हैं )

दुर्योधन—मित्र, आचार्यपुत्र, शास्त्र-ग्रहण रहने दीजिये ।

कृप—पुत्र, सुतपुत्र, शास्त्र-ग्रहण रहने दीजिये ।

प्रभासमाना—मातुल, मातुल, आप क्यों रोकते हैं ? पिता की निन्दा करने ५ यह अपमान मूल भी धृष्टद्युम्न का पक्षपाती ही है ।

कर्ण—राजन्, मुझे न रोकिये ।

विवासी हृष्य वाले वृक्षों द्वारा तिरस्कार-भाव से उपेक्षा किये गये ही कोष से अभिभूत ॥ वृक्षों द्वारा अपमानित न किये जाने पर ऐसी ही लाथा (शौंग) हुआ करता है ॥४३॥

प्रभासमाना—राजन्, छोड़ दीजिये, इसे छोड़ दीजिये । यह मेरी भुजाओं में कुचले जाने से सुलभ प्राण-नाश प्राप्त करते । और राजन्, स्नेह के अपवा प्रयोजन के कारण जो आप पिता के निम्नक इस वृक्ष की मुमसे रना चाहते हैं, यह दोनों ही व्यर्थ हैं ।

श्री और बाण वंश में उत्पन्न हुए आपका पाप से प्रेम करने वाला और कुल में उत्पन्न यह कैसे सहायक हो सकता है ? अर्जुन को मैं मार । हे राजा, छोड़ दो । कोष के कारण मैं आज संसार को कर्ण और पुन (अर्जुन) ॥ रहित कर दूँगा ॥४४॥

( यह कहकर प्रहार करना चाहता है )

—(तलवार चठाता है) अरे बकवादी, मोक्ष ब्राह्मण, (अब) यह तु ॥ राजन्, छोड़ो, छोड़ो । मुझे न रोक्यो । (मारना चाहता है) ।

( दुर्योधन और कृप रोकते हैं )

प्रिय इति । अयं पापमृत्यु कर्म सखेत्यन्वयः । कीदृशः । प्रियः प्रिय-  
पैः । आन्वयो वंशः । अहं किरीटिनं हन्ता हनिष्यामि । ततो हे वृष मां  
महं लोकं कर्णरहितमर्जुनरहितं च कुर्या करिष्ये ॥४५॥



दुर्योधनः—कर्ण, गुरुपुत्र, कोऽयमद्य युवयोर्व्यामोहः ।

कृपः—यत्स, अन्यदेव प्रस्तुतमन्यप्रावेग इति कोऽयं ध्यामोहः । स्वस्व  
चेदमस्मिन्काले राजकुलस्यास्य युष्मत् एव भवतीति वामः पन्थाः ।

अश्वत्थामा—मातुल, न तन्मतेऽस्य बहुप्रतापिनो रथकारुतस्त  
वपं. शातयितुम् ।

कृपः—वत्स, अकालः त्वसु स्ववसप्रधानविरोपस्य ।

अश्वत्थामा—मातुल, यद्येषु,

अयं पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरैः

परित्यक्तं तावत्प्रियमपि मयास्त्रं रणमुखे ।

बलानां नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये

समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु समरे ॥४५॥

(इति सहस्रमुत्सृजति) ।

कर्णः—(विहस्य) कुलवमाणतमेवैतद्ब्रूवाहृणां यदस्त्रपरिचागो नाम ।

अश्वत्थामा—मनु रे, अपरित्यक्तमपि भवाहृसीरायुधं विरपतितस्त  
निष्कलतवान् ।

कर्णः—अरे मूढ

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ।

यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्त्वेन सेत्स्यति ॥४६॥

व्यामोहो मतिविधमः । कर्तव्याकर्तव्यनिवेदयून्यनेत्यर्थः । अथर् इति  
परिधरप्रतिपत्तयम् । अन्यत्र स्वार्थविनाशहेतौ दृष्टे आधेनः साधहा प्रुति ।  
वामः पन्थाः अनीतिमार्गप्रवृत्तयम् । अयमोक्तयत्तारित्येत्थर्थः । रथकारः तारिचि ।  
रथार्थिर्न मनुजर्तुम् । [स्ववसप्रधानः मेगपतिः कर्णः । तस्य सेनापतिने  
कृतपातः] ।

अयमिति । उपेयाप्रभेदेन (प्रियं यथा प्रियमन्तरागव्य वत्तम् । अस्य प्रमा  
विदन्वार्थः बहु इति आनामित्यर्थः । मलयपुम् इति वाटे अयम् कर्तुम् ।) ॥४५॥  
यत्तानुच इति । यत्तानुचैव यत्त विदुर्मयत्तयम् । बहु रथोक्ते वामः पन्थाः  
। कर्णः दुःसम्भवेन कृत्स्नगरमदी यत्ता इति चम्पनः । [अयत्तानुचैव]

दुर्योधन—कर्ण, आचार्यपुत्र, तुम दोनों को आज यह क्या पागलपन में (जम्मार) हो गया है।

कृप—पुत्र, प्रस्तुत कुछ अन्य था, और यह आवेष्ट किसी अन्य पर है। यह कंसा मति-विध्रम है। और ऐसे समय पर इस राजवंश की अपनी शक्ति का क्षय तुम से हो रहा है, यह कंसा उस्ता मार्ग है।

अश्वत्थामा—मातुल, तो इस कटु प्रताप करने वाले सारथि-कुल के वसन्त के अतिमान को शिथिल करने का अवसर नहीं मिलेगा।

कृप—वस्तु, अब अपनी सेना के प्रधान का विरोध करने का अवसर नहीं है।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा है तो—

जब तक यह पापी (कर्ण) शत्रु के बाणों से मृत्यु को प्राप्त न हो जायेगा, तब तक मैंने कुछ-भूमि में श्रिय होते हुए भी शस्त्र का परित्याग कर दिया। इसके सेनापति हो जाने पर कुछ हुए भीय और अर्जुन से भय उत्पन्न होने पर राजा अपने श्रिय मित्र के मल को जान लेगा ॥४५॥

( यह कहकर तलवार छोड़ देता है )

कर्ण—(खोर से हँसकर) शस्त्र त्याग तो आप जैसों के निन्दे कुल की परम्परा से प्राप्त है।

अश्वत्थामा—अरे, आप जैसों द्वारा न छोड़ने पर भी निष्फल होने के कारण शस्त्र छोड़ा हुआ ही है।

कर्ण—अरे मूर्ख,

जब तक मैंने आपुय धारण किया हुआ है, तब तक अन्य आपुधी ॥ क्या (प्रयोजन) ? अथवा, जो (कार्य) मेरे शस्त्र से सिद्ध नहीं हुआ, वह और किस से सिद्ध होगा ॥४६॥

त्यादिना भूतामुद्य... इत्यन्तेनान्योन्यं कर्णस्वित्वाग्नीः सरम्भवचसा सेनाभेद-  
परिणा पाण्डवविजयप्राप्त्याज्ञान्वितं तौटकमिति दनारूपकम् । संरम्भं तौटक  
वदति तल्लक्षणम् ॥४६॥

कर्णमेव महापातकमस्य विद्यते कर्णशेन वा महापातकी । सोब्रलो  
विभेदः (लकुनिः) ।

( वेदोक्ते )

आ दुरात्मन्, डीरसीदेतामृगमर्जनपद्विभक्तम्, धार्मिकान्ता, वि  
पुत्राणां मर्गमनुचयान्ताः । वि । सुप्रसन्नो, कोरावो मर्ग्ये । इति ।  
मो रापेदुप्योवनयोवनप्रभुपय कागर्जुनिभक्तान्तामृगो मर्ग्ये, पु  
मर्ग्यः ।

सृष्टा येन निरोरुहे नृपशुना वाञ्छानिराजामृग  
येनास्याः परिधानमप्यपहृत रीमां गुरुणा पुरः ।  
यस्योर.स्थलनोगितामवमहं पातुं प्रतिज्ञातवा-  
न्सौज्यं मदभुजपञ्जरे निपमितः संरक्षयतां कौरवः ॥१४॥

( गर्वं आकर्णयन्ति )

अश्वत्थामा—(सोप्रागम्) अश्वत्थाम, सेनापते, आश्वत्थाम्यस्य, सेने  
हासितम्, भुजबलपरिरक्षितमकलमोक । (धुनापुष्टः इति पठित्वा) इति शब्दो  
तरमेव संवृत्तम् । रक्षितं सौमित्रं भीमाद् दुःशासनम् ।

कर्णः—आः का हासितुं कोरवस्य मयि कीरति दुःशासनस्य आश्वत्थ  
कमितुम् । पुत्रराज, न मेतव्यं न मेतव्यम् । अयमहमग्नोऽस्मि । (ति  
निष्क्रान्तः) ।

अश्वत्थामा—राजन्कोरवनाथ, अभीष्टमर्थं संप्रति कौरवस्यमातोऽप्य  
भीमार्जुनो रापेदेनैवंविधेनान्येन वा न शक्येते निवारयितुम् । अतः मरते  
ध्यातुः प्रतीकारपरो भव ।

दुर्योधनः—आः शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्याम्पस्य वा यदि कीरति  
शस्त्रपाणो यत्सस्य हायामप्याकमितुम् । यत्स, न मेतव्यं न मेतव्यम् ।  
कोऽत्र मोः । रथमुपनय । (इति निष्क्रान्तः) ।

सृष्टेति । आश्वतो मर्ग्यम् । भुजपञ्जरे बाहुमध्यम् । गर्वं कौरवा इति ।  
कच्छादिपाठान्मनुष्यतत्त्वयोरिति भुजपञ्चकः । अत्रामनुष्यत्वेन विवक्षितम् ।  
तस्येदम् इत्यम् । जनपदविवक्षायां वाण् ॥१४॥  
समनाकुस्मितम् इत्यमरः । बाहुं निविचतम् । मातोऽप्य

( नेपथ्य में )

ओ दुष्ट, दोपदी के केज और वस्त्र खींचने का महापातक करने वाले, प्रथम पतराह ॥ पुत्र, आज बहुत समय बाद मेरे सामने आया है। ऐ नीच मु, अब कहाँ जायेगा ? और भी, हे राधापुत्र (कर्ण), दुर्योधन और सीतल (शत्रुनि) आदि मानी, पनुर्धारी, पाण्डवों के शत्रुओं, आप सब सीम सुने—

जिस नर-वधु ने पाञ्चाल के राजा की पुत्री के केश छुए थे; जिसने राजाओं और बड़े जनों के सामने इसके वस्त्रों को खींचा था; मैंने जिसके लक्ष्मण के दधिर कभी आसन्न के पान की प्रतिज्ञा की थी, मेरी भुजाओं के रंगरे में पड़े हुए उस इस कौरव की रक्षा करो ॥४५॥

( सब सुनते हैं )

अम्बरधामा—(व्यङ्ग्य के साथ) अङ्गराज, सेनापति, परशुराम ॥ शिष्य, जेन का उपहास करने वाले, अपने बाहुबल से सफल संसार की रक्षा करने वाले, दुर्गापुत्रः इत्यादि ३४६ श्लोक का पाठ करके) यह तो बहुत जरूरी ही हो गया। अब भीम से इस दुःशासन की रक्षा करो।

कर्ण—आह ! मेरे जीवित रहते भीम की क्या शक्ति है कि वह दुःशासन को छेदा भी छू सके। युधामन्यु, डरो नहीं, डरो नहीं। मैं यह भाषा। (यह दूर निरगत जाता है)।

अम्बरधामा—राजन, कीरवनाथ, अब भीम और द्रोण नि हीन कौरव-का को मरते हुए भीम और अर्जुन की कर्ण अबचा ऐसा ही कोई अन्य नहीं कि तकना है। इसलिये आप स्वयं ही भाई के (जय के) निवारण का उपाय करें।

दुर्योधन—आह ! हाथ में शस्त्र लिये मेरे जीवित रहने भीम का किसी का को क्या शक्ति है कि बात को छेदा का भी अतिव्यय कर सके। धाम, रो नहीं, डरो नहीं। अरे, यहाँ कौन है ? रथ लाओ। (बहु बहुर निरगत गा है)।

अध्वग्यी । लभयेद्दिव । अहं विष्टे सोऽहं पारसामि । अहं निरापन्नमप्यम् ।

## चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति प्रहारपूर्च्छितं रघुस्यं दुर्षोधनमहार्द्रं दृष्ट्वा)

(सूतः ससंभ्रमं परिज्वालति)

(नेपथ्ये)

भो भोः बाहुबलावलेपप्रवर्तितमहासमरदोहदाः, कीरवपशनातरोहदाः  
द्विषिणसंघया नरपतयः, संस्तभ्यन्तां संस्तभ्यन्तां निहतकुशासनपीठार्क-  
स्नपितबीमरसदेधवुकोदरवसनमयपरिस्वन्नप्रहरणानि रणाग्रप्रवर्ति-

सूतः—(विलोक्य) कथमेव धञ्जलचपरत्नामरपुम्बितकनककमण्डपु-  
ष्यदृक्त्रयस्तीव्रचितेन हतगजबाजिनरकलेवरसहस्रसंमर्द्धविषमोद्यमान-  
किङ्करीमातमातिना रघेन शरवर्षस्तन्मितपरवसपराक्रमप्रसरः प्र-  
मादवातयन्कृपः किरीटिनामिपुक्तमङ्गराममनुसरति । हत जातमार-  
घतम्बनम् ।

(नेपथ्ये कसकलागन्तरम्)

भो भोः महामहानमयस्वनितकामुककृपागतोमरशास्त्रपः कीर-  
वाणवपशपानिनश्च योधाः, न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयमहं निह-

अचनेपः स्मृतो गर्व इति विप्रः । बोहरो दोहर इति प्रसिद्धः ।  
महागमरमेव बोहरो येनाम् ।] प्राणा एव द्विषामिति कथम् । [श-  
राण्डविण्मणयो वीः ।] संस्तभ्यन्तां स्विटीक्रियन्ताम् । [वीरावधेनेव ।  
स्वनिनः बन् एव बीमरगो वेरो यस्य तस्य वृकोदराय रत्नाय  
परिस्वन्नानि प्रहरणानि येनां तानि ।] बीमरगो भवानकः । प्रहर-  
कर्म चक्षम् । पुम्बितः संवदः । शिखरमयम् । संवदन्ती वनाया ।  
गरीरम् । [कनेवणां सहायानि तेनां संमर्द्धः निविशवत्पानं तंष्टो

कः कृपानोर्जवपानव्यः सोमन्नेन कृतः कसकलो वन ।

दुर्षोष्टिचामपूहस्तस्य माता विदनेष्य तेन वाने एव  
हन् हन् । कृपाकः सङ्गः ।] तीमरोन्वमेदः । [निहतः व ]

## चतुर्थ अङ्क

(नलायान् प्रहार से भूमिद्धन और रथ में स्थित दुर्योधन का आवाज आता हुआ सारथि प्रवेश करता है)

( सारथि ध्वराहट के साथ धूमता है )

( नेपथ्य में )

[ज-वन के द्वार से महासमर की अभिलाषा करने वाले, कीर्ति के कारण प्राणरूपी धन-राशि को दाँव पर लगाने वाले रथ-सेव से भागती हुई सेनाओं को, जिनके हाथ मारे गये से बचे दधिर में स्नान करने से बीभत्स हो जाने वाले सीमंकारण गिर रहे हैं, रोको, रोको ।

५१—(देखकर) कंते ! रथेत चञ्चल धामर से भुम्बित स्वर्ण-नगर पर लगी लज्जा से पहचाने गये और मरे हुए सहस्रों हाथियों । मनुष्यों के शरीरों की धोड़ से ऊँची नीची धूमि पर प्रतिघात । श्वनि करने वाले छोटे २ धुंघरुओं के समूह की मात्ता बाँट, बाणों की वर्षा से शत्रु-सेना के पराक्रम की गति को रोक । भागती हुई सेना को सामन्तना देखे हुए कृपाचार्य अर्जुन द्वारा गये कर्म की ओर आ रहे हैं । आहा ! (अब) हमारी सेनाओं का ।

( नेपथ्य में कलकल श्वनि के पश्चात् )

हैं देखकर भय से गिरे हुए धनुष, तलवार तोमर और शक्ति-सेना के बीरों और पाण्डवों के बलपाती घोड़ाओं, हरो नहीं, ये दुर्योधन के बीच बसःस्थल का दधिर रूपी आसक्त बोने विरामुरक्षित नश्य बल्लस्तत्रं रक्तं तदेवा स बस्तस्य पानेन यो ] पीवरं पाण्डवम् । [रथतः वेगस्तेन यन्तुं चीन यस्य स तौ शिनिस्त्राण्डीत्ये इति शिनिः । स्तोत्रमवशिष्टः ।



मात, देवपूर्ण गति वाला, छोड़ी ही देव यन्त्रों प्रविष्टा रही मन्त्रोन्मथ वाला, शीतलों के राजा का जूए में लीना हुआ वात, पृथ्वी के पुरों में मसलता, मैं धीमेसे आर सब लोगों को साक्षी करता हूँ । सुनिये—

मान को ही घर समझने वाले, धनुर्विज्ञानी राजा दुर्वाधन के गात्रने, कुहनों के मित्रों की उपस्थिति में और कर्ण तथा शरप के देखते देखते, आज मैंने पाण्डवों की वधू के केश एवं वस्त्रों को खींचने वाले, उस क्षीयित ही (कुशासन) के पंने मन्त्रों से विद्योर्ध्व यन्त्र-स्थल से दत्त रश्मि का वात लिया है ॥१॥

सूत—(सुनकर भय से) अरे ! शीतल रामकृतारो रही महान् वन के निचे उत्पन्न-वायु कुछ भीम (मरु का पुत्र) स्वीप ही है और यहाँ अभी महाराज की बेतना नहीं लीटी है । अच्छा, रथ को बहुत दूर ले जाना हूँ । कभी वह कुछ कुशासन के समान इनके साथ ही सुकृत्य करे । (और नेत्री से पूनकर और देवकर) अरे ! यहाँ (साधने) यह जताशय के कमलों को छूने से मुगन्धित और शीतल वायु द्वारा हिताने जाते हुए चने पल्लवों वाला घट-वृक्ष है । यह पुत्र-कर्म से आगत धीर पुरुष के योग्य विभाम-स्थल है । इस जताशय के वायु से, जो बिना माने (प्राप्त) पंने के समान है, जो लाल यन्त्र की राशि के समान शीतल है, जो बिना प्रयास के ही मुगन्धित है और जो वर्तमान दशा से उचित है, यहाँ स्थित महाराज भक्त-विहीन हो जायेंगे । रही हुई ध्वजा वाला यह रथ बाधा के बिना ही छाया में चला जायेगा । (प्रवेश का नाट्य करके) अरे ! यहाँ कोई है ? (पारो और देवकर) यहाँ कोई सेवक क्यों नहीं है ? अवश्य ही, उस प्रकार (रश्मि में लिपटे) भीम को और इस प्रकार (मूर्छित) महाराज को देखकर भय ॥ कारण पड़ाव में ही

पट्टपाठः इत्यपरः । अयाचिततात्कृन्त स्वयमुपस्थितव्यजनम् । हरिचन्दनं चन्दनमेदः । [तस्य चष्टावच्छीतलेन । दशा मूर्च्छावस्था तस्याः परिणामः परिवर्तनः । निवर्तनमिति यावत् । तस्य योग्येन । परिणामो निपाकः । [अनिवारितः । अनिवारः ।] प्रवेक्ष्यति प्रवेशं करिष्यति । ह्यवमित्याद्यानीयानामिति शेषः ।



शिबिरसंनिवेशमेव प्रविष्टः । कष्टं भोः कष्टम् ।

दत्त्वा द्रोणेन पार्थादिभयमपि न संरक्षितः सिन्धुराजः  
क्रूरं दुःशासनेऽस्मिन्हरिण इव कृतं भीमसेनेन कर्म ।  
दुःसाध्यामप्यरीणां लघुमिव समरे पूरयित्वा प्रतिज्ञां  
नाहं मन्ये सकामं कुरुकुलविमुखं दैवमेतावतापि ॥२॥

(राजानवमलोक्य) कथमद्यापि न चेतनां समते महाराजः । भोः न  
(निःस्वस्य) ।

मदकलितकरेणुभज्यमाने विपिन इव प्रकटैकशालशेपे ।  
हतसकलकुमारके कुलेऽस्मिस्त्वमपि विधेरवलोकितः पट्टाक्ष  
ननु भो हतविधे, मरतकुलविपुल ।

अक्षतस्य गदापाणोरनारूढस्य संशयम् ।

एवापि भीमसेनस्य प्रतिज्ञा पूर्यते त्वया ॥४॥

दुर्योधनः—(शनैरुपलब्धसज्जः) आः शक्तिरस्ति कुरात्मनो बुकोरहणस्य  
यि जीवति दुर्योधने प्रतिज्ञा पूरयितुम् । वरस दुःशासन, न भेदम्यं न श्रेष्ठमप्य  
यमहभागतोऽस्मि । ननु सूत, प्रापय रथं तमेवोद्देशं यत्र वरसो मे दुःशासनः ।  
सूनः— आपुष्पम् अजमाः संप्रति बाहास्ते रथमुत्तुङ्गम् । (आर्षा  
नोरथं च ।

वत्येति । पार्थादिभ्य दत्त्वापि द्रोणेन सिन्धुराजो न रक्षित इत्यन्वयः ।  
भीमसेनेन प्रतिज्ञा पूरयित्वा कर्म कृतमित्यन्वयः । समरे मरीचो पुःतावो दुः  
ध्याम् [अति प्रतिज्ञा लघुमिव पूरयित्वा कुरुकुलविमुखं दैव एतावतापि  
नाहं मन्ये इत्यन्वयः ।] दुर्योधनः कर्मानिशीघ्रं कृतमित्यर्थः । लघुम् ए  
ते प्रतिज्ञास्तिष्ठणम् । वस्तुनो दुर्योधनि लक्ष्मीमित्यर्थः । एतावतापि दै  
वमिदमुक्तं नाहं मन्ये । अति स्वयमपि करिष्यमीति भावः । कुरुकुलविमु  
क्तं नाहं कुरुकुलनाते मया न पुण्यमनोरथं दैवं नाहं मन्ये इत्यर्थः ॥२॥  
वत्येति । भोऽयं मया नरा कनिष्ठः मरुतः करेणुदंष्ट्री (मेव मया वारः) ।

ले गये हैं। ओह ! बड़े दुःख की बात है।

अर्जुन से अमय देकर द्रोण सिन्धु-राज (जयद्रथ) की रक्षा न कर सका; भीमसेन ने इस दुःशासन के प्रति हरिण के समान कर कर्म किया। मैं समझता हूँ कि कुल-कुल का प्रतिफल दुर्दैव युद्ध में शत्रुओं को असाध्य प्रतिज्ञा को भी पूरा के समान पूरी करा कर अभी इतने से समुष्ट नहीं हुआ है ॥२॥

(राजा को देखकर) कैसे अब भी महाराज होश में नहीं आ रहे हैं ? ओह ! दुःख है। (गहवा सांस लेकर)

जस वन के समान, जो मरबसुक्त हाथी से तोड़ा जा रहा है और जिसमें केवल एक बचा हुआ साल का पेड़ ही दीख पड़ रहा है, इस कुल में, जिसके सब कुमार मार दिये गये हैं, तुम्हें भी वन की तिरछी दृष्टि में देख लिया है ॥३॥

हे भरत कुल से पराङ्मुख, अधम जाग्य, बिना घायल हुए और बिना संशय में पड़े हुए ही, मराघाती भीमसेन की प्रतिज्ञा भी तुम्हारे द्वारा पूरी की जा रही है ॥४॥

दुर्योधन—(धीरे धीरे केना प्राप्त करके) आह ! मुझ दुर्योधन के जीवित रहते कुछ भीमसेन में क्या शक्ति है ? बस दुःशासन, न डरो, न डरो। मैं हूँ या पहुँचा। साराधि, मेरे रथ को उस ही जगह से चलो, जहाँ मेरा भरत आसक्त है।

पूत—आपुष्पन्, अब छोड़ें आपके रथ का बहान करने में अतपर्यं हैं। एक ओर को होकर) और मनोरथ का भी।

शब्दः स्फुटः एकः शालः दाड्कुलसर्व्वधामार्चं वा दोषोऽवशेषो यत्र तस्मिन् । शब्दः दाड्कुलसर्मतः इति विरयः । अनोपहः कुटः शालः इत्यमरः । हे यस्तस्मै ॥३॥

अक्षतस्येति । [सनायं दुर्योधनस्य नदायुद्धवपुष्वात्मदाबिदात्मनः वराग्रयः अस्ति दाड्कुलम्] अनाकुरय अगतस्य ॥४॥

स्वैरं मन्द वषा स्यादेवं । बाहोऽवः । बाबिबाहार्नगन्धर्व इत्याद्यमरः ।

दुर्धोषनः—(रथाश्चतीये मगधं गारून च) कुत्र स्थानमनमानातिष्ठति

सूतः—(मनेनध्व मरुत्तम च) मगधं मरुत्तममनुमानं ।

दुर्धोषनः—यिद् भूत कि रथेन । नेवामरातिदिमर्षतंमृत्तवारी दुर्धोष  
परदृष्टम् । तद्वदाध्यात्रमहायः समरभुक्मपततामि ।

सूत -आपुष्पम् एवमेवम् । कः तदेहः ?

दुर्धोषनः—दक्षेयं विमेवं मायमे । परय—

वालस्य मे प्रकृतिदुर्ललितस्य पापः

पाप व्यवस्यति ममक्षमुदायुधोऽनी ।

अस्मिन्निवारयसि कि व्यवसायिनं मां

क्रोधो न नाम करुणा न च तेऽस्ति लज्जा ॥५॥

सूतः—(सकलं पादयोनिपत्य) एतद्विज्ञापयामि । आपुष्पम् संदुर्लभं  
विशुक्तेन भवेत्तद्विनिदानो दुरात्मना वृक्षोदरहृत्केन । अत एव शरीनि ।

दुर्धोषनः—(सहसा भूमी पतन्) हा वत्स दुःशासन, हा मराणाशिवि  
पाण्डव, हा शिवर्मकरस, हा मरुदुर्लभितिन, हा अराविशुक्तमगधमृत्त  
हा पुष्यराज काति । प्रयच्छ मे प्रतिषधनम् । (इति निःश्वस्य मोहमुपगम्य)

सूतः—राजन्, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

दुर्धोषनः—(सत्ता लज्जा निःश्वस्य)

मुक्तो यथेष्टमुपभोगमुखेषु नैव

त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाग्रजेन ।

मनोरथ च । मनोरथमप्युद्धोद्धमयमा इति शेषः । [साहजं माभिप्रायम् ।  
मरातीनां विमर्शो नैरन्तर्पणवस्थानेन संधट्टो यस्य तथा संवरितु शीघ्रस्य ।]  
वातस्येन । [ प्रकृतिदुर्ललितस्य स्वभावचपलस्य । ] दावं नारायणम् । नार  
वभावनायाम् । क्रोधस्ते नास्ति । करुणापि न । लज्जापि न । शयनम् ।  
करुणापि नेत्यत्र नकारस्यावृत्तिः । यदा क्रोधो न नापि करुणा इति पाठः ॥५॥  
मरातीनां कुत्र समूह एव मगधटा तस्याः तिष्ठः ।

दुर्योधन—(रथ से उतरकर गर्व और व्यह्म के साथ) रथ में चल कर मय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है ।

सूत—(लज्जा और कटुता से) लामा कीजिये, आयुष्मान्, लामा कीजिये ।

दुर्योधन—ओह ! सूत, रथ से क्या होया ? मैं केवल शत्रुओं की भीड़ से कराकर चलने वाला दुर्योधन हूँ । इसलिये केवलमात्र गदा साथ लेकर घुड़-भूमि में उतरता हूँ ।

सूत—आयुष्मान्, ऐसा ही है । इसमें क्या सम्देह है ?

दुर्योधन—यदि ऐसा है तो फिर इस तरह क्यों कह रहे हो ? देखो—

आयुष्म उठायें बहु पापी (भीमसेन) सामने स्वभाव से हुई मेरे वस्त्र पर प्रार्थन करने का प्रयत्न कर रहा है, (तब) इस विषय में व्यवसाय (प्रयत्न) करने वाले मुझे तुम क्यों रोक रहे हो ? तुम्हें क्रोध, कटुता और लज्जा नहीं आती ? ॥५॥

सूत—(कटुतापूर्वक पैरों में पड़कर) आयुष्मान्, मेरा यह निवेदन है कि घुड़, नीच भीमसेन प्रतिज्ञा पूर्ण करके निवृत्त हो चुका होगा । इसीलिये सा कह रहा हूँ ।

दुर्योधन—(देग से भूमि पर गिरते हुए) हाय, वस्त्र दुःशासन ! हाय, मेरी प्रतिज्ञा से पाण्डवों को विरुद्ध करने वाले ! हाय, पराक्रम में एकमात्र मामन्द मेरे वाले ! हाय, मेरे अङ्ग के आपसी ! हाय, शत्रु-समूह कप हाथियों के मुँह लिये सिंह समान ! हाय, पुत्रराज ! तुम कहाँ हो ? मुझे प्रत्युत्तर दो (तुम कहकर लम्बा सास लेकर मूर्च्छित हो जाता है) ।

सूत—राजन्, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये ।

दुर्योधन—(चेटना पाकर और गहरा सास लेकर) ।

धैर्य ही बड़े माई (बने हुए) मैंने न तो (तुम्हें) घबराया भोग के सुखों से छोड़ा, और न ही (तुम्हें) घबराया किया । परन्तु, हे वास, मैं तुम्हारी इस विपत्ति का कारण

मुक्त इति । मुक्तो योजितः । हिरण्यधारणे । मया नैव स्व न सानिजो मय नीतः । कीदृशेन मया । वृथा [निष्पन्न सामनादिमन्त्रिरादाव]

यस्यास्तु यन्म तव हेनुरहं विपत्ते—

यन्कारितोऽस्यविनयं न च रक्षितोऽग्नि ॥६॥

(इति पनक्ति)

सूतः—आपुष्पवृ, तमाञ्जलिहि तमाञ्जलिहि ।

दुर्घोषकः—गिरिपुत्र, निमगुह्यं भवता ।

रक्षणीयेन मततं यत्नेनाज्ञानुवतिना ।

दुःशासनेन आत्राहमुपहारेण रक्षितः ॥७॥

सूतः—महाराज, ममभेदिभिरिषुनोमरजतिप्रातपर्वमहारक्षानाम  
त्वाग्निरवेष्टः कृतो महाराज इत्यपहृतो मया रथः ।

दुर्घोषकः—सूत, विरुपं कृतवानिति ।

तस्यैव पाण्डवपशोरनुजद्विपो मे

क्षोदगंदाशनिकृतेन विवोधितोऽस्मि ।

तामेव नाधिगयितो रुधिरार्द्रशय्यां

दुःशासनी यदहमाशु वृकोदरो वा ॥८॥

(निःश्वस्य नभो विधोवय) ननु भो हतविधे कृपाविरहित, मततुमति

अपि नाम भवेन्मृत्युर्न च हन्ता वृकोदरः ।

सूतः—शान्तं पापं शान्तं पापम् । महाराज, किमिदम् ।

दुर्घोषकः—

जायतेऽग्नौ हेन] कृपाप्राजेन निष्पतज्येष्टेन । [यद्यस्मात्कारणात्] ॥६॥

रक्षणीयेनेति । रक्षणीयेन रक्षयार्हेण । दुःशासनेनोपहारेण [दुःशासन  
पदादानेनेत्यर्थः ।] रक्षितस्त्वयेति शेषः ॥७॥

[महारक्षानां महारथकृतैः । मर्षाणि भेत्तु शीतं येषां तैः ममभेदिभि  
रपुनोमराविरजैः । निरवेष्टः प्रतीकाराक्षम इत्यर्थः । विरुपमयोग्यम् ।  
तस्येवेति [यद् यस्मान् मे अनुजं दृष्टीति अनुजद्विद् तस्य । पाण्डव]

न मया, बर्बोरि देने तुमसे मर्मादा-होन याचरण तो कराया, पर तुम्हारी  
सा नहीं की ॥६॥

(यह कहकर फिर फिर पड़ता है) ।

दून — भायुधन, वंदे रचिये, वंदे रचिये ।

बुधोचन — दून, पिछार है । आपने क्या कर दिया ?

रत्ना किये जाने योग्य, हमें सा भाजा-पालक आलक, भाई दुःशासन की  
सिंह देकर (हमें) बचाया ॥७॥

दून — महाराज, महारथियों की अर्ध-मेरी बाध, लोभ, शक्ति और मालों  
की बर्बाद ने महाराज को खेतना अपहरण करके निरक्षर कर दिया था, इसलिये  
रथ को दूर से आया ।

बुधोचन — दून, तुमने अनुचित किया —

कि मैं मेरे छोटे भाई के दानु उस अनु-गुप्त राज्य की मदा करी यज्ञ  
रथ किये गये महारथों से न जमाया गया; मयथा, जो वे या भीम  
शासन की उस ही रथिर से नीली सम्या पर नहीं सोया ॥८॥

(सम्मा सति लेकर आकाश की ओर देगकर) ओ निर्बल, भरत-कुल-  
महामुख, बुधोचन,

क्या यह सम्भव है कि (मय) मेरी मृत्यु हो जाय, परन्तु मारने वाला  
भीर (भीम) न हो ।

दून — पाप शान्त हो, पाप शान्त हो । महाराज, यह क्या ?

बुधोचन —

चिनकर्मस्वात्मगुरिवा पाण्डवपुः सस्य मया एव अशनिः नञ्च मदाशनिस्तेन  
क्षोर्बः पेषर्णः प्रहारंरिति यावत् । विबोयितोऽस्मि प्रत्याहृतचेतनोऽस्मि ।  
मसनीं दुःशासनमवन्धिनीम् । तामेव शम्पा नाविशयितोऽहं तत्रैव न शयितः ।  
मोदस्याया कर्म इत्यापादे कर्म । वृकोदरो वा नाधिनायितस्वामेव शम्पाम् ।  
मोदिरूप इतवानसीति पूर्वेषु सम्बन्धः ॥८॥  
अपि नामेति । नाम संभावनायाम् । मृत्युरपि मे भवेत्त च वृकोदरो हन्ता

धातिनाशेषवन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा ॥६॥

(ततः प्रविशति वरप्रहारशृङ्खलपट्टिकानर्तनरागः सुन्दरकः)

सुन्दरकः - आर्या, अपि मामास्मिन्नुद्देशे सारविहितो हो ह्यो पुण्यान्वितो  
राजदुर्घोषो न वेति । (निष्पद्य) कथं न कोऽपि वाचयते । भवतु । एते  
वदपरिकरानां पुण्याणां समूहो दृश्यते । अत्र गत्वा प्रश्यामि । (सर्वतो  
विलोक्य च) कथमेते शत्रु स्वस्वामिनो गाडप्रहारहतस्य धनसम्प्राहृताङ्गुलिमुक्तैः  
कङ्कषवर्नैर्हृदयाच्छल्यामुद्धरन्ति । तत्र खल्वेते जानन्ति । भवतु । अन्त्यतो  
विशेष्यामि । (अप्यतोऽप्यलोक्य किञ्चित्परिब्रज्य) इमे खल्वपरे प्रभूतनाः सन्त  
वीरमनुज्या दृश्यन्ते । तत्र गत्वा प्रश्यामि । (उपगम्य) हंहो बलीयसु  
कस्मिन्नुद्देशे कुक्ष्यायो वर्तत इति । (दृष्ट्वा) कथमेतेऽपि मां प्रश्यायितुं  
ददन्ति । तत्र खल्वेतेऽपि जानन्ति । हा अतिकरणं खल्वत्र वर्तते । एषा लो  
माता समरविनिहतं पुत्रकं धृत्वा रक्षाङ्गुलिबलनया समप्रभुवपसा ह  
सहानुचिष्यते । (सम्भावम्) साधु, वीरमातः, साधु । अग्न्यस्मिन्नपि ज्ञानतो  
अनिहतपुत्रका भविष्यति । भवतु । अग्न्यतो विश्लेष्यामि । (अग्न्यतो विनीतः  
अयमपरो बहुप्रहारनिहतकायोऽकृतवपसश्च एव योयतमूह इमं शृङ्गातनं वृत्तम्  
मुपासम्य रोषिति । नूनमेतेषामर्षव स्वामी व्यासवितः । तत्र खल्वेते  
जानन्ति । भवतु । अग्न्यतो गत्वा प्रश्यामि । (सर्वतो विलोक्य कथं  
भवेदिति प्रार्थनाया लिङ् । [मरणं ममेष्टं किन्तु न वृकोदरस्तर्हि  
भावः] ॥६॥

वर्णेषु लतेषु बद्धा या पट्टिका पाटी इति प्रसिद्धा समानहृतकायः । अन्त्य  
अपि मामेति प्रश्ने । अस्मिन्नुद्देशे प्रदेशे ह्यो न हि वा । कथं वा प्रश्यायितुं  
ददन्ति । तत्र खल्वेतेऽपि जानन्ति । भवतु । अग्न्यतो गत्वा पृच्छामि । एते  
वदपरिमण्डलानां पुण्याणां समूहो दृश्यते भवतु । अत्र गत्वा पृच्छामि ।  
कथमेते शत्रु स्वामिनो गाडप्रहारहतस्य धनसम्प्राहृताङ्गुलिमुक्तैः [वर्ण  
संज्ञाहः कवचस्तस्य जालं तेन दुर्भेद्यं मुखं येषां तैः कङ्कषवर्नैः शस्त्रविदेर्  
एते बहुतराः संमिलिता वीरमनुज्या दृश्यन्ते । हा हा अतिकरणं खल्वत्र वर्तते ।  
कथमेते वीरमाता समरविनिहतं पुत्रं मेदय रक्षाङ्गुलिबलनया सर्वाङ्गुलिबलनया

(स्योदि अत्र) मुझे, जिसके सब के सब बभ्रु मार डाले गये हैं, राज्य से बा निज से क्या (साध है) ॥६॥

( तदारवान् कारों के प्रहार से हुए पावों पर बड़ी गर्दियों ने गुलोभित घरीर बना मुन्दरक प्रवेश करता है )

गुरार—आयें सोचों, क्या भाग सोचों ने इस जगह सारधि-सहित प्रहारात्तु दुर्घोषन को (कहाँ) देखा है या नहीं ? (प्यान में दगदग) कंसे ? कोई भी नहीं बोल रहा है ? अरुण, यह कबल कसे हुये सोचों का समूह शिवकाई दे रहा है । यहाँ चलकर पूछना । (पुनः और देवकर) कंसे ? ये सब गाड़ प्रहारों से हत हुये अपने २ रवानों के वध स्थल से चिमटियों द्वारा, जिसके कुछ दूर कचक के आत से भी नहीं दूर सकते हैं, बंटे निवाल रहे हैं । तब यह नहीं जानते होते । अरुण, अग्यत्र खोजना हूँ । (आगे देखकर और कुछ चमकर) वे और दूसरे और भी अधिक एकत्र हुये घोर पुरुष बौद्ध रहे हैं । तो यहाँ चलकर पूछना हूँ । (सर्वांग जागर) क्यों, आप लोग जानते हैं कि घोर-रात्र किस जगह है ? (देखकर) कंसे ? यह भी मुझे बंधकर और बाँधने लगे । तब यह भी नहीं जानते । ओह ! यहाँ तो बड़ा ही बदनाम (हय) है । यह घोर पुरुष की माता मुख में मारे गये पुत्र की बात सुन आत रेशमी चरित्रों से डकी हुई और सम्पूर्ण आनुषण पारण किये बभ्रु के स अनुसरण कर रही है । (सर्वांग के साथ) घग्य हो घोर-माना, घग्य हो । आग्य में न मारे गये पुत्र वाली होगी । अरुण, अग्यत्र खोजना । (दूसरी अंशकर) यह खोजाओं का दूसरा समूह है, जो अनेक प्रहारों में शरीर के घात देने पर घावों की बाँधे बिना ही इस वाली बाटी वाले घोड़े को उपाता कर रो रहा है । अवश्य इनका स्वाधी यहीं मार दिया गया है । तब यह : ही जानते हैं । अरुण, दूसरी जगह चलकर पूछता हूँ । (चारों ओर देखकर

आ सममनुम्रियते । अयि घोरमातः मा त्वमन्यस्मिन्नपि जन्मान्तरे विनिहत कथा भविष्यति । [अन्यन् अन्य जन्मान्तरं तस्मिन् । प्रस्तुतजन्मान्तरादप स्मिन्नित्यर्थः ।] अयमपरो बहुप्रहारवणितकायोऽश्वव्रणवन्ध एव मोक्षसमूह इम



एवायस्यानुसृतं व्यसनमनुमवन्मागधेयविमुक्तया पर्याकुलो जनः ।  
 प्रथमामि । कं वोपातस्ये । भवतु । त्वयमेवात्र विवेक्ष्यामि । (परिष्कृतं)  
 रंयमिदानोमुपालस्ये । हंहो रंय, एकादशानामशीहिणोना नापो  
 जतस्य भर्ता गाङ्गेयद्रोणाङ्गाराजस्यकृपकृतवर्माभिर्यामप्रमुञ्चस्य  
 शकस्यृष्योमण्डलंकनायो महाराजदुर्योधनोऽप्यग्निदधते । अत्रिदा  
 मायते कस्मिन्नुद्देशे वर्तत इति । (विचिन्त्य नि.भस्य च) अथ  
 रंयमुपालभे । तस्य कस्मिन्निर्भस्तिताविवुरवचनवीमभायधीतिरिति  
 पवेराङ्कुरस्य शकुनिप्रोत्साहनादिविस्तृतमुत्तरस्य अतुगृह्यूनरियशानि  
 विरगातसंबद्धवैरातवाप्तस्य पाञ्चालीकेन्द्रापहणकुसुमस्य फलं वी  
 (अन्यतो विलोकर) यथार्थं विविधरत्नप्रयासंवलितसूर्यकिरणप्रभ  
 तहप्रसंभूरितदशविरामुखो नूनकेतुर्वगो रथो हस्यते तपाहं तर्कगम्य  
 माराजदुर्योधनस्य विद्यामोद्देशेन भवितव्यमिति । यावद्विरूपयामि ।  
 (इति नि.भस्य च) कथमेकारशानामशीहिणोना नापको भूत्वा महाराजो  
 माहतापुष्टय इवाभ्यामनोयायां भूमाभुमविहस्तिहति । अथ वा तस्य  
 पाञ्चालीकेन्द्रापहणकुसुमस्य फलं परिणमति ।

[ अत्रा भविताम इमस्मिन् उद्देशे कारकिर्तुर्वगो विदुः पुत्रहेहि ।  
 अतुगृह्योहणो न वेति । बह न वो वि मन्तेति । होतु । एवागं वदति ।  
 पुरिताना मपूरो वीमर्तः । तस्य तदुत्र पुत्रिहस्यम् । बह एदे वपु र्वग  
 वात्ताहारहस्य वलगत्याह्वानमुधेऽत्रमुद्देशि कश्चनरलेहि द्विप्रभारी ।  
 वदति । ना न वपु नः प्राम्भित । होतु । अतुगृह्यो विविधरत्नम् ।  
 वपु वग्रे तदुत्तरा मवता वीमतापुग्मा वीमन्ति । ता एव तदुत्र पुत्रिहस्य  
 हसो वात्ता वृष्ट कस्मिन् उद्देशे कुन्त्याहो वदति । बह एदे वि म वेति च व  
 वदति । ना न वपु उद्देशे वि मन्ति । हा अद्विहस्य वपु एव वदति ।  
 वीमता मवर्तवित्तव पुनश्च भुवि च तलपुमनिचमत्तात् समानभूततात्  
 वदति । ना न वपु वीमता वदति । अतुगृह्यो वि मन्तेति । अतिहस्यम् ]

इति च वपु वदति । [ अतिहस्यम् ] वीमन्ति । पुनमेवैता र्वावीद स  
 । तस्य वा तदुद्देशे वि मन्ति । अथ न व वात्तावत्तापुग्मा मपुमतामवर्तवित्तव

जिसे सब ही लोग भाग्य के विपरीत होने के कारण अपनी अवस्था के अनुरूप  
 न मिल पाये होंगे व्याकुल हो रहे हैं। इसलिये यहाँ हितने पूर्ण या हितने  
 तत्त्वज्ञान है? अच्छा, यही मैं स्वयं ही क्या लगाऊँगा। (धूमकर) अच्छा अब  
 मैं भाग्य को भी उपानयन देना चाहिये। बाहू से भाग्य, गारह अशौहिणी  
 सेनाओं के ईश्वर, तो भाइयों में सबसे बड़े, भोजन, डोग, कर्ण शत्रु, कृप,  
 शत्रु और अश्वत्थामा प्रमुख राज-समूह के स्वामी, सम्पूर्ण दृष्टी मण्डल के  
 अधिपति महाराज कुर्बोधन को भी छोड़ा जा रहा है। और खोजने  
 की बात नहीं लग रहा कि हित जगह है। (नोचकर और सम्मन मीन  
 कर) अथवा इसके लिये भाग्य को भी क्या दोष है? क्योंकि यह तो उस  
 शत्रु-सूत-विष रूप वृक्ष का फल है, निरस्त विदुर का वचन जिसका  
 ही है, अवहेलना किया गया पितामह का हिनकारी उपदेश जिसका अंकुर  
 शत्रु के प्रोत्साहन आदि से जिसको जड़ मजबूत हुई है, उत्पन्न हुआ और  
 बराल से बँधा हुआ बँर जिसका बाँधला है और डीपरी का केश-ग्रहण  
 नका कुसुम है। (धूमरी और देवकर) जैसे कि यहाँ एक कटे हुए वृक्ष-  
 का रस रस रस रहा है, जो अनेक प्रकार के रसों की वान्ति से मिश्रित  
 की किरणों से उत्पन्न गहलो इन्द्र-धनुषों द्वारा दसों दिशाओं के भागों  
 पर रहा है, इससे अनुमान करता हूँ कि यही महाराज कुर्बोधन का  
 मान-स्थल होगा। तब ध्यान से देखता हूँ। (समीप जाकर देवकर और  
 का हाँस लेकर) कैसे गारह हजार अशौहिणी सेनाओं का स्वामी होकर  
 राज कुर्बोधन सामान्य पुरुष के समान यहाँ अग्रशस्त भूमि पर बैठा हुआ  
 मगरा यह डीपरी के केश-ग्रहण रूपी कुसुम का फल पक रहा है।

नाया वाप्यपराकुलो जलो दृश्यते । अवस्थानुरूप स्वम्वावरयासदृशम् ।  
 मिदानीमन दृच्छामि । कं योगालभे । भवतु । देवमुपालभे । एतस्तस्य  
 यदेति निर्भर्त्सितं तिरस्त्रित यद्विदुरवाक्यं तत् । विदुरवाक्यनिर्भर्त्सनमित्यर्थः  
 वस्य तथोक्तस्य । अवधीरितः पितामहस्य हितः उपदेश एवाङ्कुरो यस्य  
 । अनुनः पृष्ठं अनुपृष्ठं च दूतं च विष भीमाय विपदान चैव शाला विचन्ते  
 तस्य । समूहं च तद्विरक्तान् संवर्द्धं यद्वैर तदेवान्नातं जलावापजदेसो यः ।

हुविस्मसि । होदु । अण्णसो विचिणइस्सम् । अञ्जं अवरो बहुण्णहाण्हस्सम् ।  
 अकिद्वण्णप्पहिआरो एव्व ओहसमूहो इमं सुण्णासण्णं तुण्डमं उवाचहिउ रेतो ।  
 एण्ण एदाण्ण एत्थ एव्व मामो वावादिदो । ता एह ह एदे वि आण्णि ।  
 अण्णसो गदुअ पुच्छिस्सम् । कहं सव्वो एव्व अवत्थाण्णुक्कं अमण्णं अनुपससि ।  
 भाअधेअविमुक्खाए पज्जाअसो जणो । ता क एत्थ पुच्छिस्सम् । कं वा अण्ण-  
 हिस्सम् । होदु । सअ एव्व एत्थ विचिणइस्सम् । होदु । देव्वं दाणी उवाचहिउ ।  
 हहो देव्व एआदमाणं अक्कोहिणीणं माहो जेतुो मादुमदस्स भत्ता गइयेओओ ।  
 राअसल्लकिवनिदवम्मअस्सत्थामप्पमुहस्स राअचक्कस्स सअल्लपुहणीमअवेहणी ।  
 महाराअदुज्जोहणो वि अण्णेसीअदि । अण्णेसीअन्तो वि ए आणीअदि वणि-  
 उहेसे बट्टइ ति । अहं वा कि एत्थ देव्व उवाचहामि । तस्स वणु एवं तिण-  
 निअविउरवअणीअस्स अवहीरदपिदावहहिदोवदेमइणुरस्स सउण्णिण-  
 हण्णादिविकउमूलस्स अदुगेहक्कदवितसाहिणो सभूदचिरआसमंउवेरामण-  
 पआलीकेसागहणुमुमस्स कम परिणमदि । अहा एत्थ एसो विविहरअण्णहण-  
 तिदगूरकिरणप्पमूदमक्कचावसहस्ससगूरिदसदिसामुहो खूणवेदुवंतो एहो सीगं ।  
 अहं तहंमि अवसम एदिणा महाराअदुज्जोहणस्स विस्सानुहेसेण होदमम् । मा-  
 निहमेमि । कथं एआदमाणं अक्कोहिणीणं एआअतो भविअ महाराओ दुग्गोहो-  
 वदरपुरिओ विअ अममाहणीए भूमिए उवविट्ठो चिट्ठदि । अप वा तम्म म-  
 एद पआलीकेसागहणुमुमस्स कम परिणमदि । ]

( अगमृत्य मून मज्जया नृपदति )

मूनः—(रघु) अये कथं सहस्रमातमुन्दरकः प्राप्तः ।

मुन्दरकः—(अगम्य) जयतु जयतु महाराजः । [ यअतु यअतु महाराजो ]

दुषीवनः—(विभीषण) अये मुन्दरक । मुन्दरक, कचिदुपलभमहाराज ।

मुन्दरकः—देव, दुष्पथं दापीरमात्रेण । [ देव दुग्गलं मरीरमेतेण । ]

दुषीवनः—(गमभयम्) मुन्दरक, किं तिरीटिनास्य निहना बोरेण ।  
 रागविभ्रंशो वा रथः ।

मुन्दरकः—देव, न भय्ना रथः । अय्य मनोरयोअवि । [ देव न भयो रथो ।  
 वगाराओ दि । ]

असौ दया नीज विविधस्मयनामः स्वस्वमर्गविभूतिरसः [ विवि-

(समीप जाकर सारथि से संकेत द्वारा पूछता है)

सून—(देखकर) अरे क्या ? युद्ध-भूमि से सुन्दरक आया है ?

सुन्दरक—(समीप जाकर) जय हो, महाराज की जय हो ।

पौवन—(देखकर) अरे सुन्दरक है ! सुन्दरक, महाराज कुशल से हैं ?

सुन्दरक—देव, केवल देह मात्र से कुशल है ।

पौवन—(बगदावट से) सुन्दरक, क्या अर्जुन ने इसके छोड़े सार डाले,  
मार दिया या रथ तोड़ दिया ?

सुन्दरक—देव, रथ ही नहीं तोड़ दिया, प्रत्युत इसका मनोरथ भी ।

रत्नाग्रः प्रयागः विविधाः वा रत्नप्रयागः ताभिः सबलिता मिश्रिता ये सूर्य-  
स्तोत्रैः समुत्तमकृपापसहस्रं तेन संपूरिताभिः दद्यान्ता विद्यां मुक्तानि येन  
॥ विष्णुजी...तथा तर्कयामि...रथोद्धेतोः अवितर्क्यम् । यद्यनु । उपसर्गानि  
निरूप्य देवः एकाग्रधानाग्रहीहिषोना नाथो महाराजदुर्बोधनोऽस्तामनीयः  
अमुक इव भूमादुपनिष्टस्तिष्ठति । नूनं तस्य सत्त्वेतत्ताञ्जानीनेसप्रह-  
रः इति वाटे रत्नप्रयागः सङ्घातानुबन्धः । येषाम् प्रसाधनम् ।  
प्रतिपक्षं प्रसाधनम् इत्यमरः । यस्यां पुनरुद्धा । भागधेयं  
निरुद्धाग्रम्यो देवः इति देवप्रत्ययः । शीततया कातावस्थानुरूपमिदमन्वयः ।  
नृपो दन्धो । पितामहो भीष्मः । आतपार्थ वनम् इति प्रसिद्धम् । अम्यो  
नृपो कः । कुराकरव आदिपतेयः । उत्तमरत्नतेजोविरिन्द्रमनुपारम्प्य इति  
नृपतेयः । कर्षेयः प्रदेयः । प्राहृतः वामरः । स्वापार्थं युद्धम् । सारथे युतः  
युद्धम् । निवेद्य समायमन देवस्य । जयति देवः । वज्रितायप्रदेदने  
नृपो । कुरावन्तीत्यर्थः । कुरो बहुव्रीहि इति वज्रि चोदेय इति साधु न देव न हि

दुर्योधनः—(सरोरम्) किमत्राहकपिनंराहुनमनि पर्याहुनं  
दुर्योधनः । तदसोवतो विस्मयं कथ्यताम् ।

सुन्दरकः—यदेव आतापयति । अये देवस्य मुकुटमणिप्रभावेनावर्ण  
रणप्रहारवेदना । (इति गान्धी तरिकम्प) गृणोतु देवः । असीमाती कु  
दुःशासनवध—(इत्यर्थोक्तं मुनमाभ्युद्यतं सदा नाटयति । ) [जं देवो असीमा

अए देवस्य मउहमणिप्रभावेण अवर्णोदा मे रणप्रहारवेदना । कु  
देवो । धरिष दान्ती कुमारदुस्सामगवह—

सूतः—सुन्दरक, कथय । कथितमेव इवेन ।

दुर्योधनः—कथ्यताम् । धृतमस्माभिः ।

सुन्दरकः—गृणोतु देवः । अद्य तावत्कुमारदुःशासनवधामर्चिनेन स  
नाङ्गराजेन कुटिलभूकुटोभङ्गमोचननिडितपट्टेनाविष्मातसंधानमोक्तविनी  
संधातवर्षिणा अभिमुक्तः स दुराचारो मध्यमपाण्डवो भीमसेनहृत्कः । [ कु  
देवो । अङ्ग दान कुमारदुस्सासणवहामरिनिदेण सामिणा अङ्गराए कु  
मिउडीमङ्गभीसणनिडितपट्टेण अविष्मादसंधाणमोक्तमिनीमुहसंधावरिनि  
अभिमुक्तो सो दुराचारो मज्जमपण्डवो भीमसेणहनत्रो । ]

उभो—ततस्ततः

सुन्दरकः—ततो देव, उभयव्रतमित्तदीप्यमानकरितुरगपरातितपुरवर्णा  
निकरेण पर्यस्तगजघटासंधातेन च विस्तीर्यमाणेनान्यकारेणान्योहृतमुपगज  
न खलु गगनतलं लक्ष्यते । [ ततो देव उहयव्रतमित्तदीप्यमानकरितुरगपरा  
समुन्मूढधूलिणिअरेण वल्लस्वयअपडासंधादेण अ विस्वरस्तेण अन्यजो  
अन्धीकिदं उहयव्रतम् । गु ह गगणतलं लक्ष्योअदि । ]

उभो—ततस्ततः

रयो भानोऽस्यास्माकं स्वामिनो मनोरथः । [कथितः कथनः नपुंसके भावेक ।  
मुषमाच्छाद्य अश्रियकथनजातलज्जावशादिति भावः ।] यदेव आज्ञास्वी ।  
अपनीय दूरीहृत्य । दिष्ट्या महाराजस्य मुकुटमहामणिप्रभावेणापयता मे रण-  
। गृणोतु देवः गृणोतु सारथिअ । श्रुतः स्वामिना दुःशासनवध ।

दुष्यध—(कोव से) अस्पष्ट बचनों से मेरे पहले ही आकुल हृदय को  
कितने व्याकुल क्यों करते हो ? इसलिये सब स्पष्ट कह डालो ।

मुन्दरक—बेसी देव आज्ञा हैं । अरे ! देव की मुकुट-मणि के प्रभाव ने  
मुझ में हुए गहरी की थोड़ा दूर कर दी । यह कहकर सब से चलकर)  
राज बुनिये । 'आज कुमार कुशासन के बच'—' (यह आधा कहकर मुच  
र सब को नाश करता है) ।

भूत—मुन्दरक, कह डालो । भाग्य ने कह ही दिया ।

दुष्यध—कहिये । हमने मुन लिया है ।

मुन्दरक—महाराज बुनिये । आज कुमार कुशासन के बच से कुछ हुए,  
कुछ बड़ने से मयानक मस्तक-पटल वाले स्वामी भङ्गराज ने, जिनके  
और छोड़ने का पता नहीं लग रहा था, ऐसे जातों के समूह की वर्षा  
हुये उस दुराचारी मयानक-पटल, मयान भीम पर आक्रमण किया ।  
तोनों—इसके बाद ?

मुन्दरक—देव, इसके बाद दोनों सेनाओं के परस्पर संघर्ष करते हुये और  
हुये हाथी, घोड़े और पैदल सिपाहियों द्वारा उठे हुए भूति-समूह तथा  
हुये हाथियों के झुंड से बढ़ते हुये अग्यकार ने दोनों सेनाओं को अग्य-  
र से आगच्छ कर दिया । आकाश-तल विखलाई न देता था ।  
तोनों—इसके बाद ?

कि स्वीक्रियार्थमिति भवति । इतकुटिलभ्रुकुटीमङ्गभीषणेन सलाहपट्टेना-  
सत्सवानदीदणुमोसनिक्षिप्तसरसंपातवपिणाभियुक्तोऽसौ दुराचारः कुशासन-  
सैनः । अथ संपात आमारः । दुराचारेत्यन द्वन्द्वसमासः । [कुशासनवधेन  
सैनः । अथ संपातः कोपः अस्य संज्ञातः असी अमर्षितः । तारकादित्वादितच् ।  
यः कुटिल भ्रुकुट्याः मङ्गस्तेन भीषणः निटिलपट्टः यस्य तेन । न विज्ञातो  
प्राप्तो स धानमोक्षी येषां ते सपोत्तयः शिचीमुखा वाणास्तेषां संपात  
मिति तेन ।] ०५ दालिपदसमुद्रपूतबहलभूतिः ० तेनोत्पितेन ० धनान्धकारे-

सुन्दरकः—ततो देव, दूरादृष्टपुर्णुभाच्छोटनद्वारेण गम्भीरेण  
सायते गजितं प्रलयजलधरेर्मेति । [ ततो देव, दूरादृष्टपुर्णुभाच्छोटनद्वारेण  
गम्भीरेण गम्भीरधीमलोण आलीप्रदि गजितं पनप्रजनद्वारेण नि । ]

दुर्योधन—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, द्वयोरेण तयोरेणोन्मणिहनादगजितदिपुर्णं वि-  
परिमुक्तप्रहरणादृष्टकयमसंगतिदप्रसन्नविमुक्तद्वाराभासुरं गम्भीरस्तनिवसन्न-  
प्रसारच्छटपारासहस्रवर्षि जातं समरदुर्दिनम् ।

[ ततो देव दोहिण वि साण अणोन्मणिहनादगजितदिपुर्णं वि-  
परिमुक्तप्रहरणादृष्टकयमसंगतिदप्रसन्नविमुक्तद्वाराभासुरं गम्भीरस्तनिवसन्न-  
हर् पसरन्तसरपारासहस्रवर्षि जातं समरदुर्दिनम् । ]

दुर्योधन—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्मन्तरे ज्येष्ठस्य भातुः परामवसि-  
धनंजयेन वज्रनिघातिनिघोषविधमरसितध्वजस्थितमहाबाहवः तुरङ्गमवा-  
प्यापृतवासुदेवशङ्खचक्रासिगदासञ्छितधनुर्बाहुदण्डदुर्दशनो भापूरितपञ्च-  
दशतारसितप्रतिरवभरितदशदिशामुहकुहरो धावितस्तनुर्देवं रथवतः ।

[ ततो अ देव, एवमित्थं मन्तरे ज्येष्ठस्य भातुः परामवसि-  
धनंजयेन वज्रनिघातिनिघोषविधमरसितध्वजस्थितमहाबाहवः तुरङ्गमवा-  
प्यापृतवासुदेवशङ्खचक्रासिगदासञ्छितधनुर्बाहुदण्डदुर्दशनो भापूरितपञ्च-  
दशतारसितप्रतिरवभरितदशदिशामुहकुहरो धावितस्तनुर्देवं रथवतः । ]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

शान्धी० । प्रनष्टं गगनाङ्गनम् । कुत्रापि किमपि न दृश्यते । [ दूरादृष्टपुर्णुभा-  
यदाच्छोटनं तेन यः टंकारस्तेन । ] गम्भीरधीमलोण अणोन्मण्यस्य तिहनादृष्ट-  
गजितं ततिपुर्णं यस्य । विपुनो सलसूचको इत्यमरः । विविधानि दानि वि-  
मुक्तानि प्रहरणानि तीराहृतं यत्कवचं तस्मात्संगतितः स्फुरितो यो जलतः ।  
एव विमुक्तद्वारा तथा भासुरम् । गम्भीरं स्तनितं गजितं यस्यातो जायते  
जलधरः यस्मिन् । प्रसरन्तः शरा एव पारास्तासां सहस्राणि बभूवुर्होनं द-  
१ । पारासंपात आसारः । येषच्छन्नेऽङ्घ्रि दुर्दिनम् । इति पार-

## चतुर्थोऽङ्कः

सुन्दरक—देव, हापरचात् गम्भीर और भयङ्कुर, दूर तक खोँची हुई  
: शोरी के छोड़ने की टंकार से प्रतीत होता था कि, मानो, प्रलय का  
: गरज रहा था ।

दुर्योधन—इसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, इसके पश्चात् उन दोनों का युद्ध कभी बुधिन हुआ, प  
: र्णनाह कभी गर्जन जिसका सूचक था, जो अनेक प्रकार के छोड़े हुये अ  
: टकाराये कबजों से निकली हुई ज्वाला कभी विद्युत् की घनक से घनक  
: 1, जिसमें गम्भीर गर्जन वाली धनुष ही सेव था और जो तीव्र गति से  
: वे सूर्यों की कभी (जल) धाराओं को बरसा रहा था ।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, इसके बाद इती बीच कई भाई के पराजय की अ  
: गने वाले घनज्ज्वल (धर्म) ने अपना उत्तम रथ, जिसके ध्वज के अ  
: र कक्ष की कक्ष के शब्द के समान भीषण श्वनि करने वाला मह  
: (रुपाय) निपात था, जो घोड़ों को हाँकने में लगे हुये बसुदेव-पुत्र (हृष्म  
: ण्ण, कक्ष, प्रति और महा से लाञ्छित चारों भुजाओं से बुनिरीक  
: मिलने बचाये गये (हृष्म के) पाञ्चमय और (धर्म के) देवदत्त मामक  
: के तीव्र शब्द की प्रतिध्वनि से बलों दिशाओं के मुख कभी गुहाओं को  
: निपात था, उसी स्थल की ओर दौड़ाया ।

दुर्योधन—इसके बाद ?

पौरवशादिना ध्वजवह्निस्थितः.. प्रतिरबोद्धरितदत्तदिह्मुखकुहः प्राति  
: देशीयं जनवर्षय रथवरः । २. व वरस्य निर्धत्तवय उद्धोयः उच्चैः श  
: दिव्यं रत्नं दत्त स तथा । [ध्वजावस्थितः महाबानरो यस्य । सुर  
: वान्ने ज्वालतः बालुदेवः तस्य शंखश्च चक्रं च अनिध पशु च ताभिः सा  
: दे बभारः बाहुदण्डास्तैर्दुर्दशनः दुग्धेयः । बापुर्लतो यो पाञ्चमये  
: तलेस्तारस्तिताय यः प्रतिरबन्तेः धर्तितानि दक्षद्विज्ञानपहरानि ये



मुग्धरथः—ततो भीमदेवस्य वरदानात्पुनश्च विररं वीर्यं लब्धं  
विश्वामित्राय तं वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।  
ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।

[ ततो भीमदेवस्य वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।  
वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।  
ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ]

दुर्धरः—(गच्छन्) ततोऽपि ।

मुग्धरथः—ततो देव, ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।  
वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।  
ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।

[ ततो देव, ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।  
वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।  
ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ]

मुग्धरथः ततो देव, ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।  
वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।  
ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् । ततोऽपि वरदानं दत्तवान् ।

परितेति तारकादित्यादित् । [ रत्नशीर्षकं रत्नमयनिरस्त्राणाम् । आकर्षणं  
कठिनस्य कोव्यस्य जीवा येन । वल्लिहस्तेन उत्तिष्ठता ये शरास्त्रेण ।  
यद्विष्टमं तेन स्वरितः सारथ्यस्य तथामृतः । ] नमभ्यामुक्तविपत्तिवधपुत्र  
अत्रामुक्तः परिहितः । शीर्षकं टोप्पर इति स्यात् । शीर्षकं शीर्षकं व शिर  
दस्यमरः । जीवा पतञ्जिका । [ विवर्तिता विपत्तिता या असिस्तता तद्व्याप  
। अ पुंसा येषा तैः । कठिनानि कंसस्य कंसस्येव वा पञ्चाण पुंसा येषा तैः  
निकपरापाणे निजिनाः श्यामलाः शस्यवन्धा येषा तैः । शिर

सुन्दरक— तब भीमसेन और अर्जुन द्वारा आक्रमण पिता को देखकर जल्दी निरे हुये रत्नजटित मुकुट की उपेक्षा करके कठोर धनुष की धोरी को कान खोचता हुआ और दाहिने हाथ से निकाले गये बाण के बिछले भाग से पि को उकसाता हुआ कुमार वृषसेन उस जगह पहुँच गया ।

दुर्योधन— (संभलकर) तब क्या हुआ ?

सुन्दरक— देव, तब कुमार वृषसेन ने आते ही दूटी हुई तलवार के समान र और स्नायु पूँछ वाले, कठोर कण्डू-वक्ष वाले, काले वर्ण वाले और पर धँसे निचे हुये श्यामल फलक वाले बाणों से मुहूर्त भर में अर्जुन के रथ को (ऐसे) हक दिया, मानो पुष्पो से लदा हुआ वृक्ष हो ।

दोनों— (हर्षपूर्वक) इसके बाद ?

सुन्दरक— देव, इसके परचाय तीव्र फेंके गये धँसे भल्ल नामक बाणों की करने वाले अर्जुन ने मुफ्कराते हुये कहा— 'अरे वृषसेन, तुम युद्ध के । तुम्हारे पिता को भी छड़ा होना उचित नहीं है, फिर तुम बालक का श ? इसलिये जाओ, अन्य कुमारों के साथ युद्ध करो । इस प्रकार के सुनकर पिता की निन्दा से भड़के हुये क्रोध से लाल मुख-मण्डल पर हुये ध्रुवदि-मङ्गल से भीषण, धनुर्धारी, कुमार वृषसेन ने भी मर्मभेदी तथा भीषण एवं मृति-वय से प्रेम करने वाले (अर्थात् कान तक खींच दिये गये) बाणों से अर्जुन की ताड़ना की, न कि दुरे बबनों से ।

शार्ङ्गः धमरंश्च ।] ततो देव स्वायतेनैव कुमारवृषसेनेन महदाभयं कृतम् । उत्तरवामनमुस्तिग्धशस्त्रवर्धः कठिनकण्डूपक्षदृष्टानने शिनामिशित-मिश्रमर्मपथा कुमुभितस्तम्बर शिखीमुग्धस्तथा श्रम्यादितो धनत्रयस्य । अथ बह्वृषशिरा मलिबिद्येव । शस्त्रबन्धो बाणभेदः । कण्डूः कण्डूगो विडः पक्षी । शिखाया मलिमिश्र निषर्पण तेन बाणानां मिश्रध्वज-मिवैः । शिखीमुग्धो बाणधुङ्गो इत्यमरः । तीक्ष्ण तथा तथा विजिह्वा अथ भक्षमंता बाणास्मान् कपित्वा शीघ्र दश्य तेन ।] तीक्ष्णमोलमिश्रित-धरंशानामभिधानत्रयमप्युक्ता ध्वजंभेदेन.. परिपुष्टिमस्य पुनः स्वानुष्ट-य दे मण्ड । धमरः कुमारः सह यत्वा मोक्षय रति । दुर्योधनादिते-

सिद्धमल्लबाणवरिणिणा धणजएण ईसि विहमिअ भणिएम्— अरे रे विन्दु  
विन्दुणो वि दाव दे ण जुत्तं मह कुविदस्स अमिमुहं ठादुम् । कि उअ वा  
बालस्स । ता यच्छ । अवरेहि कुमारेहि सह आओवेहि । एव दाव विन्दु  
गुरुअणाहिकसेवेण उहीविअओवोपरत्तमुहमण्डलविअम्मिअभिउओपङ्गओउरे  
चावधारिणा कुमालविममेण वि मम्मभेदएहि पव्वसविममेहि मुदिवहविअण  
णिअम्मिअओ मण्डीओ बाणेहि ए उअ द्दुअअणेहि ।]

दुर्घोषनः—साधु, वृषसेन, साधु । मुन्वरक, ततस्ततः ।

मुन्दरकः— ततो देव, निश्चितशराभिपातवेदनोपजातमनुना विरहित  
चण्डगण्डीवजीवशब्दनिजितवज्रनिर्घातघोषेण बाणनिपतनप्रतिषिद्धयन्मलो  
प्रस्तुतं शिवाशक्तानुरूपं किन्नप्यारच्यम् । [ततो देव भिसिदनराभिपातवेदना  
जादमणुणा किरौटिणा चण्डगण्डीवजीवमाहाणजिदणिग्घादघोसेण बाणनि  
एपसिसिद्धदमनप्यसरण परसुद सिक्खावलाणुरूपं किं वि अचरोअम् ।]

दुर्घोषनः—(सादूतम्, ततस्ततः ।

मुन्दरकः— ततश्च देव, तत्तादृशं प्रेक्ष्य शत्रोः समरस्यापारधनुरस्त्वभि  
वित्तुनोरमुष्पतुर्गुणगममागमिनशरसंधानमोक्षदुत्तकरतलेन - कुमारवृषसेनेन  
सविशेषं प्रस्तुतं समरकर्म । [ततो अ देव त तारिम पेविअ तनु  
गमरआवारचउ नरा अविभाविअतूणीरमुहधलुगुणगमणागमणमण्डल  
वगचतुपकरअमः कुमारविमसेणेण वि सविमसे परसुदं समरकर्म ।]

दुर्घोषनः— ततस्ततः ।

मुन्दरक— ततो देव, अत्रान्तरे विमुक्तसमरव्यापारे मुहूर्तविधिवर्णन  
वाधो द्वयोरपि कुरराअण्डवसतयोः 'साधु, कुमारवृषसेन, साधु' इति इ  
वचकतो वीरलोकोऽवबोधयितुं प्रयुक्तः । [ततो देव एरचन्तरे विमुहमण्डल  
मुहमण्डलविममेण कुमालविममेण वि सविमसे परसुदं समरकर्म ।]  
साधु नि विदमअणो वीरलोओ अवतोइद पउत्तो ।]

अनिगधोपोगममृगमण्डलमुहटीविजुम्भिननप्यधारिणा कुमारवृषसेनेन वरे  
मुन्वरकएणवेनिर्मलिनः । अथ विमुम्भिनं वृणम् । ततश्चवेर्मुन्वरक  
लोरेवे । निर्मलिनो धनिनः । [मुन्वरक विजुः अविभवेन निन्दया ग्री

कुर्मोषन—शाबास, वृषसेन, शाबास । सुन्दरक, इसके बाद ?  
 सुन्दरक—देव, तब तीव्रता बानों के प्रहार से हुई पीडा से कुछ हुये,  
 वृषसेन वयुव की प्रत्यक्षा की ध्वनि से बिजली की कड़क के शब्द की  
 ने बाले, बानों की कर्पा से हृष्टि की रक्त कर देने बाले अर्जुन ने शिला  
 पराक्रम के अनुरूप अद्भुत (कर्म) प्रस्तुत किया ।

कुर्मोषन—(घोर देते हुए) उसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, और उसके बाद शत्रु के युद्ध-कर्म में ऐसे चातुर्य की देखकर  
 वृषसेन ने भी, जिसका हाथ तरकरा के कुछ और वयुव की प्रत्यक्षा पर  
 बाने, बाण चढ़ाने और छोड़ने में इतना कुतूहल था कि (वे कियावें)  
 गई नहीं पड़ती थी और अधिक (अद्भुत) पराक्रम दिखताया ।

कुर्मोषन—इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब इसी बीच युद्ध-कर्म छोड़कर, युद्ध भर के लिये  
 सिलसिले को शांत करके, कौरव और पाण्डव दोनों ही सेनाओं में  
 तोन 'शाबास, कुमार वृषसेन, शाबास' इस प्रकार तुमुल ध्वनि करते  
 उनके युद्ध-कीर्ण को) देखने लगे ।

नौपरकः दन्मुष्ममङ्गलं तत्र विजृम्भितो यः । अकुटीमङ्गस्तेन भीषणस्तेन  
 । कर्णमार्गे हतः प्रणयः अनुरागः यैः । आश्चर्याकृत्य मुष्ममानैः बानैः  
 उपपापाविमिश्रं वचनैरिति यावः । निशितशराभिषारैर्वा वेदना पीडा  
 वपज्जातो मनुर्वयस्य । अण्डं च तद्वाण्डोर्ध्वं च तस्य बीजायाः शब्देन निमित्तः  
 तस्य निर्घोषस्य च ध्वनिः येन तथाभूतेन । शिक्षाया बलस्य च अनुरूपम् ।]  
 एभिषातजातमनुना विज्ञातवाणुनिपतनप्रतिपिदशर्शनप्रसरेण ... । प्रस्तुतं  
 म् । शिक्षास्त्राम्मानः । तीक्ष्णमोक्ष...प्रस्तुतः समरकर्मारम्भः । अभा-  
 तिकितोऽप्रकाशितः । तूणीरं तोन इति स्यात् । अद्भुतं मनोज्ञं कुशलं वा ।  
 वमावितान्यलक्षितानि यानि तूणीरमुत्तमचतुर्भुजयोः यमनामनानि च शर-  
 नं मोक्षश्च तेषु अद्भुतं मनोज्ञतया संचारि करतलं यस्य ।] प्रस्तुत आरम्भः ।  
 म् उपक्रमः । समरकर्मान्त इति पाठे समर एव कर्मान्तः कीमत् इति  
 तः । [युद्धं विभक्तिः परस्मानुबन्धः बैरानुबन्धः विरोधानुवृत्तियेन स  
 तः ।] द्वयोरपि तयोः कृष्णपाण्डवराजवत्तयोः । अत्र विभक्ति उपदान्तः ।

दुर्घोषनः — (समयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः — ततश्च देव, अवधोरित्तसकलधातुष्कचक्रपराक्रमजातिः कुम्भ  
तथाविधेन समरकर्मारम्भेण हर्षरोषकवशासंकटे वर्तमानस्य स्वामिनोऽङ्गात्म  
निपतिता शरपट्टतिभीमसेने बाणपर्याकुकुसा दृष्टिः कुमारं वृषसेते । [ततो देव  
अवधोरित्तसकलधातुष्कचक्रपराक्रमसामिखो सुवस्त्र सहाविहेण समस्तकम्पाको  
हरिसरोत्तकवशासंकटे बहुपाणस्त सामिखो अङ्गरावस्त निवर्त्तिता वरं  
भीमसेने अष्टपञ्चाजला दिद्वी कुमालविकृतेणे ।]

दुर्घोषनः — (समयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः — ततश्च देव, उभयवत्प्रवृत्ततापुकारामवितेन शरवर्षप्रस  
गाण्डीविना सुरगेषु सारथावपि रथवरे वनुष्यपि जीवायामपि नरोत्त  
सितातपत्रेऽपि च व्यापारितः समं शिलीमुखासारः । [ततो देव उभय  
उत्तसाहुकारामर्त्तिनिदेन सरवरित्तपत्रनिदेन गण्डीविना सुरगेषु सारदि पि  
घणं पि जीवाइ पि नतिन्दलच्छले सिदावसे, वि अ व्यावारितो हय मि  
मुहानारो ।]

दुर्घोषनः — (समयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः — ततो देव, विरथो सुनयनकोदण्डः परिभ्रमणवापारमात्र  
विद्वारसंवातो मण्डसंविधिरितुं प्रवृत्तः कुमारः । [ततो देव विरहो वृष्टु  
वर्णो परिभ्रमणवापारमेतन्नाशिसिद्धिसरसंवातो मण्डलेहि विमर्दि  
कुमानो ।]

दुर्घोषनः — (माद्यधुम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः — ततो देव, सुनरथविष्वत्तनामणोहीवितेन स्वामिनाङ्गात्म  
मणिमभीममेनाश्रियोनेन परिमुक्तो धनंअधस्योपरि शिलीमुखासारः । कुमारो  
परिभ्रमोनीनमार्थ रथमापद्य पुनरपि प्रवृत्तो धनंअधेन सहायोद्धुम् । [ततो दे  
सुन्दरकविद्वारसंवातमिदुरीनिदेन सामिखा अङ्गरावस्त अमणिमभीममेनाशीमेन  
परिमुक्तो  
उपरि शिलीमुखारो । कुमानो वि परिभ्रमोनीनमार्थ  
वृत्तो वलङ्गणे गद्व बाणोवेनुम् ।]

... अमलजातुकायां चर्चं येन तादृशेन पराक्रमेण दात

उत्तर—(आश्चर्य से) इसके बाद ?

कुमार—देख, तब सब धनुषीरियों के मण्डल को तिरस्कृत करने प्रारम्भ से सम्पन्न पुनः के ऐसे युद्ध-वराकर्म से एक साथ आनन्द, क्रोध, क्रिया की अवस्था में पड़े हुए स्वामी महाराज (कर्म) की बाण-वरम्परा निरुद्ध और आधुनिकों से भरी दृष्टि कुमार युवसेन पर पड़ी।

पौवन—(अपसूक्त), इसके बाद ?

कुमार—देख, तब दोनों सेनाओं द्वारा किये गये साधुवाद से कुछ भीरु दृष्टि से उत्तेजित हुए, मर्जुन ने घोड़ों, सारथि, उत्तम रथ, धनुष, मोरी और श्वेत-छत्र पर एक साथ बाणों की दृष्टि की।

पौवन—(मृग के साथ) इसके बाद ?

कुमार—देख, तब इस-हीन और कुटी हुई, मोरी, तथा धनुष बाला और अपने मान से बाण-दृष्टि को रोकता हुआ कुमार युवसेन मण्डल बनाकर

पौवन—(आश्चर्य से) इसके बाद ?

कुमार—देख, तब युद्ध के रथ के नाथ से उत्पन्न क्रोध से उत्तेजित हुये महाराज ने भीमसेन के आक्रमण की दिक्ता न करके धनञ्जय (मर्जुन) को बाणों की वर्षा की। कुमार भी तैय्यक द्वारा लाये हुये दूसरे रथ पर ऊपर फिर मर्जुन के साथ युद्ध करने लगा।

यत्न अती तस्य । तपोविधः समरकर्मण आरम्भस्तेन । संकटे विभीषणि ।  
संकटे । यत्र धनुषको धनुषधरः । धनुषप्रहरणमस्मैत्यर्थं रुक् । तस्य धनुषको-  
रहितः । सुतविक्रमदर्शनेन हर्षः । धनुषधरकर्मदर्शनेन रोषः । बालस्य  
वैलेन युद्धात्करुणमिति रसवयमव । पद्धतिः पक्तिः । उपयाम्या बलाभ्या  
विधः साधुकारः साधुवादः तेन अमर्षितः अतिक्रोधः तेन । युवसेनहृत्तार-  
न प्रवृत्तितेन दत्तेन । श्रीवाया ग्यायाम् । श्रीवा जीवा गुणो गम्या  
द्वयः । यत्र साम्प्रतने धिन्हे । सितातपने अतच्छने । समवेकद्वय । ततो  
युवसेनः विनष्टो रणो यस्य स विरथः । सुनः पुनः कीदृशं च यस्य स  
रुक् । परिधममभ्यापारः एव भावः तेन प्रतिविद्धः निवारितः शरसंपाली

जमी—सायु, कुरमेन, सायु । ततस्ततः ।

गुण्डरकः—ततो देव, मणिर्न च कुमारेण—ये दे ताताभिज्ञौगुवा बन्धु  
पाण्डव, मम शरास्तव शरीरमुग्मिवाभ्यस्मिन् निपतन्ति इति वदन्ति  
शरास्तहस्रैः पाण्डवशरीरं प्रकण्ठयति ह्यहनादेन मज्जितुं प्रवृत्तः । [सति  
कुमारेण ये दे तादाहिनेवमुद्रम मज्जवपण्डव बहु सरा तुह शरीरं दहति  
अण्णानि न निवदन्ति । त्रि मणित्र सरसहस्रेहि पाण्डवमरीरं दहति  
सिंहनादेण मज्जितुं प्रवृत्तः ।]

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) महो वासस्य पराक्रमो गुण्डरका  
ततस्ततः ।

गुण्डरकः—ततश्च देव, तं शरसंपातं समवपूष्य निशितशराभिपात  
ना किरीटिना गृहीता रघोरसङ्कातकणकनककिङ्किणीयासमङ्कारि  
मेषोपरोधविमुक्तनभस्तलनिर्मला निशितश्यामलस्निग्धमुखो विविधरक्त  
पुरमीषणरमणीयवर्णा शक्तिः सोपहासं विमुक्ता च कुमाराभिमुखी । [  
देव तं सरसपादं समवपूणीत्र शिष्टिदशराभिवादजावमण्डुला किं  
गहिवा रङ्गच्छद्गदो ह्यण्वत्कणप्रकिङ्किणीयासमङ्कारविपादनी मेहोपरोध  
गहस्पलनिम्मला शिष्टिदश्यामलसिणिदमुही विविहरञ्जणहानामुत्त  
रमण्डिजशब्दमया सती सोपहासं विमुक्ता च कुमाराहिमुही ।]

दुर्योधनः—(सविपादम्) अहह । ततस्ततः ।

गुण्डरकः—ततश्च देव, प्रज्वलन्ती शक्तिः प्रेक्ष्य विगलितमहद  
हस्तास्तशरं धनुर्दशपाट्रीरमुल्लस्य अस्ताहो मयनाडास्पसतिर्न वरनाति  
हसितं च धमञ्जयेन, सिंहनादं विनादितं वृकोदरेण, गुण्डरं गुण्डरमिपात  
कुम्बलेन । [ततो अ देव पञ्चलन्ती शक्ति येनितत्र विमलितं अङ्गु  
हरपादो ससरं धनु दिव्यपादो वीरमुल्लहो उच्छादो गजपादो बलन  
धञ्जनादो रनिदं । हसिदं अ धनुञ्जयण मिहनादं विष्णुदिदं विजोरनेत  
दृष्टं ति आङ्गन्दिदं कुरवलेण ।]

येन ।] परिभ्रमणमात्रव्यापारो मण्डलाभेण विपरितुं प्रवृत्तः । अत्र मण्ड  
... । शीघ्रेणो मण्डलाभः परवानः इषाणवद् इत्यमरः । गुण्डरमिति

रोनों—वाह, वृषसेन, वाह ! इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब कुमार ने कहा—'अरे (मेरे) पिता की निन्दा में  
बाल, माध्यम पाण्डव, मेरे बाण तेरे शरीर को छोड़कर अन्य पर नहीं पड़ते  
' यह कहकर (कुमार) सहस्रों बाणों से पाण्डव के शरीर को आच्छन्न करके  
नाश करने लगा ।

दुर्योधन—(आश्चर्य से) शासक का पराक्रम और सुस्थ स्वभाव बड़ा  
चर्यकारी है । इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब उस बाण-प्रहार को रोककर तीक्ष्ण क्षणों के लगने से  
हुये अर्जुन ने रथ के मध्य भाग से बजती हुई सुवर्णमयी घण्टियों के समूह  
तंत्रार के शाय्य वाली, मेघों के घेरे से छुटे हुये आकाशतल के समान  
त, तीक्ष्ण, रघाम, एवं स्निग्ध मुख वाली, अनेक प्रकार के रत्नों की  
त से घनकली हुई और भयङ्कुर तथा सुन्दर विद्यलाई पकने वाली एक  
: उड़ाई और हँसकर कुमार की ओर छोड़ दी ।

दुर्योधन—(दुःख के साथ) वाह ! इसके बाद ?

सुन्दरक—धीर, देव, इसके बाद जलती हुई शक्ति को देखकर अङ्गराज  
य से बाण-सहित पशुप, हृदय से धीर-सुसभ उत्साह आँखों से आँसू और  
ते धीरकार निकल पड़ा । अर्जुन हँसा, भीम ने सिंहनाद किया और

सेन । अगणितः श्रीमत्सेनस्य अभिभोगः येन ।] भणित च कुमारवृषसेनेन—

पर तासांविशेषकारक मुत्तरमध्यमपाण्डव न मम दारासारास्तव शरीरमुग्भि-  
त्ताम्पस्मिन्निपतन्ति इति भणित्वा दारयतनहर्षः पाण्डवशरीरं प्रच्छाद्य  
विह्वलं विचरितुं प्रवृत्तम् । अत्र प्रच्छाद्य व्याप्य । विचरितुं कर्तुम् ।  
प्रवृत्तं वृषसेनेनेति शेषः । [निश्चितास्व ते शराश्च तेषामभिघातस्तेन  
घातः प्रायुः क्रोधो दारय सेन] कृष्णरथो वा किङ्किण्यः सुद्रपष्टिकास्तामां  
घातानि तेषां अङ्गुराद्विरोतीति विराविभी ।] ० आसहंवारराविणी महामेधो ० ।

[विविधरत्नानां प्रभाभिः भाङ्गुरा पातो भीमार्थं रमणीयं च दर्शनं यस्याः ।

॥] विविधरत्नप्रभापटितसीर्षभीषणरमणीयदर्शना महाशक्तिविदुता  
पशुधी । अत्र कृष्णच्छाद्यमानम् । भीमघता विविधरत्नगया । रमणीयता



दुर्घोषनः—(मविषादम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, कुमारवृषमेनेनाकणैरुद्विग्नितधुरप्रदिवरं निजं  
मप्य, एव माधोरथीय भगवता विषमलोचनेन त्रिधा कृता शक्तिः ।

[ततो देव कुमारविमर्शेण आकण्ठाकिट्टुणित्तिदुरप्तेहि विरं विज्ज  
अज्जहे एव भाईरही विज्ज भवमदा विमलोचनेण त्रिधा किदा संती ।]

दुर्घोषनः—साधु, वृषसेन, साधु । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे कृतकसकसमुद्धरेण बीरलोचन  
वायेनान्तरितः समरतूररवः । सिद्धधारभगवद्विमुक्तकुसुमप्रकरेण प्रकाशितं  
समराङ्गणम् ।

[ततो अ देव एतस्मि अन्तरे किदकसकसमुद्धरेण बीरलोचन  
अन्तरितो समरतूररवो । सिद्धचानण्णविमुक्तकुसुमप्रकरेण पण  
समराङ्गणम् ।],

दुर्घोषनः—अहो बालस्य पराक्रमः । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, भणितं स्वामिनाद्गराजेन—‘मो वृको  
असमाप्तस्तव ममापि समरव्यापारः । तवदुष्कृत्यस्व मां मुहूर्तम् । त्वं  
तावद्भरतस्य तव भ्रातुरव भुव्येदंशिलानिपुणरथम् । तवाप्येतत्प्रसमीपम्’—ति

[ततो अ देव भणितं सामिणा अङ्गराएण मो विकोरत्त असमो  
मह वि समलब्धावारो । ता अणुमण्ण मं मुहूर्तअम् । वेणुनामहे दाव वतत्तम् ।  
भादुणो अ घणुब्बेदंशिकवानिउणत्तणम् । तुह वि एह वेणुण्णिअं ति ।]

दुर्घोषनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, विरतो रणव्यापारनिर्धन्यान्मुहूर्तं प्रशमितवो हातं  
प्रेक्षणी जातो भीमसेनाद्गराजो ।

[ततो देव विरताआ रणव्यापारनिधन्यादो मुहूर्तअं पणमिदवेण दुहो  
वेणत्तमा जादा भीमसेणाङ्गराआ ।]

स्वभावादेव । तां तादृशीं प्रज्ज्वलन्ती... । रक्षितं च सिंहनादं वृकोदरेण । दुर्घोष-  
नः कुर्यादिति कृत्वा चन्द्रिणं कुरुवनेन । अथ रक्षितं धर्मिणम् । सिंहस्येव भातो वृको-  
दरे । कुमारनामधेयैरुत्तिर्निनिजस्युग्रधर्मादुहं विज्जयांसां च एतन्महर्षि-

रत्न-सेना ने बुरा हुआ, बुरा हुआ' यह कहकर कश्यप-कन्यदन किया ।

दुर्योधन—(विषादपूर्वक) इसके बाद ?

सुमरक—देव, तब कुमार द्रुपसेन ने देर तक सक्रम साधकर जान तक ले गये तोक्ष्ण क्षुरप्र नाटक बाणों से बीच रास्ते में ही शक्ति के, भगवान् गोपन ने गंगा के अंसे, तीन टुकड़े कर दिये ।

दुर्योधन—शाबाह, बूबसेन, शाबाह । इसके बाद ?

सुमरक—महाराज, और तब इसी बीच कल-कल ध्वनि से बड़े हुये बोरों प्रुषार ने पुत्र के आने के वाक्य को छिपा दिया और सिद्ध तथा चारनों (भाकाश से) बरसाये गये पुष्पों को राशि ने पुत्र-भूमि को ढक दिया ।

दुर्योधन—ओह ! बालक का पराक्रम बड़ा अद्भुत था । इसके बाद ?

सुमरक—महाराज, तब स्वामी अंगराज ने कहा—हे ब्रूकींदर, मेरा और [ ] अभी समाप्त नहीं हुआ है, इसलिये मुझे पुहर्त-भर [ ] लिये अनुमति तब तक पुत्र और तेरे भाई के अनुवंद की शिक्षा के चातुर्य की देख ले लिये भी, यह बर्तनीय है ।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुमरक—महाराज, तब वे दोनों पुत्र-वर्ध के आग्रह से विरत हो [ ] पुहर्त-भर के लिये वंद को शांत करके भीमसेन और अंगराज बर्तक [ ]

सी... । [सुरभीः सारविशेषः । अर्थः पत्न्याः अर्धपक्षस्तस्मिन् । निध्याय विषमलोचनेनेत्यत्र, भारतम्—सा दधार हरो राजन् यद्धा गगन- [ ] . सा वभूव विस्पर्धन्ती निधा राजन् समुद्रगा । वन० अ० १०६.]  
[ ] यपि, निद्रित्य- । आभीरयो, यद्धा विषमलोचनेन हरेण । यद्धापि हरेण, रुदेति-भावः । कलमुच्चरेण [पाठान्तरे इतः यः कलसत्तरतेन मुनरी [ ] ० प्रमुक्तमुमुमप्रकरेण संच्छादित समराङ्गणम् । अणितं च तदनु-  
क्षणमानमेव । प्रेक्षावस्तावत्तत्र भागा समं मय पुत्रस्य अनुवंदतिता-  
[ ] तवाप्येदत्प्रेक्षणीयम् इति । विभक्ति उपशान्तः । प्रेक्षको दृष्टा ।

दुर्घोषतः—नमस्ततः ।

गुप्तरक्तः—ततो देव, गाण्डीविना तारगणित्रोवाभिर्घोषाप्रतिध्वज  
कथं तयावरितं पत्रिभिर्वचा न मधस्तर्प न रक्षाधो न रक्षो न वरयो न कु  
न केतुर्वंशो न वनानि न तारगिर्वनं गुरुद्वया न दिजो न वीरमोक्षप्रदस्तैः ।

[ततो अ देव गाण्डीविना तारगणिद्वीत्राभिर्घोषमेव त्रिमुखाद्वारगणे  
नह भाप्रारिं पतिदि वद न गहलनं न रक्षो न छापी न कुमानो न कु  
वमो न वनाद् वनारक्षो न गुरुद्वया न दिगात्रो गुर्वीरयोभो न वरयोभो ।

दुर्घोषतः—(नदिरमयम्) तनस्तनः ।

गुप्तरक्तः—तनश्च देव, अतिशान्ते शरवर्षे अणमात्रमेव सहर्षि  
पाण्डवसंगे सविषादमुत्पात्र्ये वीरवर्षे समुत्थितो महान्कमलतः ।  
कुमारदुषतोः' इति ।

[ततो अ देव अदिदून्ने गरवरिते कण्ठमेत एव मरिसिद्धिदादे क  
तेण्णे सविषादमुत्पात्र्ये वीरवर्षे समुत्थितो महन्तो वलवर्षो ह'  
कुमालविसमेणोति ।]

दुर्घोषतः—(सवाणारोषम्) ततस्ततः ।

गुप्तरक्तः—ततो देव, प्रेक्षे कुमारं हतसारथितुरङ्गं सूनातत्रवारता  
केतुर्वंशं स्वर्गध्वमिव सुरकुमारमेकेनैव हृदयमर्मभेदिना शिलीमुलेन वि  
रमयाये पर्वस्तम् ।

[ततो देव वेक्यामि कुमारं हतसागहितुसङ्गं सूनादवसवावर्षां  
वंसं सगदमदं विभ्र सुलकुमास एकदेव अवेव ह्रिअमम्मभेदिना शिलीमु  
भिण्णदेहं रहमज्जे पञ्चत्थ ।]

दुर्घोषतः—(आसम्) अहह, कुमार वृषतेन । अतस्ततः परं कुन्दा । ।  
वरत, हा मददुर्ललित, हा मदाजाफर, हा गदापुटप्रियशिष्य, हा शीर्षकाल  
हा राधेयकुलप्ररोह, हा प्रियदर्शन, हा दुःशासननिविद्येय, हा सर्वगुरुवत्  
प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

[तारं रसिता निनादिता या ओवा मुखः तस्या निर्घोष एव निर्घोषात्  
- विज्ञातो बाणवर्षो यस्म तेन] । गाण्डीवताररसितमांसलनिर्घोषे विज्ञात  
...न तेषा रथा... न मनु विमपि सद्यते । पाण्डववर्षे विमुक्तविह्वले

पिन—इसके बाद ?

रक्त—देव, तब अर्जुन ने जिसका बाणों का बरसाना केवल प्रचण्ड गती शरीरों के घेव मात्र से जाना जा रहा था, बाणों से ऐसा बर्षा किया कि न आकाश दिखलाई देता था, न स्वामी, न रथ, न कुमार, न ध्वज-दण्ड, न सेनापति, न सारथि, न घोड़े, न विशाखें रंघोड़ा ही ।

पिन—(आश्चर्य से) इसके बाद ?

रक्त—देव, इसके बाद क्षण-भर में बाणों की वृष्टि के शान्त होने पर शत्रुओं के हर्ष से तिहु-नाह और कौरव सेनाओं के कण्ठ-क्रन्दन करने लगे। हाहल-ध्वनि हुई—'हाय कुमार वृषसेन मारा गया ! हाय मारा

रक्त—(बाणियों को रोककर) इसके बाद ?

रक्त—देव, तब मैंने हृष्य के मर्मस्थल की बीचने वाले एकमात्र बाण शरीर वाले कुमार को, जिसका सारथि और घोड़े मार दिये गये छत्र, धनुष, चाकर और ध्वज-दण्ड काट दिया गया था, और जो हुए देव-बालक के समान प्रणीत हो रहा था, रथ में पड़ा हुआ

पुष्पिन—(बाणियों के साथ) आह ! कुमार वृषसेन ! इससे आगे सुनने से करना चाहिये । हाय, बस ! हाय, मेरी गोद के हठी ! हाय, मेरी आत्मा के बापे ! हाय, गया-पुष्ट में प्रिय पिण्ड ! हाय, धीर्य के सागर ! हाय, युद्ध के भङ्गुर ! हाय, प्रियदर्शन ! हाय, कुशासन से अभिन्न ! हाय, युद्धों के प्रेमी ! मुझे प्रायुत्तर दो ।

देव कौरववले हा हतः कुमारी वृषसेनो हा हत इति महान्धनस्त उत्पिनः । देव महत्या वेतगर्ह प्रेक्ष्य हतसारथिनुरन्तम मृनातपत्रकेनुरय रथगति-मुरकुमारमेकेनैव मर्मभेदिना बाणेन भिन्नदेह रथमध्ये परित्यज्य मार्यः । धन केतुभिन्नम् । कुमार प्रेक्ष्याहमागत इत्यन्वयः । अरुण एव दृष्टं सति तस्य । राधेनस्य नून तस्य शरीरो राधेनकुलस्य रथम् । शरीरोऽङ्कुरः ।

पर्याप्तनेत्रमचिरोदितचन्द्रकान्त-

मुद्गिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम् ।

प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि दृष्टं

कर्णेन तत्कथमिवाननपङ्कजं ते ॥१०॥

सूतः—आपुष्पम्, अस्तमयन्तदुःपावेयेन ।

दुर्योधनः—सूत, पुष्पवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति । अस्माकं पुनः

प्रत्यक्षं हतबन्धूनामेतत्परिभवाग्निना ।

हृदयं दह्यतेऽथयं कुतो दुःखं कुतो व्यथा ॥११॥

(इति मोहमुपगतः) ।

सूतः—समाश्रितितु समाश्रितितु महाराजः । (इति पदान्तेन वीर्यवतिः)

दुर्योधनः—(लम्पसंज्ञः) भद्र गुन्दरक, ततो वयस्येन किं प्रतिपन्नमङ्गलम्

गुन्दरकः—ततश्च देव, तथाविधस्य पुत्रस्य वसनेन संतानितमङ्गलम्

अमवेक्षितपरप्रहरणाभिषेगेन स्वामिमाङ्गराजेनाभिपुक्तो धर्मजयः ।

गुणवधामर्षोद्दीपितपराक्रमं विमुक्तजीवितासं तथा पराक्रामार्तं प्रेक्ष्य भीष्म

सहदेवपाञ्चालप्रमुखैरग्निरितो धर्मजयस्य रथवरः ।

[ततो अ देव तद्वाविधस्त पुतस्त वंसलोण, संवनिद असुवर्ष इति

अतवेक्षितपरप्रहरणाभिषेकेण सामिमा अङ्गराणेन अभिपुक्तो धर्मजयः

त म सुदवहामरिगुदीविदपरकुम विमुक्तजीवितास तद् पाह्वन इति

भीष्मगुणवधामर्षोद्दीपितपराक्रामं विमुक्तजीवितासं तथा पराक्रामार्तं प्रेक्ष्य भीष्म

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

पर्याप्तेति । पर्याप्तं तृप्त यथेष्ट वा नेत्रं [आवृतं वा] यत्र तत्र वा ।

तु यथेष्टं स्वामृती यतिनिवारणे । इति विध्यः । अचिरोदितचन्द्रकान्त-

रम्यम् । उद्गिद्यमानमुद्गच्छत् । एतादृशमप्यवाननं तत्र प्राणापहारी

[अपहार इति पाठे निर्णये] परिवर्तिता दृष्टिर्वैत तथाप्युक्तं तिरीक्ष्य

कर्णेन दृष्टम् । इत्युक्तोऽनवयौवनः ॥१०॥

कर्म ने तुम्हारे उस विनाश क्षेत्रों वाले, नव उदित चन्द्रमा के समान  
नर, नई प्रकट होजी हुई यौवनावस्था से रमणीय शोभा वाले, कमल-सदृश  
व को प्राची के निकल जाने के कारण पलटी हुई दृष्टि वाला हो जाने पर  
से देखा होगा ? ॥१०॥

सूत—आपुष्पम्, शोक के अधिक आघेन में बस कीजिये :

गुरोचन—सूत, पुष्पखाली लोप ही कुछ का अनुभव करते हैं। लेकिन  
नारा—

सामने ही जिसके आधु मारे गये हैं, यह हृदय अपमान की अग्नि से  
ज्वलित बस रहा है। (इसलिये हमें) शोक कहाँ ? खेदा कहाँ ? ॥११॥  
इस कहकर मुग्ध हो जाता है।

सूत—सर्वं रक्षिये, महाराज सर्वं रक्षिये। (आँसु से हवा करता है)।

गुरोचन—(बैठना पाकर) भद्र सुम्बरक, तब निज भंगराज ने क्या किया ?

सुम्बरक—देव, इसके बाद इस प्रकार (दुरवस्थाग्रस्त) पुत्र को देखकर  
है हुये आँसुओं को त्यागकर शत्रु के आपुधों के प्रहार की चिन्ता न करते  
हैं। तबही भङ्गराज ने अर्जुन पर आक्रमण किया। पुत्र-वध के क्रोध से प्रोत्सा-  
त पराक्रम वाले और प्राणों की आशा छोड़कर अत्यधिक पराक्रम दिखलाते  
हैं इसे (उर्ध्व को) देखकर भीम, नकुल, सहदेव और वाञ्छमान आदि बोरों ने  
अर्जुन के रथ को मोट में कर लिया।

गुरोचन—इसके बाद ?

प्रत्यक्षमिति । [महर्षिः समीपे इति प्रत्यक्ष हतवन्पुत्राभरणम्] एतद्दृश्य-  
प्रत्यक्षः । [परिपन्न एव अग्निमतेन । आसन्नं भुजं दृष्ट्वा । पुन इति हृदयस्य  
हृष्यात्काकासितं पुनश्चपयोरुत्तमवकाश इति भावः ॥१२॥

प्रतिपन्नमङ्गीकृतम् । [तथा विद्या दस्य च तथानिधनस्य ।] अपुत्रागपु० ।  
मनोहितः अवधितः बौधो प्रहृष्टानामविशेष आक्रमणः । तान्त्रिकानां  
सर्वः । देव । पुनश्चासन्नसर्वतोभोदोपिः पराक्रमो बलवत् । विदुस्त  
वितादा देव त । जीवितानिर्लेखं दुःखमानमित्यर्थः । पराक्रम्यन्त मेव  
पुनश्चहरेवराज्यात्पुनर्लेखितो अयमवस्था एववत् । अभास्तितः रिद्धिः ।

मुन्दरकः - ततो देव ततो न भवितुम् - 'महत्तमम्, इत्युद्देशो न  
 दृष्टव्यो न च । ततः पुनर्न भीमार्जुनाभ्यां मयाजोदयम् ।' इति चरितम् निर्दिष्टं  
 रथोऽवगच्छति । स्वाधी स्वयम्भवाद्भुक्तार्थं च समाधायितः ।

[ततो देव ततो न भवितुम् - चरितम् इत्युद्देशो न दृष्टव्यो न  
 दृष्टो न च पुनर्न भीमार्जुनोद्दिष्टं न च मयाजोदयम् । (न चरितम् निर्दिष्टं  
 दृष्टो भोदार्थो ततो मयाजोदयं न दृष्टव्यम् अ मयाजोदयो ।)]

दुर्घोषनः - ततस्ततः ।

मुन्दरकः - ततश्च स्वाधिनो मुचिरं विसृज्य परित्नोपनीतमन्यं रथं शोचं  
 शीर्षं निःश्वस्य मयि दृष्टिचिन्तितम् । मुन्दरक एहोति मयि न च । ततोऽपुनः  
 ततः स्वाधिनोपनीतम् । ततोऽपुनः शीर्षं स्वान्तर्गतम् । शरीरसंनिधेः शीर्षं  
 विन्दुमिति तन्मुचं वाचं दृष्टव्यमित्यस्य प्रेषितो देवस्य संदेशः । (इति पट्टिका  
 यति) । [ततो अ गच्छति मुन्दर विसृज्य परित्नोपनीतं मयं रथं रथं  
 दीह निस्समिधं मदं दिष्टी विलिखितविदा । मुन्दरक एहि ति मयि न च ।  
 मह उषगदो तामिसन्धायम् । ततो अवलीभ मीमृशान्तावो पट्टिजं सरीरसंनिधे  
 शीर्षमविदुहि तिसमुह वाचं ननुम अदितिहिम प्येभिवो देवस्य तदेनो ।]

( दुर्घोषनो गृहीत्वा वाचयति यथा )

स्वस्ति । महाराजदुर्घोषनं समराङ्गनात्कर्णं एतदस्तं कण्ठे पादमालिङ्ग  
 तापयति ।

अस्त्रग्रामविधौ कृती न समरेष्वस्यास्ति तुल्यः पुमान्

भ्रातृभ्योऽपि ममाधिकोऽयममुना जेयाः पृथासूनवः ।

स्वत्संभावित इत्यहं न च हतो दुःशासनारिमया

त्वं दुःखप्रतिकारमेहि भुजयोर्वीर्येण वाप्येण वा ॥१२॥

राधेय स्वस्तिनितुरङ्गमो भग्नदूवरस्ये रथो न योष्यो बोधुं भीमार्जुनाभ्यां  
 सांप्रतमायोधितुम् । ततः परित्नोपनीतं रथो बहुप्रकारं च समाधायितः ।  
 मिना मुचिरं विसृज्य परित्नोपनीतमन्यं रथमावृणु दाशेन शीर्षं निःश्वस्य  
 दृष्टिनिहिता । मुन्दरक आगच्छेति मयि न च । तत उषगतोऽहं स्वाधिन-

सुन्दरक—देव, तब शल्य ने कहा—‘अंगराज, तेरे रथ के घोड़े मर गये हैं : हुंवर (पट्ट, बीस) टूट गया है। इसलिये भीम और अर्जुन के साथ युद्ध न होक नहीं है।’ यह कहकर उसने रथ लौटा लिया; स्वामी को रथ से रा और अनेक प्रकार से सात्त्वना हो।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—तब स्वामी ने बहुत देर तक विचार करके, सेवक द्वारा लाये तो देशतर और लम्बा सांस लेकर युद्ध पर दृष्टि डाली और कहा—‘रथ आओ।’ तब मैं स्वामी के समीप गया। इसके पश्चात् तिर से पट्टी पर शरीर से निकले हुये ध्वज के चिन्तुओं से आज को भीमा युद्ध करके (यह) सन्देश भेजा है। (यह कहकर पट्टी देता है)।

(दुर्योधन लेकर पड़ता है)

शक्ति। कर्ण युद्ध-भूमि से महाराज दुर्योधन का यह अन्तिम कण्ठालिङ्गन निवेदन करता है—

इ शास्त्र-समूह के प्रयोग में कतुर है; कोई भी पुण्य युद्ध में इसके मुख्य : यह मुझे माइयों से भी अधिक है; यह पाण्डु ॥ युद्धों को जीत लेगा, बार से आपने मेरा सम्मान किया, लेकिन मैं दुःशासन के शत्रु को न ॥, (इसलिये अब) आप स्वयं (अपने) भुजाओं के बल से अपना से (अपने) शोक का प्रतिकार करो’ ॥१२॥

। ततः शीर्षस्वानादादृष्टिकामनीय स्वशरीरसमन्वितं शक्तिविन्दुभिः प्रमुखा । अत्र कुवरेस्तु युर्मघरः इत्यमरः । शीर्षं यस्तत्रम् । गनीय [दूरीकृत्य] ।

अस्त्रेति । अयं कर्णः । [अस्त्रायामस्याग्नयमूहस्य विधौ प्रयोगे] कृती कुमानः । अनेनाकारेणाहं यत्संभाषितो धनता प्रसिद्धः कृतः । प्रतिहारः प्रलीनारः इति अभेदः । एवं प्रतिहारमेहि मय्यद् । तथा च युद्धवा वा । वदित्वा वा । राजन् युद्धं न स्वयेति भावः । अहं ॥ सर्वेषां न समर्थो मयि सम्पत्तिं कार्यमाहं शीर्षमिति निवेदः । तदुक्तं साहित्यदर्पणे दास्यमानावदीप्यतिनिवेदः स्वाव-  
ननम् इति । ॥१२॥



दुर्घोषनः—वयस्य कर्णं, किमिदं भ्रातृशतवयसदुःखितं मामपरोक्षं वारम्  
घट्टयति । भद्र सुन्दरक, अयेगानो किमारम्भोऽह्मराजः ।

सुन्दरकः—देव, अपनीतशरीरावरण आत्मवयस्कृतनिश्चयः पुनरपि वा  
सह समरं मार्गयते । [देव अघणीदशरीरावरणो अप्यवहृदिदमिदमो पुनो  
पत्येन नह समरं मग्गदि ।]

दुर्घोषनः—(आयेगादासनादुत्तिष्ठन्) सूत, रथमुपनय । सुन्दरक, रथ  
महषनात्परितर्कं मत्वा वयस्यमह्मराजं प्रतिबोधय । अलनतिताहतेन । मग्गि  
एवायमावयोः संकल्पः । न त्वमु भवानेको जीवितपरित्यागाकाङ्क्षो । किं पु

हत्वा पार्थान्सलिलमशिवं बन्धुवर्गाय दत्त्वा

मुक्त्वा व्याप्यं सह कतिपयैर्मन्त्रिभिश्चारिभिश्च ।

कृत्वान्योन्यं सुचिरमपुनर्भावि गाढोपगूढं

संत्यज्यावो हततनुमिमां दुःखितौ निवृत्तौ च ॥१३॥

अथ च शोकं प्रति मया न लिखितसंदेहव्यम् ।

घुपसेतो न ते पुनो न मे दुःशासनोऽनुजः ।

त्वा योधयामि किमह त्वं मा संस्थापयिष्यसि ॥१४॥

सुन्दरकः—यदेव आगत्यति । (इति निःश्रान्तः) । [त्रं देवो भागो १ ।]

दुर्घोषनः—गुप्तमेव रथमुदाधाय ।

गुप्तः—(द्वारं दत्त्वा) देव, ह्मं पार्थवमिहो मेवित्त्वभिः घुपसे । वर

लक्ष्म्यानि गुप्तं परिक्रमोदनीनी रथः ।

दुर्घोषन —गुप्त, दत्तत् त्वं लक्ष्म्याम् ।

देव अष्टाशतस्यः गुप्तपत्ने । [शरीरावरणं मनाह । संस्थापयिष्यसि ।]

१ ।] संस्थापयिष्यसि । वयस्यमह्मराजः ।

गुप्तमेति । अष्टाशतस्य १ । वयस्यमह्मराजः । वयस्यमह्मराजः ।

१ ।] वयस्यमह्मराजः । वयस्यमह्मराजः । वयस्यमह्मराजः ।

१ ।] वयस्यमह्मराजः । वयस्यमह्मराजः । वयस्यमह्मराजः ।

दुर्योधन—मित्र कर्ण, तो भाइयों के वध से दुःखी भुक्तकी यह दूसरे क्षणी  
 के वध से क्यों बीध रहे हो ? भद्र सुन्दरक, तो अब अंगराज क्या काम कर  
 रहे ?

शुम्बरक—महाराज, अपने शरीर से कवच उतारकर और आत्मघात का विष्य करके वह फिर भजुन के साथ युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

**इशॉयन—**(जल्दी से आसन से उठकर) सुत, रथ लाओ। सुन्दरक, तुम बहुत जल्दी जाकर मेरी ओर से मित्र अंगराज को सचेत करो—अत्यधिक ग्राह्य से दत्त करो। हम दोनों का निश्चय एक ही है। केवल एक आप ही। छोड़ने की इच्छा नहीं कर रहे, प्रत्युत—

‘दृष्टा (कृन्ती) के पुत्रों की भारकर, बाधु लोगों को अभ्यंगस जल देकर  
 रंग करके), (शेष बचे हुए) कुछ मंत्रियों और शत्रुओं के साथ भीतू बहाकर  
 परस्पर द्वारा न होने वाला (अर्थात् अन्तिम) गड्ढा मालियन करके दूखी  
 शास्त्र हुये हम दोनों इस अन्तिम शरीर को त्याग देंगे । ॥१३॥

‘(पुत्र के) शोक के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि—

'वृषसेन तुम्हारा (ही) पुत्र नहीं था; वृषासन मेरा (ही) छोटा भाई नहीं । मैं तुम्हें क्या सान्त्वना दूँ ? तुम ही मुझे खेद बँधाओगे' ॥१४॥

सुखरक—जो महाराज भाजा हैं । (यह कहकर निवृत्त जाता है) ।

સુવર્ણવન—શીઘ્ર હો એવ તાઓ ।

सूत्र—(बाल लगाकर) देख, हिनहिनाहूट से निभित यहूदे की जेमि रियि, येरे की आवाज सुनाई थक रही है। इससे सोचता हूँ कि (धर) तब ही सेवक द्वारा लाया हुआ दय है।

दुर्गोवन—सुत, जाग्रो, तुम तैयार करो ।

इंती मृत्यु ॥ १३॥

वृषसेन इति । (वृषसेनः से तर्कव पुत्रो न । आश्वमेधसिद्धत्वात्समाप्तिरिति । शुशस्त्रः से अनुजः बनीवान् आत्मा न । तत्रातीति शेषः । कर्त्तव्यं किं बोधयामि ? स्वयं च किं संस्कारविध्यमिति । अत्र निश्चयं वरिष्यति । गोरोभिर्गन्धर्वान् इत्यादिमन्त्रोपश्रुतिमिति भावः ।) ॥१४॥

शूतः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशति)

दुर्योधनः—(विमोक्ष्य) किमिति माहुर्योऽस्ति ।

शूतः—एष यस्तु तातोऽम्बा च संक्रयाधिहितं रथमारुह्य देवमुपगती ।

दुर्योधनः—किं नाम तातोऽम्बा च संक्रातो । कष्टमतिवीर्यमयं ईवेन । शूत, गच्छ त्वं रथन्दनं कूर्ममुपहर । अहमपि तातवर्जनं वधिष्येति ह्यामि ।

शूतः—देव, त्वदेकशेषवाग्यवायेतो कथमिव न समाश्वासयति ।

दुर्योधनः—शूत, कथमिव समाश्वासयामि विमुञ्चमाणदेवः । पर-

अद्यैवावां रथमुपगतौ तातमम्बां च दृष्ट्वा

घ्रातस्ताभ्यां शिरसि विनतोऽहं च दुःशासनश्च ।

तस्मिन्बाले प्रसभमरिणा प्रापिते तामवस्थां

पाद्वं पित्रोरपगतघृणः किं नु वक्ष्यामि गत्वा ॥

तथाप्यवश्यं वन्दनीयो गुरुः ।

( इति निष्क्रान्तौ )

❀ इति चतुर्थोऽङ्कः ❀

इहेषा लघ्वशब्दः । संवत्तितो मिथः । नेविअक्रान्तः । त्वदेवमपि वान्यवो ययोरिति समासः ।

अचेति । आवापहं दुःशासनश्च । [प्रसभं हठात् ।] तामवस्थां पादवस्थां

सूत—ओ महाराज बें । (यह कहकर बाहर जाकर फिर प्रवेश  
ग है) ।

दुर्योधन—(देखकर) तुम (रथ पर) चढ़े क्यों नहीं हो ?

सूत—यह पिता जी और माता जी संजय द्वारा अधिहित रथ पर बैठकर  
राज के समीप आये हैं ।

दुर्योधन—क्या ? पिता जी और माता जी आये हैं ? बड़ा दुःख है, बं  
इ अनर्थ किया । सूत, जाओ, तुम जल्दी से रथ लाओ । मैं भी पिता की  
बचाकर एकान्त में छड़ा होता हूँ ।

सूत—महाराज, आप इन्हें, जिनके आप ही एकमात्र सम्बन्धी अवशिष्ट हैं,  
क्या क्यों नहीं देते ?

दुर्योधन—सूत, विपरीत भाव वाला मैं किस प्रकार सामंजस्य हूँ ? देखो—  
मात्र ही हम दोनों पिता जी और माता जी का दर्शन करके मुझ में आये  
इन दोनों ने प्रणाम करते हुये मेरा और दुःखस्तन का सिर सूंघा था ।  
बालक के शत्रु द्वारा बलपूर्वक उस अवस्था (मृत्यु) की प्राप्त करा देने पर  
सर्वप्रकार माता-पिता के पास जाकर क्या कहूँगा ? ॥१५॥

तो भी माता-पिता की अवश्य सम्मिलन करनी चाहिये ।

(दोनों बाहर निकल जाते हैं)

✽ चतुर्थ अङ्क समाप्त ✽

तेरित्तव पिता माता इत्येव शेषः । वृषा कदला जुगुप्सा वा । जुगुप्सा कदले  
। इत्यमरः । विप्रोः पार्ष्वं गत्वा किं नु वक्ष्यामीत्यन्वयः ॥१५॥

अमून यं रत्नधरो गुणाध्वो नानागुणाध्वो दममन्तिनामि ।

जगद्धरं तस्य कृत्वा अरसीदद्गुणचतुर्षो वरद्विषनेऽथ ॥

✽ इति चतुर्थोऽङ्कः ✽

## पञ्चमोऽङ्कः

( गन. प्रविशति रथवाहेन गान्धारी मंत्रयो पुनरावृत्त )

एतराष्ट्रः—वसत संजय, कथय कथय कस्मिन्मुद्देशे पुनरुल्लासनीयं वसतो मे दुर्योधनसिंहसिंहः । कश्चिन्नोपति वा न वा ।

गान्धारी—आत, यदि सत्यं जीवति मे वसतरत्नकथय कस्मिन्मुद्देशे वसते ।  
[आत अह गच्छं जीवति मे वसतो ता वदेहि कस्मिन्नेव दुर्योः]

संजयः—मन्त्रेण महाराज एक एव मन्त्रेण वदामासि नृपति ।

गान्धारी—(सकृदप्यम्) आत, एकाकीनि वसति । किं तु वदुः शत्रु  
भ्रातृघातमस्य पार्ष्णे भविष्यति । [आत एआत सि वसति । किं तु वदुः शत्रु  
भ्रातृघातं से वास्ते भविष्यति ।]

संजयः—आत, अम्ह, अत्रतरत्नं त्वैरं रथात् ।

( उभावप्यतरत्नं नाटयतः )

( ततः प्रविशति सत्रीकमुपविष्टो दुर्योधनः )

संजयः—(उपमृश्य) विजयता महाराजः । मन्त्रेण तानः वसतः स  
प्रातः । किं न परयति महाराजः ।

दुर्योधनः—(वैलक्ष्यं नाटयति)

एतराष्ट्रः—

शल्यानि व्यपनीय कङ्कवदनैरुन्मोचिते कङ्कटे  
वदेषु घणपट्टकेषु शनकैः कर्णे कृतापाथयः ।

एकशेषोऽवशिष्टः । प्रवालोऽङ्कुरः । प्रवालमङ्कुरेऽवस्थो इत्यपर ।  
[अत्रि कानप्रवेदने इति वामरः ।]...मे पुनरुल्लासनीयं कस्मिन्मुद्देशे वसते ।  
[ सांप्रतं भ्रातृघातमस्य... । अत्र आत पुनरु [त्वैरं शनैः मुनिवि  
। ] सत्रीकं ततश्च यथा स्यादेवम् ।

## पञ्चम अङ्क

—

सदृश रूप पर सवार होकर गान्धारी. संजय और धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं।

धृतराष्ट्र—वस्तु संजय, बतलाओ, बतलाओ कुद-कुल कभी कालन का एक-  
अवशिष्ट अंकुर, मेरा पुत्र दुर्योधन किता जगह है ? वह जीवित है अथवा  
?

गान्धारी—पुत्र, यदि मेरा वस्तु सचमुच जीवित है तो बतलाओ वह किस  
पर है ?

संजय—यह महाराज अकेले ही वट-कुल की छाया में बंटे हैं।

गान्धारी—(कल्याणपूर्वक) पुत्र, 'अकेला है' यह क्यों कहते हो ? इस समय  
पास तो सी माई हों।

संजय—तात, अम्मा, धीरे २ रूप से उतरिये।

(दोनों उतरने का नाट्य करते हैं)

(तब लज्जित अवस्था में बंटा हुआ दुर्योधन प्रवेश करता है)

संजय—(पास जाकर) महाराज की जय हो। यह पिता जी माता  
जी के साथ आये हैं। महाराज क्यों नहीं देख रहे ?

दुर्योधन—(सज्जा का नाट्य करता है)।

धृतराष्ट्र—

कवच उतारने पर विपटी के मुख से आँखों के अग्रभाग निकालकर पाखों  
पर पट्टियों के बांध देने पर धीरे से कर्ण का सहारा लिये हुए और (पहले)

शस्यानीतिः । [कञ्जस्य पक्षिविशेषस्य वदनमिव वदनं येषां तैः कञ्जवदनैः  
पक्षिविशेषैः । शस्यानि वापाशाणि [व्यपनीय] उद्धृत्य कञ्जुटे सनाहे  
व्यमोचिते] व्यपनीते । कर्णं कृतः अपाश्रयः आश्रयो येन तादृशः । आदौ भवता  
वर्जिताः पश्चाच्च सान्त्वित्वास्तान् शत्रुपक्ष्यान् नरपक्षीन् सीतल्य आलोचयन्  
यान् । एष सन्निपात्य घर्मः यन्निजिता अपि शत्रवः सान्त्वनीया एवेति । हे  
यस्य शत्रुता पीडा सह्यति पापेन पुत्रविनाशान्दमाभ्येन मया न दृष्टः ॥१॥

दूरान्निजितसान्त्वितान्नरपतीनालोकयन्नीलया

सह्या पुत्रक वेदनेति न मया पापेन पृष्ठो भवान् ॥१॥

( धृतराष्ट्रो गान्धारी च स्वर्णेनोपेत्यानिङ्कृतः । )

गान्धारी—वत्स, अतिगाढप्रहारवेदनापर्याकुलस्यास्मासु संनिहितेति । प्रसरति ते वाणी । [वच्छ अदिगाढप्रहारवेदनाप्रजाउत्तसस अहो हि तस्मिन्निदं वि एव प्यरदि दे वाणी ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्घोषन, किमकृतपूर्वः संप्रति मय्यप्ययमध्याहारः ।

गान्धारी—वत्स, यदि त्वमप्यस्मात्प्रातपसि तस्मिन् संप्रति वत्सो । आतपतु दुर्मर्षी वाप्याम्यो वा । [वच्छ अह मुमं वि अहं एतमपि संपदं वच्छो दुस्सासणो आतपतु दुम्मरिसणो वा अथ भणो वा ।] रोदिति ।]

दुर्घोषनः—

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी

तातस्य वाप्यपयसां तव चाम्य हेतुः ।

दुर्जातिमत्र विमले भरतान्ववाये

किं मां मुतक्षयकरं मुत इत्ययं वि ॥२॥

गान्धारी—आन, अतः परिदेवितेन । त्वमपि तावदेकोनमात्रमुक्तं तर्कोपेक्षकः । तस्मिन् जीव । किं मे राज्येन ज्ञेयेन वा । [आन अतः परिदेविते मुमं वि दाव एतु इत्यत्र अन्धबुधभारम माग्योक्तमेवमत्रो । ता तिरं जीव । किं मे राज्येन ज्ञेयेन वा ।]

दुर्घोषनः—

स्वर्णेन वत्सवात् इत्यत्रासमर्पेन वधीतमागतम् । गान्धारी अति कनिष्ठा । तस्मिन् स्वर्णं गान्धारासमर्पेति । चतुर्धोषं दुष्टाद्विद्यानाद्व्यपन्नम् । [तु तस्मिन्—गान्धारी स्वयं कृत्वा च दूरगात्रमवधुम् । . ततः सा वदमात्रम् ।]

मोते मये और (परचात्) सान्त्वना दिये मये राजाओं को दूर से ही ज्ञान से देखने  
ले आप से भूम पायी ने यह न पूछा (पूछने का सु-अवसर न पाया) — 'हे  
ब, तुम्हारी वेदना सह्य तो है ?' ॥१॥

( धृतराष्ट्र और गांधारी टटोलते हुए पास आकर आतिशय करते हैं )

गांधारी—वस्तु, हमारे समीप आने पर भी अत्यधिक गम्भीर ग्रहणों की  
विश से श्याकुल हुए तुम्हारी वाणी भी नहीं चल रही है ।

धृतराष्ट्र—वस्तु कुर्षोषन, मेरे प्रति भी अब तुम्हारा यह पहले कभी न  
होया गया चीन क्यों ?

गांधारी—वस्तु, यदि तुम हमसे नहीं बोलोगे, तो क्या अब पुत्र दुःशासन  
मैगा ? या कुर्षोषन अपना कोई अन्ध (बोलेगा) ? (रोती है)

कुर्षोषन—

हे माता, बिना प्रतिशोध लिये अनुज का नाश देखने के लिये मैं पायी  
ला भी और आपके समीपों का निमित्त हूँ । इस निर्मल भरत-कुल में  
वुद्धित कप से उत्पन्न और (आपके) पुत्रों का नाश करने वाले मुझे आप  
न क्यों समझती हैं ? ॥२॥

गांधारी—पुत्र, विनाश न करो । अब तुम अकेले ही इस आगे पुनल को  
गर्भ इतलाने वाले हो । बिराजीकी रहो । मुझे राज्य से अपना मय से क्या  
प्रयोजन) ?

कुर्षोषन—

गृध्रमुनिं तदा । अकण्ठ मेवे एवं राज्यं पतिव्रतपरायणा ॥ अग्रतुल्यपराय-  
णः । यदि एवं भी नाम्नायि तदा कि.. ।

पाप इति । हे अम्ब [महं पापः मयः] तव सातान्ध च बाष्पवयसी हेतुः  
कारणं जालोऽस्मि । कीदृशः । अमतिवृत्तः प्रतीकारविषयोऽहो मोक्षमन्त्राः  
[तं पश्यतीति] तदर्थी । एवं भी गुण इति विमर्शवि जानामि । कीदृशम् । मो  
क्षमन्त्रमिह भरतकुले कुर्वन्ति दुरूपयम् । पुनः कीदृशम् । नः मुनविनाशकरम् ।  
। इति वार्त्ताप्रयोगवचनद्वयान्वयि । आकाश-वा नभस्य च तत्पदान् । अम्ब  
वचनं वा ।

त्वमेव .



मानः किमप्यमृतं कृपणं वनम्ने

मुक्षत्रिया क भवती क च दीनता ।

निर्यग्मे गुणशतस्य विनिमेता

त्यं नानुचिन्त्यसि रक्षणि मामयोग्यम् ॥३॥

नूनं विधेद्विनिमेषं गुणशतस्य ।

संज्ञयः—महाराज, किं कार्यं शोच्यते विनय—'न पराजयं कृतं  
रज्जुरपि तत्र प्रसोक्तम्' इति ।

दुष्योषनः—अपुष्टमस्मिन् । अस्मिन्मात्रभावे हिमुत्तरमेव । (ति  
रोदिति) ।

धतराजः (दुष्योषन परिष्वज्य) वत्स, समाश्रयनिहि । समाश्रय  
यास्मानिमावतिषीत मातरं च ।

दुष्योषनः—मात, दुर्लभः समाश्रया इदानीं दुष्कारम् । किं तु

कुन्त्या सह युवामद्य मया निहतपुत्रया ।

विराजमानो शोकेऽपि तनयाननुशोचतम् ॥४॥

मातृपारी—मात, एतदेव साप्रतं प्रवृत्तं यत्स्वयं तावदेव जीवति ।  
तज्जात, अकालस्ते समस्तस्य । प्रसीद । एष ते शीर्षाभ्रतिः । निवर्तते तदा  
प्यापारात् । अपरिच्छमं कुरु मे वचनम् ।

[जाद एव एव सपदं प्यभूद जं तुमं वि दाव एव जीवति । ता ज  
अकालो दे समस्त । प्यसीद । एषो दे शीर्षाभ्रतिः । शिखरीश्रु सम (जापारात्) ।  
अपरिच्छमं करेहि वचनम् ।]

मातरिति । किमप्यनिर्वचनीयम् । कृपणं दीनम् । मुक्षत्रिया शोचयति ।  
जातिः । वदेति । अत्यन्तासम्भवेऽप्येव ही की प्रयुज्येते इति कोपः । हे निर्वचनी  
अवात्मल्यवति वात्सल्यहीने मा ॥३॥

किं वितथोऽस्त्यः किं तु सत्य एवेत्यर्थः । रज्जु रक्षणादिवरह ।  
[न सर्वव्यापीत्यर्थः] ।

माता, तुम्हारा यह कंसा अनुचित और दोनतापूर्ण बचन है । कहीं आप शत्रिय बीराङ्गना ? और कहीं यह दोनता ? हे अचलसत्ते, आप तो पुत्रों विरासि का विचार नहीं कर रहीं; मुझ अपयोग्य की रक्षा कर ॥३॥

रवय ही यह पुत्र-शोक को करामत है ।

रघु—बहरास, क्या यह सोकोक्ति झूठी है कि पड़ा कुच में गिर जाने की भी बही नहीं बेंक सी जाती ।

गैयन—यह पुत्र रूप से सत्य नहीं है । उपकार्य के अभाव में उपकार-से क्या (लाभ) ? (यह कहकर रोने लगता है) ।

राहु—(दुर्घोषन का आतिङ्गन करके) बसत, धैर्य रखो । हमें और तो अतिदुःखित माता को भी सान्त्वना दो ।

गैयन—सात, अब आप लोगों को साम्त्वना मिलनी कठिन है ।

रघु—

ज मेरे द्वारा मार डाले गये पुत्रों वाली कुन्ती के साथ शोक से भी तब तुम दोनों पुत्रों की विमता करना ॥४॥

ग्यारी—पुत्र, मेरे लिये अब यही बहुत है कि एक तुम ही भीखिल रहो । हे पुत्र, अब तुम्हारे पुत्र का समय नहीं है । प्रसन्न होओ । मैं तेरे फती हूँ । पुत्र करना बन्द कर दो और अपने पिता के बचन का पालन

[आश्रयानां रक्षणीयानां प्राप्तुं शुभमभावे उपकरणेन मम प्राणुरक्षणेन किम् । मावे किं साधनेनेत्यर्थः ।]

न्येति । अद्य [मया निहतपुत्रया] कुन्त्या सह युवां [शोकेपि विराजमाना स्मदाः पुत्रान् दृष्ट्वा कृतवैरिदिर्यातिनादिति भावः ।] तनयान्मुखोचतमित्य- ॥३॥

इमेन...यत्कामप्येक नानुशोचयिष्ये । तस्मात् प्रसीद । एष ते शीर्षे यः । निवर्त्यतामेतस्मात्सपरन्व्यापारात् । अपरिचयं कुप्य पितुर्वचनम् । अत्र पुत्रम् । शीर्षेऽश्रुतिः प्रणामः । अर्पणममनर्प्यम् । सपत्नः दानुः

धृतराष्ट्रः—यत्त, शृणु यचनं तवाम्बाया मम च निरुताहेवमुत्तरं परम ।

दायादा न ययोर्वलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ  
कर्णस्यात्मजमग्रतः क्षमयतो भीतं जगत्फाल्गुनात् ।  
वत्सानां निघनेन मे त्वयि रिपुः क्षेपप्रतिज्ञोऽधुना  
मानं वैरिषु मुञ्च तात पितराबन्धाविमौ पाल-

दुर्योधनः—समरात्प्रतिनिवृत्त्य किं मया कर्तव्यम् ।

गान्धारी—जात, यत्पिता ते विदुरो वा भवति ।

[जाद ज पिदा दे विदुरो वा भण्णादि ।]

संजयः - वैव, एवमिदम् ।

दुर्योधनः—संजय, अध्याप्युपदेष्टव्यमस्ति ।

संजयः—वैव, पाषाणप्रणिति तावदुपदेष्टव्यमूनिविजिगीषुः प्रज्ञावा-

दुर्योधनः—(मक्रोप्रम्) शृणुमस्माद्यजुर्वत एव प्रज्ञावतः संज्ञा-  
मुत्तरेणम् ।

धृतराष्ट्रः—यत्त, युक्तवाचिनि संज्ञये दिमत्र कोयेन । वरि प्रो-  
तदृमेव मयातं वचोमि । भूयताम् ।

दुर्योधनः—वचमनु तातः ।

धृतराष्ट्रः—यत्त, किं विस्तरेण । संवत्सां वचानिवाचोमदि पुर्विदि  
तत्तववच्येन ।

वायावा इति । [ययोर्वलेन दायां पितादि द्वयायादनेऽदमीति वा २  
जातयः । दायादा इत्यर्थः । न वचिना मुक्तायेनावजाताः । तौ द्रोणभीष्मौ  
वचोवाच्यं वचोवाच्यं क्षमयतः हतव्य इत्यर्थः । फाल्गुनादनुनाम्य  
पाण्डूनीनामं वचं वचमुन । तत्र यत्पिताम्यमुपदेष्टव्यं इत्यर्थः ।  
वायावा इति, मुक्तादिनमुक्ता इत्यामेववचोवाच्यस्य वृत्तिः पश्यतः ।  
एव प्रज्ञादिवाच्यं वचि पाण्डुन इति वचम् । मे वचानो वा-  
च्येन वाच्यं विदुः वचुना वचि देवा देवपति इति वा वाच्यं

गाद—पुत्र, अपनी माता के और मेरे जिसके सब बन्धु मर गये हैं, मेरी सुनी । देखो—

मेरे बाल पर दायादों (हिस्सेदारों) की चिन्ता नहीं की, वे भीष्म और मेरे गये; कर्म के सामने हो उसके पुत्र को मारने वाले अर्जुन से संसार ; मेरे पुत्रों को मार देने के कारण इस समय रात्रि (केवल) तुम्हारे ही शोक प्रगल्भा थाता है । (इसलिये) हे पुत्र, रात्रि के प्रति अधिमान । और इन अपने माता-पिता का पालन करो ॥३॥

पिन—पुत्र से बराबरमुख होकर मैं क्या कहूँगा ?

पारी—पुत्र, तुम्हारे पिता अपना बिदुर को बुलवें ।

पि—महाराज, यह ठीक है ।

पिन—सत्य, क्या अब भी उपदेश का अवसर है ?

पि—महाराज, विजिगीषु (विजयाधीन) कुछ तक जीवित रहता है, तब पानों के उपदेश का पात्र होता है ।

पिन—(क्रोध से) अच्छा तो, हम आप ही बुद्धिमान का अपने लिये उपदेश सुनते हैं ।

गाद—बस, जबिल बाल बढ़ने वाले संजय पर इस विषय में बोध ले हो । यदि आप दाम्भ हो जायें तो मैं ही आप से कहूँगा ।

पिन—पिता की कहें ।

गाद—पुत्र, विचार से क्या (लाभ) ? आप अब भी अभीष्ट शर्म पर : से समित कर लें ।

पिन—माताजी आदर्य । दाम्भ्यः दाम्भ्यः । अतः तान् वन्द्यः ।  
 एक तानेति माया दाम्भ्यः का मुनः । तान्दुर्गुणः वन्द्यः । इति  
 । दाम्भ्यः दाम्भ्यः । अतः वन्द्यः । दाम्भ्यः दाम्भ्यः ।  
 तान्दुर्गुणः दाम्भ्यः । दाम्भ्यः दाम्भ्यः । दाम्भ्यः दाम्भ्यः ।  
 दाम्भ्यः । दाम्भ्यः दाम्भ्यः । दाम्भ्यः दाम्भ्यः ॥३॥

तान्दुर्गुणः दाम्भ्यः । दाम्भ्यः दाम्भ्यः । दाम्भ्यः दाम्भ्यः ।  
 दाम्भ्यः । दाम्भ्यः दाम्भ्यः । दाम्भ्यः दाम्भ्यः ।

दुर्वोधन — तात, तनयमेहर्षं कृप्यात्मा वा निशान्तामंशय  
 वधीतु । युष्माकमप्येवं व्यामोहः । अथ वा प्रमर्शनं पुत्रनाशत्रया हृत्  
 अग्नयं तात, आश्रितितभ्रान्शतोर्हं यदा तदापपीरितकामुदेवमायेत  
 संप्रति हि दृष्टितामहाचार्यानुवरात्रयत्रिविधः स्वशरीरमात्रस्नेहदुःख  
 वीडावहममुचावसानं च कथमिव करिष्यति दुर्वोधनः तद् वागार्त्तं  
 अग्नयं । नयवेदितांशय,

हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः संदधते परान् ।

दुःशासने हतेऽहीनाः सानुजाः पाण्डवाः कथम् ॥६॥

धृतराष्ट्रः—वत्स, एव गतेऽपि मत्प्रार्थनया न किंचिन्न करोति पुत्रि  
 अग्नयं । तर्पणं वा प्रदृष्टमात्रानं मम्यते पुत्रिद्विष्टः ।

दुर्वोधनः—कथमिव ।

धृतराष्ट्रः—वत्स भूयतां प्रतिज्ञा पुत्रिद्विष्टस्य । ताहमेव स्मरि भानुति  
 प्राणान्धारयामीति । बहुकष्टलब्धास्तद्ग्रामस्यानुजनाशमाशङ्कमानो दारं  
 रोषते तर्पणात् सजः संधातुम् ।

संजयः—एवमिदम् ।

नागधारी—जात, उपपत्तिपुत्रं प्रतिपद्यस्व पितुर्वचनम् ।

[जाद उभ्यतिञ्जुत पडिबज्जस्स पिदुणो वज्जनम् ।]

पुरिति स्मृतः ॥ इति विजिगीषुलक्षणम् । वृद्ध्याद्विह्वलत्वात् । अम्मा वरती  
 रोषः । बालिशत्वेन मूलतया सजयो भवतीति रोषः । नाम निरपेक्षे । हृत्  
 पवरस्तातस्येति रोषः । तातेत्यादि हे तात दुर्वोधनः कथं सद्यः करिष्यसीत्यत्र  
 अस्वन्नितमविनष्टं । साम संधानम् । [दृष्ट] पितामहो भीष्मः । आचार्य  
 द्रोणः । [अनुजा दुःशासनादयः] रात्रयत्रं अत्रियसंघः । [इत्येतेषां विविधैः  
 सः । ] [स्वशरीरमेव स्वशरीरमात्रं तस्मिन् स्नेहस्तस्मात् । ] वीडावहं हृदि ।  
 [उदात्ताश्च ते पुरुषाश्च तेषां वीडाभावहतीति वीडावहम् । ] उदात्तकवारी  
 करमुत्तमकपालआकरम् । दुःखान्तं च ।

हीयमाना इति । किलागमे । रिपोरहितात् । हीयमाना हीनाः नृपाः पाण्ड-  
 वा । स्वापेक्षया यदि परे शक्त्य भवन्ति तदा तैः समं तंभिः कर्तव्यं इति

जुन-एक-वह अन्य अवकलता के कारण माता जी तथा मूर्खता के कारण संजय इस प्रकार मले हो रहें, लेकिन आपको भी यह बुद्धि-विभ्रम ? अपना पुत्रों की मृत्यु से उत्पन्न शोक का ही यह प्रभाव है । और दूसरे, पिता जी, जब मेरे ली भाई नष्ट नहीं हुए थे, तब मैंने कृष्ण के शान्ति-प्रस्तावना की व्यवहेतना कर ली थी । तो अब कुर्षोषन, जिसने पितामह, आचार्य, छोटे भाइयों तथा राज-समूह की शिवत्ति (मृत्यु) देख ली है, केवल अपने शरीर के प्रति मोह के कारण पाण्डवों के साथ उदात्त पुरुषों के लिये सज्जन-जनक और दुःखमात्र परिणाम वाली सन्धि कैसे करेगा ? और भी, हे नीतिवित्त संजय,

शत्रु से निर्बल राजा लोग ही शत्रु से सन्धि किया करते हैं । (तब) दुःशासन के घरने पर अनुज-समेत प्रबल पाण्डव क्यों (सन्धि करेंगे) ? ॥६॥

एनराष्ट्र—बरत, ऐसा होने पर भी मेरी प्रार्थना पर सुविष्टि कथरय ही कुछ भी कर लेगा । हमारे, सुविष्टि हमेशा ही स्वयं की हीन समझता है ।

कुर्षोषन—कैसे ?

एनराष्ट्र—बरत, सुनिये, सुविष्टि की प्रतिज्ञा है कि—'मैं एक भी भाई के घर जाने पर प्राण धारण नहीं करूँगा ।' युद्ध के अनेक क्षणों से पूर्व होने के कारण भाइयों के जान से डरने वाला वह (सुविष्टि) जब भी आपको अथवा मरे, तब ही सन्धि करने को तैयार है ।

संजय—यह विस्मयन ऐसा ही है ।

माग्यारी—पुत्र, पिता के सुतिपुल्ल वचन को स्वीकार कर लो ।

भावः । दुःशासने हते सति सायुजाः पाण्डवा अहीनाः सत्यं वचं प त्मराज्यं शत्रुर्वः ॥६॥

एवं गतेऽपि भवदुःखनिर्वन्धावस्थेऽपि सत्यं वचं पाण्डवा सुविष्टिः निश्चितं करोत्येवं च । किं तु निश्चितं सत्यं । ननु हे राजान सुविष्टिः सर्वमेवापहृतं नैवानुमन्यते । तस्य दक्षिणराज्यस्य चर्मराज्यस्य चर्मस्यैव भावः । अथपि ननु सत्यमप्यर्थः । बह्वि [सप्तानि सत्यमप्यर्थं बह्विद्वानस्य भावः । एवं तस्यात् । ] अस्ते भोक्ते तुभ्यं सत्यमप्यर्थं । सत्यमप्यर्थं । सति यमुषी । उपसतिपुल्लं अनिष्टस्य विद्वत्पनम् । अथ अनिष्टस्य शरीरं

अभिमुखमरीन्जन्त संख्ये हताः जतमात्मजा

बहतु सगरेणोद्धा तानो पुरं महितोऽम्बया ॥८॥

विपर्यये त्वस्याधिपतेस्त्वहितः सात्रघर्मः स्यात् ।

( नेपथ्ये महाम्भसरतः )

गांधारी— (आकम्प्य ममयम् जात, दुर्जतम् हाहाकारविमं दूर्वाति श्रूयते । [जाद कहि एदं हाहाकारमिस्म तूररमिद मुलीत्रदि ।]

संजयः—अम्ब, धूमिरिषमेवंविधानां भीषजनत्रासनां महानिपादाद् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स संजय, जायतामतिभरवः खलु विस्तारी हाहाकारः ।

कारणेनास्य महता भवितव्यम् ।

दुर्योधनः—तात, प्रसीद । पराङ्मुखं खलु ईदमस्माकम् । पावपत्तर्हि

किंचित्स्याहितं न थावयति तावदेवाजापय मां तद्ग्यामावतरणाय ।

गांधारी—जात, मुहूर्तं तापनां मन्त्रभाषां समाचाराय ।

[जाद, मुहूर्तं दाव मं मन्त्रभाषणीं समस्तसेहि ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स, यद्यपि भवान्ममराय कृतनिश्चयस्तथापि रहःपरप्रतीया पावश्चित्तयताम् ।

दुर्योधनः—

प्रत्यक्षं हतवान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः

किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यद्य प्रकाशं रणे ।

अभिमुखं यथा तथा मरीन् प्लुतः] तवात्मजाः जतं जतसंख्याका हताः  
अतोऽम्बया सह सगरेणोद्धा पुरं तातो बहतु । यथा सगरस्य जतं पुत्राः मनुष्य  
हतास्तथा तवापीति भावः । कीदृशाः । अभिमुखं कुडाञ्छन् प्लुतो नाशकः ।  
एदं विशेषणं मगरमुत्प्रेष्यति । एव कलितश्रुवना इत्याद्यपि । सात्रघातम  
इति । जतसंख्याया एव वचनान्तेर्नैव जतशब्देनोक्तत्वादात्मजपदेन बहुवचनान्तेन  
च तदभिप्रायादन्वयः । ऊर्द्धा धृताम् ॥८॥

[विपर्यये भवान् पुरं न गेहं चेत्] सात्रघृतिः सात्रघर्मः । जातो

हाहाकारविमं तूररमिदं श्रूयते । अस्याहितमनिष्टम् । मुहूर्तकालं

ममाश्वासय । अत्र मुहूर्तकालस्य स्वार्थः कः । प्रीयते

गये (गुम्हारे) तो पुत्र युद्ध में सामने होकर शत्रुओं पर प्रहार करते  
दे हैं । (इसलिए अब) माता-सहित पिता तगर द्वारा वहन की गई  
) पुरा को धारण करे ॥५॥

विपरीत होने पर तो अधिपति के शात्रुधर्म का उत्पन्न होमा ।

( नेपथ्य में प्रचण्ड कोलाहल होता है )

री—(सुनकर भय से) पुत्र, यह हहाकार से मिश्रित बाध-ध्वनि  
कै रही है ?

—अम्ह, यह तो भीव लोगों की डराने वाली इसी प्रकार की प्रचण्ड  
धूमि है ।

रु—बस संजय, मात्स्य करो । यह हहाकार का शब्द तो बड़ा  
प्रचण्ड है । अथवा ही इसका कोई महान् कारण होगा ।

रु—सात, कृपा कीजिये । हमारा ही भाग्य विपरीत है । अब तक  
हैं अग्य अनिष्ट नहीं सुनाता, तब तक ही मुझे युद्ध-भूमि में उतरने  
जिये ।

री—पुत्र, झुहल-भर मुझ अभागी को धैर्य बंभाओ ।

रु—बस, यद्यपि आपने युद्ध के लिए निश्चय किया हुआ है, फिर  
से शत्रु के बध का उपाय सोचो ।

मने बाणधरों को मारने वाले शत्रु-छिपकर मारने योग्य नहीं हैं ।  
डरने से क्या (ताम) ? जो उनके समान युद्ध में प्रकट रूप से

रति । [प्रत्यक्ष अस्माकं सोपानां वा समस्त हताः अस्माकं बाणधरा  
। यो रहः गुप्त हन्तुं न योग्याः । प्रत्यक्षारक्षारिणां प्रत्यक्षमेव हननं  
मित्यर्थः । पाठान्तरे] मम रथः पराहन्तु न क्षम इत्यन्वयः । तेन  
। येन हृतेन वा किम् । किं तु न विमर्शः । तैरपि कर्म  
। येन [प्रकाशं] प्रकाशयेन योग्यनीयम् । यदित्यत्र आर्याभिप्रायमेव  
। रिव इतम् इति पाठे यथा तैः शत्रुभिः कृतं निष्कृतं रथप्रकाशना-



गांधारी—मात, एकाकी त्वम् । वरते साहाय्यं करिष्यति ।

[नाद एवाह तुमम् । को दे गहाप्रतलं करिष्यति ।]

दुर्योधनः—

एकोऽहं भयतीमुतधयकरो मातः कियन्तोऽरयः

साम्यं केवलमेतु दैवमधुना निष्पाण्डवा मेदिनी ॥

(नेपथ्ये कलकलान्तरम्)

✓भी नो घोषाः, निवेदयन्तु भवन्तः शौर्यैरवराग इव महत्कलं प्रवृत्तं  
धलमप्रियवधनपराङ्मुखतया । यतः कालानुरूपं प्रतिविद्यान्वयविवर्तिनी  
तथा हि ।

त्यक्तप्राजनरश्मिरक्षिततनुः पार्याङ्कितमंगलै-

र्वहैः स्यन्दनवर्त्मनां परिचयादाकृष्यमाणः दानैः ।

वार्तामङ्गपतेविलोचनजलैरावेदयन्पृच्छतां

छून्येनैव रथेन याति शिविरं शल्यः कुरुञ्जशल्ययन् ॥

✓दुर्योधनः— (श्रुत्वा सागङ्गम्) आः केवैरभविस्पष्टमज्ञानिपातमात्रमुक्तं  
वितम् । कः कोऽत्र भीः ।

( प्रविश्य संभ्रान्तः )

सूतः—हो हताः स्मः । (इत्यात्मानं पातयति)

दुर्योधनः—अयि कथय कथय ।

दित्यर्थः । हे मातरेकोऽहमद्वितीयः श्रेष्ठो वास्मि । शीघ्रतः । वरते  
पुत्रनाशकरः । भवतीत्यत्र पुंवद्भावाभावः प्रियादिपाठात् । श्रियाः पुंस्त्विति  
योगविभागाद्वा । कियन्तोऽरयाः । केवलं ईदमेव व्याप्यमस्तु । [वाञ्छितं  
साम्यं समता निष्पन्नपातित्वमिति यावत् ।] मेदिनी निष्पाण्डवा मरेत् । वा  
श्रिया नास्ति तत्र कुम्भस्तयो ग्राह्या इति व्युत्पत्तिः ॥६॥

कदनं पापं भीषणं वा । कदनं भीषणो पापे इति विश्वः ।

शल्यः शन्येनैव रथेन शिविरं गतोऽत्ययः । हि दुर्गम् ।

गन्धारी—पुत्र, तू अकेला है । कौन तेरी सहायता करेगा ?

दुर्योधन—

मैंने अकेले ही आपके पुत्रों को मष्ट कर दिया है, (फिर) हे माता, शत्रु  
मैंने हैं ? अब केवल माघ ही समान (निष्पक्ष) हो जाय तो पृथ्वी पाण्डवों  
हित (ही) जायेगी) ॥६॥

( नेपथ्य में कलकल श्रवण के पश्चात् )

हे धीर लोगों, भाव कीरवों के अधिपति से इस वर्तमान महान् अनर्थ को  
ता है । अग्नि सुनने के विषय में यह धोड़ने से बस करो । क्योंकि जो  
गोचित है, अब उसका प्रतिविधान तो करना ही होगा । क्योंकि—

बाहुक और लगाम छोड़े हुए, अर्जुन के नाम से अश्रित बाणों ॥ विहित  
र बाता, रथ के मार्ग से परिचित होने के कारण धोड़ों द्वारा धीरे-धीरे ले  
जाता हुआ, पृथ्वी वाली की आँखों के आँसुओं से अङ्ग-पक्ष का वृत्तान्त  
करता हुआ और कुछ लोगों को राज्य के समान बीभत्ता हुआ (यह राजा)  
र वाली रथ में अपने वक्रान की ओर जा रहा है ॥१०॥

दुर्योधन—(मुनकर आराध्यापूर्वक) आह ! यह अस्पृह और वज्र-वात के  
न कठोर घोषणा किसने की है ? यहाँ कोई है ?

( प्रवेश करके धरामा हुआ )

मृत—हाय, हम मारे गये । (यह कहकर स्वयं को गिराना है) ।

दुर्योधन - अरे ! बताओ, बताओ ।

अश्रुवर्षाणि शस्त्रमण्डलानि श्रुत्वा । रोहयः । [त्यक्तप्राशनरश्मिः  
ती प्राशनरश्मि येन ॥ तथा ।] प्राशन पण्ना इति स्वातम् । प्राशन तोदन  
म् इत्यमरः । रश्मिर्वल्गा । [पार्श्वस्य अङ्कः चित्तं ॥ संज्ञा एवामिनि  
श्रीकृतेः मार्गमार्गः । कलम्बमार्गमार्गः इत्यमरः । अश्रुततनुः]  
न्दनवर्षणां परिष्पादमार्गानुसंधानात् । काहैः कर्मेन्द्रमाहृष्यमाणाः ।  
उत्ती अनानां पृथग्दृम्यो जनेभ्य इत्यर्थः । अङ्गपतेर्वाणी ।  
यम् । तथा च कर्णो मृत इति रोदनेनैव सूचिगमिति भावः ॥१०॥

अश्रुनिर्वसम् । उभयं त्रिधाविशेषणम् । उद्धोषतमुच्चैः पश्यः इति ।

धतराहतंजयी—कल्पना कल्पनाम् ।

दूनः—आयुष्मन्, क्षियम् ।

शाल्येन यथा शाल्येन सूचिद्वतः प्रविशता जनीधोऽन ।  
दून्यं कर्णस्य रथं मनोरथमिवाधिरुदेन ॥१॥

दुर्घोषनः—हा वयस्य कर्णः । (इति मोहमुपगतः)

नाम्पारी—जात, समाश्रयतिहि समाश्रयतिहि । [जाद समस्तन इत्य]

संजयः—समाश्रयितु समाश्रयितु देवः ।

धतराहः—भोः कष्टं कष्टम् ।

‘भीष्मे द्रोणे च निहते य आसीदवलम्बनम् ।

वत्सस्य मे सुहृच्छूरो राधेयः सोऽप्ययं हतः ॥१॥

वत्स, समाश्रयतिहि समाश्रयतिहि । ननु भो हतविधे,

अन्धोऽनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः -

शोच्यां दशामुपगतः सह भार्ययाहम् ।

अस्मिन्नशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे

दुर्घोषनेऽपि हि कृतो भवता निराशः ॥१॥

अतः दुर्घोषन, समाश्रयतिहि समाश्रयतिहि । समाश्रयतय तपस्विनीं च

दुर्घोषनः— (सन्ध्यासंज्ञः)

अयि कर्णं कर्णसुखदां प्रयच्छ मे

गिरमुद्रिरन्निव मुदं मयि स्थिराम् ।

सततावियुक्तमकृताप्रियं प्रियं

वृषसेनवत्सलं विहाय यासि माम् ॥१॥

हमो भवामः ।

शाल्येनेति । हे देव अयं जनीधः शाल्येन राज्ञा हेतुबूतेन सुचिद्वतः  
कीदृशेन । प्रविशता । अर्थाजनीधमेव । कर्णस्य रथमधिरुदेन च । यथा  
शाल्येन । शूचिद्वतः जनीधो भवति । कीदृशं रथम् । मनोरथमिव । दून्यं  
आर्थाच्छन्दः ॥१॥

एतराष्ट्र और संजय—बहो, बहो ।

सूत—आयुष्मन्, और क्या ?

शूय (अपूर्ण) मनोरथ के समान कर्ण के सुने रथ पर ॥ हुए (राजा) ने शिबिर में प्रदेश करते हुए सत्य नामक अस्त्र के समान इस जन-समुद्रिष्ठ कर दिया है ॥११॥

दुर्योधन—हाथ सखा कर्ण ! (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है) ।

गान्धारी—पुत्र, धैर्य रखो, धैर्य रखो ।

संजय—धैर्य रखिये, महाराज धैर्य रखिये ।

एतराष्ट्र—ओह ! बड़ा दुःख है !

शूय और श्रेण के मर जाने पर (हमारा) जो अवसथ्यन था, मेरे ॥ वह यह और राधा-पुत्र (कर्ण) भी जाता गया ॥१२॥

ज, धैर्य रख, धैर्य रख । भरे अपम भाग्य,

ये पुत्रों की मृत्यु के दुःख को भोग चुका हुआ मैं अग्रा वत्सी-सहिन इस ॥ अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ । (अब) तुमने इस दुर्योधन के विषय ॥ उसके निम्न, पुत्र और कर्ण जाने में तो कोई भी श्रेय नहीं रहा है, मुझे ॥ कर दिया है ॥१३॥

ज दुर्योधन, धैर्य रखो और अपनी हीन भागा को धैर्य ब्रंचाओ ।

श्रेण—(बेगना प्राप्त करके) ।

बर्ण, मुनयें, मानो, स्थायी हर्ष उठेलने हुए पुत्र मुसने जानों को मुन ॥ भी जानी ओलो । हे दुर्योधन मे प्रेम करने जाने, कभी विपुल न हुए ॥ न करने जाने मुन प्रिय को छोड़कर जाने जा रहे हो ॥१४॥

ज इति । [अमुष्मन् वलपुत्रस्य विपत्तयेऽस्त्यय दुःखं वेद सः । अ ॥ सह शोच्या दशामुपगमः ।] अटीविनो विनष्ट [मुहुरपुत्रकापुत्रयो वग ॥] विरामो निरागमः । निराश इति वाटे आत्मादृश्य ॥१५॥

श्रेण । हे कर्ण यदि विरं प्रवृत्त । वीर्य । यदि विवरी ॥१६॥

गण । द्वितीयः । हे कर्ण मे मन होने वरं-मुन्यही निर

विदर । रवर्दिनि देवः । अहर्निश ॥ अहर्निश देव लम् ।

दुर्योधनो वरकलो दान न लया ॥१७॥

( पुनर्महिषनाशनं ) ।

( सर्वे ममाश्वाप्यग्निः )

दुर्घोषनः—

‘मम प्राणाधिके तस्मिन्प्रज्ञानामधिके हते ।

उच्छ्वसन्नपि तज्जेज्ज्माश्रयानि सात का कथा ॥११॥

अपि च

शोचामि शोच्यमपि शत्रुहृतं न यत्सं

दुःशासनं तमघुना न च बन्धुवर्गम् ।

येनातिदुःश्रयमसाधु कृतं तु कर्णो

कर्तास्मि तस्य निधनं समरे कुलस्य ॥१६॥

शान्धारी—जात, शिथिलय तावत्क्षणमात्रं बाष्पमोक्षम् ।

[जाद सिद्धिमेहि दाव कर्तुमेतं बाष्पमोक्षम् ।]

धृतराष्ट्रः—वास, क्षणमात्रं परिमार्जयाधूयि ।

दुर्घोषनः—

‘मामुद्दिश्य त्यजन्प्राणान्केनचिन्न निवारितः ।

तत्कृते त्यजतो वाप्यं किं मे दीनस्य वार्यते ॥१७॥

सूत, केनैतदसंभावनीयमस्मत्कुलान्तकरं कर्म कृतं स्यात् ।

सूतः—आयुष्मन्, एवं किल जनः कथयति ।

ममेति । तस्मिन्प्रज्ञानामधिके हते सत्युच्छ्वसन्नप्यहं तज्जे । स्वाश्वशरीरे  
सजा करोमि । आश्वसे का कथा । [मुद्रापेतं तु समाश्वासनमिति भावः] ॥११॥

शोचामिति । अघुना शत्रुहृतं शोच्यं शोचनाहंमपि तं कर्तां दुःशासनं च  
शोचामि । बन्धुवर्गं च न शोचामि । तु कितु येन कर्णो अतिदुःश्रयं अतिदुःश्रय  
धोतुं शक्यम् असाधु कृतम् । कर्णो हत इत्यर्थः । तस्य कुलस्य समरे निधनं  
नाश कर्तास्मि ।] येन कर्णेन मम कर्णोऽसाध्ययोग्यमतिदुःश्रयमेत्यर्थः ॥१७॥

( फिर झुच्छित हो जाता है ) :

( सब सान्त्वना देते हैं )

दुर्योधन—

हे तात, मुझे प्राणों से अधिक (प्रिय) अङ्गदेश के अधिपति उस (वर्ण) के  
दे जाने पर साँस लेते हुए भी लगता जाता है; धर्म-धारण की तो बात हो  
॥ ११५॥

भीर भी,

अब मैं शत्रु द्वारा मारे गये तथा शोक के योग्य होते हुए भी, वरस  
रासन और बाण-समूह के लिए शोक नहीं करता; लेकिन जिसने वर्ण के  
ते (यह) अत्यन्त अभयनीय पाप कर्म किया है, मैं युद्ध में उसके कुल का  
श कर दूँगा ॥ ११६॥

गान्धारी—युव, अब क्षण-भर आँसू बहाना बन्द करो :

एतदाह—वात, क्षण-भर के लिए आँसू थोँठ लो :

दुर्योधन

मेरे लिए प्राणों का त्याग करते हुए (वर्ण) को किसी ने नहीं रौंका ।  
।के लिये आँसू बहाते हुए मुझ बीन को क्यों रौंका जा रहा है ॥ ११७॥

सुत, हमारे कुल का नाश करने वाला यह अतश्मय कार्य किसीने किया  
गा ?

सुत—आपुष्पन्, लोग ऐसा कह रहे थे—

वी न हत तस्य वर्युस्य निधने सति यम कुमराय निधन विनाश इत्यर्थः ।  
पाञ्चोऽयं अण्डरसमनः पाण्डुः ॥ दुश्चरिति विदोषणद्वारा विदोष्यन्नामः ।  
।इदं सुपु इत्यादिना यत् ॥ ११८॥

अब मोक्षारण्याय :

मासिति । न निवारितो य इति दोषः । तत्कृते सं मरदीहत्याधुः ।  
कि वायंते । न वारयितुमर्हामिति भावः ॥ ११९॥  
असंभावनीयं दुष्करम् ।

भूमी निमानचक्रचक्रागुधमारथः शरं मनस्य ।  
निहतः किनेन्द्रमूनोरस्मत्मेनाहृतान्तस्य ॥१८॥

दुर्घोषनः—

पद्मनिनेन्दुस्मरणात्पुभितः शोकमागरः ।  
वाङ्मेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ॥१९॥

जात, मन्त्र, प्रगोदतम् ।

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः ।  
समानायां विपत्ती मे यत् संशयितो रणः ॥२०॥

एतरादः—(दुर्घोषन परिष्वग्य कन्)

भवति तनय सत्यं संशयः साहसेषु  
ब्रवति हृदयमेतद्भीममुत्प्रेदय भीमम् ।  
अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशोण्ड  
चलचलमरीणां सङ्गरं हा हतोऽस्मि ॥२१॥

गाथारी—जात, तेमैव सुतशतकृताभ्येन वृक्षोररेण समं समं मार्गये ।  
[जाद तेन एव मुदसदकदभ्येन विमोदलेण समं समं मार्गये ।]  
दुर्घोषनः—तिष्ठतु तावद् वृक्षोरः ।

भूमाविति । किल प्रसिद्धी । [चक्रागुधः सारथिः यस्य तस्य अस्मत्केन  
हृतान्तस्य] तस्येन्द्रमूनोरजुनस्य शरः स कर्णो निहतः । कोदशः । दुर्घो  
[निमानचक्रः] निमानरथाङ्गः । चक्रं सैन्यरथाङ्गयोः इति विश्वः । चक्रपु  
ः । हृतान्तो यमः ॥१८॥

१ । [कर्णनिनमेव इन्दुः तस्य स्मरणात्पुभितः मम शोकसत्ता  
चदवाजतेन शिखिनाग्निना ओर्वेण इव मे क्रोधजातेन शिखिना  
॥१९॥

(बृ. कर्ण), दृष्टी में जिसका पहिया घेत गया था, हमारी सेना के लिये  
के समान इन्द्र-पुत्र (अर्जुन) के, जिसका सज्जायुध (शृग्न) लारवि है, बाणों  
पारा गया ॥१८॥

**परिचय**

कर्ण के मुख-कपी सन्त्रासा के स्मरण से सन्मुख मेरा शोक-कभी सागर  
गगन के समान मेरी शोषाग्नि से पिघा जा रहा है ॥१६॥

पिता जी, माता जी, हुषा कीजिये ।

श्रीलोक से उत्पन्न यह भस्महृत् अग्नि मुझे जलाये जान रही है। (घर और  
सौत्र में) मुष्ण के समान (जप से सम्पन्न) होने पर मुझे संशय-मूलं कुछ ही  
बचता है ॥२०॥

नगराह—(दुर्घोषन का आतिथ्य करने लगे हुए) ।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि साहित्यपूर्ण भाषों में संशय होता है। यद्यपि भीम  
स्वार करके (मेला) यह दृश्य प्रकट हो रहा है। हे स्वाध्यायिनि,  
युद्ध-वर्ष बचाना-निष्पन्न नहीं है और राष्ट्रों का युद्ध-वर्ष अनेक छानो  
है। हाय ! मैं मारा गया ॥२१॥

गणपती—तुम, तुम उसी कुबोडर से कुछ की इज्जत कर रहे हो, जो  
 भी तुम्हें के लिए सब के सामान है ?

**पौष्य** कुशीहर की बात छोड़ी —

॥ १ ॥

यमीनि । हे तमस दुष दृष्टेयु माभीर्ध्वनि । लघुमद् — 'य कः दृष्टयमा-  
 रो भवति यमनि इति । इत्यदि यमल यमनि । भीर्ध्वनिमद् ।  
 शिवालय । हे माभीर्ध्वनिमदः यमनि । हे हिमनिमदः यमनि । यमनि-  
 यमनिमदः यमनि । यमनिमदः यमनि । यमनिमदः यमनि । यमनिमदः यमनि ।  
 यमनिमदः यमनि । यमनिमदः यमनि । यमनिमदः यमनि । यमनिमदः यमनि ।



भूमी निमग्नचक्रश्चक्रायुष्मगारयेः शरैस्तस्य ।  
निहतः किनेन्द्रगूनोरस्मभेनावृत्तान्तस्य ॥१८॥

दुर्घोषः—

कर्णानिनेन्दुस्मरणात्पुमिन्तः शोकमागदः ।  
वाडवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ॥१९॥

तान्, अम्ब, प्रगोस्तम् ।

उवसन्तः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः ।  
समानायां विपत्तौ मे वरं संशयितो रणः ॥२०॥

एतत्तदः—(दुर्घोषं परिष्वस्य गन्)

भवति तनय सत्यं संशयः साहसेषु  
द्रवति हृदयमेतद्भ्रीममुत्प्रेक्ष्य भीमम् ।  
अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशीण्ड  
च्छलयहुलमरीणां सङ्गरं हा हतोऽस्मि ॥२१॥

गान्धारी—जात, तैर्भव सुतशतकृतान्तेन वृत्तोदरेण तर्पं समर्पं मार्गजे ।  
[जात तेन एव सुदसदकदन्तेन विशोदलेण तर्पं समर्पं दयति ।]

दुर्घोषः—तिष्ठतु तावद् वृत्तोदरः ।

भूमाविति । किम् प्रतिष्ठी । [चक्रायुषः सारथिः यस्य तस्य अस्मत्सेना-  
कृतान्तस्य] तस्येन्द्रगूनोरर्जुनस्य शरैः स कर्णो निहतः । शोधयः । पुनो  
[निमग्नचक्रः] निमग्नरपाङ्गः । चक्रं सैन्यरपाङ्गयोः इति विश्वः । वरायुक्  
कृष्णः । कृतान्तो यमः ॥१८॥

कर्णेति । [कर्णानिनेव इन्द्रः तस्य स्मरणात्पुमिन्तः मम शोकमागदः  
वाडवेन वडवाजातेन शिखिनश्विना ओर्वेण इव मे क्रोधजातेन शिखिना  
पीयते ॥१९॥

दृष्टी में जिसका पहिया घेत गया था, हमारी सेना के लिये  
 \* कप्तान इन्द्र-धनु (अर्जुन) के, जिसका चक्रायुध (हथियार) सारथि है, बाणों  
 मारा गया ॥१॥

**निष्कर्ष**

क्यों के मुक-कपी चण्डमा के स्मरण से संशुभ मेरा शोक-कभी सागर  
जिन के समान मेरी ओशानि से विदा जा रहा है ॥१६॥

पिता को, माता को, हुवा कीजिये ।

शेष से जलपत्र यह भस्मरूप सन्निधि मुझे जलाये डाल रही है। (घर भीर से) मृत्यु के समान (रक्त से सम्भव) होने पर मुझे संशय-पूर्ण मुक्त हो गया है ॥२०॥

निर्वाह—(दुर्घोचन का आत्मिकरण करके होते हुए) ।

पुनः, यह सच है कि साहित्यपूर्ण भाषों में संशय होता है। जयज्वर भीय  
मार करके (मेरा) यह हृष्य इति हो रहा है। हे स्वाध्यायिन्,  
पुनः-कर्म बचाना-निपुण नहीं है और शत्रुओं का पुनः-कर्म अनेक छानों  
है। हाय ! मैं मारा गया ॥२५॥

प्यारी—पुत्र, तुम उसी कुकोर से कुछ भी इच्छा कर रहे हो, जो  
 मेरी दुर्घों के लिए धन के समान है ?

**गौतम - बुद्धोद्धार की बात छोड़ो—**

नम इति । तन्मात्रायां तुल्यायां दाहयत्तुर्गोविन्द इति आयात् । संघर्षोऽपि  
इति च सतिष्ठोऽपि । एतौ चरं चोप्यं इत्यर्थः । चरं इत्येव नानापरं

मीति । हे तवच कुप ईदृशेषु लक्षणीयं वति । अनुपपन्नं—यं चाहवचमा-  
 नं भावति वचसि वति । इति वचसं वचसि । योर्लक्षणावचनम् ।  
 विचिन्त्य । हे ज्ञानलीलाविद्यावचनात् तं विचिन्त्यविद्वत्सिन्धुं वरदीपा-  
 दयानां वापुस्तत् वा ज्ञानीति विद्वत् । विद्वत्सिन्धुं चोदे चोदे इति विद्वत् ।  
 तद्गुरुं कुर्वन् ज्ञानवृत्तयति । ज्ञानी ॥ वदन् । इत्येतेषां ॥२॥

( सर्वे ससंभ्रममाकर्णयन्ति )

( प्रविश्य संभ्रान्तः )

सूतः—आयुधम्,

प्राप्तावेकरथारूढो पृच्छन्तो त्वामितस्ततः ।

सर्वे—कथं कथं ।

सूतः—

स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः ॥२५॥

गान्धारी—(तपयम्) जात, किमत्र प्रतिपत्तयम् ।

[आद कि एष पदिरग्निदग्धम् ।]

दुर्योधनः—तनु संनिहितंवेद्यं गदा ।

गान्धारी—हा हतास्मि मग्नभागिनी । [हा हृदसि मदभासली ।]

दुर्योधनः—सम्य, भलमिशानी कारंभ्येन । संजय, एषमारोप्य हि

जिह्विं प्रनिहरय । प्राप्नोऽस्मच्छोरापनोदी जनः ।

सूतराजः—वृत्त, राजमेकं प्रतीक्षतव साकनयोर्माविमुपलभे ।

दुर्योधनः—तान, विमनेनोपलभ्येन ।

( गग. प्रविशतो रथान्ग्री भीमार्जुनी )

भीम—ओ ओः दुर्योधनानुभीविनः, किमिति संभ्रमापराधं कर्तुं  
भवन्तः । अतथापयोः कानूया ।

वर्ता दूनपदमाना अनुमयशरणोदीपनः सोऽनिमानी

वृत्तावेगोत्तरीयव्यनयनमग्न्यापृष्टया सम्य दासाः ।

वृत्तावेगः । इत्यन्तः सर्वे । कर्णारिर्जुनः । वृकोदर इति शब्दः ।

संजय इति शब्दः । वृककर्माः । वृका दुर्योधनायाः । कोदर इति शब्दः ।

वृका दुर्योधनायाः इति शब्दः ॥२५॥

१५ । प्रविश्य संभ्रान्तः । प्रतीक्षतव भवन्तः । प्रतीक्षन्तीति

। कर्णारिर्जुनः । अतथापयोः कानूया ।

( सब धवराहट के साथ मुनने है )

( प्रवेश करके धवराया हुआ )

दूर-आपुत्तम्,

एक रथ पर बैठे हुए और इधर-उधर आपके विषय में पूछते हुए होते हैं।

सब-कौन कौन ?

दूर-

वह कर्म का दातृ (अर्जुन) और वह भेड़िये जैसे कर्म करने वाला क्रूर और ॥२५॥

गाम्पारी—(अवपूर्वक) पुत्र, अब इस स्थिति में क्या करना चाहिये ?

दुर्योधन—यह क्या तो पास में है ही।

गाम्पारी—रथ में मन्दभाग्य मारी गई।

दुर्योधन—माता जी, अब हीनता से बस करो। संजय, माता-पिता को मैं बँटाकर शिविर की ओर प्रस्थान करूँ। हमारे शोक को दूर करने वाला आ गया है।

धृतराष्ट्र—पुत्र, एक क्षण प्रतीक्षा करो, जब तक मैं अपना अभिप्राय नूँ।

दुर्योधन—तान, इसके जानने से क्या होगा ?

( सरसवत्पाव रथ पर बैठे भीम और अर्जुन प्रवेश करते हैं )

भीम—भरै दुर्योधन के भूयों, धवराकर इधर-उधर क्यों भाग रहे हो ? तैनों से डरने की आवश्यकता नहीं है।

दूत-कण्ट करने वाला, साक्षा-गृह को अलाने वाला, अत्यधिक अभिमानी, के केस और वस्त्रों के हरण में वायु के समान, पाण्डव जिसके पास हैं,

जैति। असौ स दुर्योधनः क्वारस्ते सत्कथयत । [भीरुः दूरमम्बन्धिना  
कर्ता । अनुमयं नाशानिमित्तं यत् शरणं गृहं तस्य उद्दीप्तः दाहकः ।  
गः केसाश्च उत्तरीयं च तेषां व्यसनयने मरुत् वायुरिव ।] रथा तं

अप्रियाणि करोम्येव वाचा दत्तो न कर्मणा ।

तत्रभातृजनो दुर्गा प्रनार्गस्य वा व्यया ॥३१॥

भीमः—भरे रे भरतकुलकन्द,

अत्रैव किं न विनाशेयमहं भवन्तं

दुःशागनानुगमनाय कटुप्रनापिन् ।

विघ्नं गुरु न कुरुतो यदि मद्गदाय-

निमित्तमानरणितास्यनि तं शरीरे ॥३२॥

अथवा गुरु

शोकः स्त्रीयन्नयनमसितं यत्परित्याजितोऽसि

भ्रातुर्वंशःस्यलविषटने यत्र साक्षीवृतोऽसि ।

आसीदेतत्तव कुनृपतेः कारणं जीवितस्य

क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने ॥३३॥

कुर्योपनः कुरात्मन्, भरतकुलापसव, धृतराज, वाण्डवपदो, नाहं प्रवाणि  
विकल्पनाप्रगल्भः । किं तु

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।

मद्गदाभिध्रवक्षोऽस्थिवेशिकाभीमभूषणम् ॥३४॥

अप्रियाणीति । एव वाचाप्रियाणि करोति । कर्मणा न शक्तोऽनर्क  
इत्यन्वयः । यदा । अतस्त एव वाचा अप्रियाणि करोति न कर्मशेन्यन्वयः ।  
मलापोऽनर्थकं वचः इत्यमरः ॥३१॥

अत्रैवेति । अहं भवन्तं किमत्रैव न विनाशेयं न विनाशयामि । यदि ते  
रे गुरु विघ्नं न कुरुत इत्यन्वयः । विनाशेयमिति वायु हितायाम् निशि  
रे रूपम् । हे कटुप्रनापिन् । कीदृशे शरीरे । मत्करार्थनिमित्त-  
एव रणितानि शब्दिशान्यस्थीनि यत्र तादृशे । वीर्यं कुल्यमस्ति व  
॥३२॥ [मद्गदाय० इति पाठे मम गदाया अग्रैः कोटिभिः] ॥३२॥

कार्य द्वारा (अप्रिय करने में) अशक्त, दुःखी हुआ वह, जिसके सौ भाग्य हैं पाशों से अप्रिय कर रहा है। इसके प्रस्ताप (निरर्थक वचन) में  
 ॥३१॥

मीम—अरे, ओ भारत कुल के कलहू,

हे बटु-भाषिण्य, यदि मेरी गरा की कोटि से विदीर्ण होते हुए, (मतः  
जाली हुई हड्डियों वाले तेरे शरीर के बीच में माता पिता धिन्न न शर  
मा के पुमान का अनुसरण करने के लिए आपको यहीं न म  
६? ॥३२॥

मीर जी, पुर्ण,

तुम्हारे कुल-कषी कमलिनी के लिये हाथी ॥ समान (धुस) चीमते  
हूँ होने पर भी तुम दुर राजा के ओबित रहने का कारण यह था कि  
के कारण तुमसे निजियों के सम्मान आसू बहवाये और (तिरे) भाई के वस  
के विधि कलने में तुम्हें साथी बनाया ॥३३॥

दुर्घोषन—बुद्धाभा, भरत-कुल में मीच, (मेरे) रूप में (जीते गये)  
 गुरुकुल पाण्डव, मैं आपके समान आत्म-दत्ताभा करने में सक्षम  
 हूँ—

(तेरे) भाग्यव तुझे, मेरी यश से दूरी हुई बल-बल की शिमी-सुलभ  
 है जिसके भयभूर आसुषण हैं सुख-शोक में सोया ही सोया हुआ देखोगे ।

शोकंरिति । शोकंर्यथा स्त्री रोदिति तथा मत्स्यं नयनमलितं स्थात्रितो  
 शोभम् इति पाठे नैवजलंर्यथा स्त्री शोकं स्थात्रमते तथा स्वमपि स्व  
 मत्स्यः । यथा स्त्री रुदित्वा शोकं त्यजति तथा स्वमपि कुतमिति  
 मीमतेने कृते सति तव कुतारव्यं शोचिनस्यैवत्सारव्यमासीच्छोचनं भातृर  
 व नाम । उभयं वेदं कुतं तदा मया स्वमपि पातयितव्यं इतिमात्रः ॥३१॥

प्रयच्छन्तीति । न विराट्प्रतिष्ठा । श्रेष्ठिना वरवरा । वेतिना इति  
वेतिना प्रसादः । वेत्ती तु वेत्तावेते स्वात्प्रसादोऽयं निगद्यते । इति छ  
अथ एव विवेकीति । वविना इति पाठस्तु गुणन एव । नैव मज्जनवाम  
अथ तम् । गुणां वर इति शेषः । ॥१७॥

भीमः—(विहस्य) यत्नेवं नाश्रद्धेयो भवान् । तथानि प्रत्याहममेव स्वनाम  
पीनाभ्यां यद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाघातसंचूर्णितोरोः  
क्रूरस्याधाय पादं तव शिरसि नृणां पश्यतां ध्वः प्रभाते ।  
त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोदलनगलदसृक्चन्दनेनानखाग्रं  
स्त्यानेनाद्रौ चोक्तः स्वयमनुभविता भूपरं भीममस्मि ॥

( नेपथ्ये )

भी भी भीमसेनाभुनो, एष खसु निहताशेषास्तिष्यक आशान्तपराधुपान  
भिराजयथाः प्रताप्ताभितदिह्मण्डस्तस्यापितस्वजनः भीमानजातशत्रुद्वेषो मुक्तिर्  
समाप्तापयति ।

उभौ—किमाप्तापयत्यर्थः ।

( पुनर्नेपथ्ये )

कुर्वन्त्वाम्ना हतानां रणशिरसि जना वह्निसाहं हमार  
नश्रून्मिश्रं कथंचिद्दत्तु जलममी बान्धवा बान्धवेभ्य  
मार्गन्तां शांतिदेहान्हतनरगहने खण्डितान्गृध्रकङ्क-

रस्तं भास्यान्प्रयातः सहरिपुभिरयं संह्रियन्तां वसां

उभौ—यथाप्तापयत्यर्थः । ( इति निष्क्रान्तौ )

पीनाभ्यामिति । इयः । एषो गतेऽनागतेऽस्ति इयः इत्यमरः । ॥ ४ ॥  
वरपता पीनाभ्यां गुष्टाभ्याम् । ओष्वापी वृद्धो इत्यतो वारप्येत्वा  
ओदिगम्य इति मत्स्यं व्यायः पी इति च पीभावः । गदधुनाभ्यां ५  
गुहः गदा तस्य आपानेन सचूर्णिते ऊह मत्स्य तस्य क्रूरस्य तत्र शिरा  
धाय । आपानेन धनीभूनेन । सर्वे पृथं सत्यमंगयानयोः इत्यतो निष्क्रान्तौ  
देवानीशातोर्वचन इति निष्क्रान्तौ नः । आद्रौ च ॥ १ ॥ सर्वं मुष्णो वर ।  
क्रूरपृथक् तस्योदनेन सत्यमेव गदाग्रसदृशं तदेव चान्न तेन । ५  
तस्यानि वयः मुक्तिः । तथा च रसद्विभवं भ्रातृव्य इति भावः ।  
नयाशर्वममः स्वयं भीम धुनयधुमविनामि ॥ ३१ ॥





( नेपथ्ये )

मरे रे गान्धीबाबूवर्गवाहुतातिन् अर्जुन, अर्जुन, कवेरानी दम्पते ।

कर्णक्रोधेन युष्मद्विजयि धनुरिदं त्यक्तमेतान्यहानि

प्रौढं विक्रान्तमासीद्वन इव भवतां दूरदून्वे रणेऽस्मिन् ।

स्पर्श स्मृत्योत्तमाङ्गे पितुरनवजितन्यस्तहेतेरपेतः

कल्पाग्निः पाण्डवानां द्रुपदमुतचसूयस्मरो द्रौणिरस्मि ॥३॥

धृतराष्ट्रः—(आनन्दं सहयम्) वत्स दुर्योधन, द्रोणवदपरिभयोदीक्षितशोक-  
पावक. पितुरपि समधिकजितः शिक्षाचानमरोपमभाष्यमभ्यस्यामा प्राहः ।  
पगमनेन तावदयं संभाष्यतां कीरः ।

गांधारी— जात, प्रत्युत्पत्तिं महामात्रम् ।

[जाद पञ्चगच्छ एव महामात्रम् ।]

दुर्योधनः—तात, अम्ब, किमनेनाङ्गराजवपासतिना वृषाधीवनशङ्करत

धृतराष्ट्रः—वत्स, न त्वस्वस्मिन्काते पराक्रमवतामेवविद्यानां बाह्या

विरागमुत्थावपितुमर्हसि ।

( प्रविश्य )

अभ्यस्यामा—विजयतां कीरवाधिवतिः ।

दुर्योधनः—(उत्थाय) गुरुपुत्र, इत आस्थताम् । (इत्युपवेद्यति)

अभ्यस्यामा—राजदुर्योधन,

कर्णेति । [युष्मान् विजेतुं शीलमस्य तद् युष्मद्विजयि इदं धनुः कर्णं  
एतानि अहानि त्यक्तम् ।] अहानीत्यत्र काताम्बनोरस्वन्तसंयोगे इति द्विती-  
तेनाहानि व्यामेत्यर्थः । अस्मिन् रणे भवता [प्रौढं स्वीयमिति परिहासोक्ति-  
विक्रान्तं पराक्रम आसीत् । विक्रान्तमिति भावे क्तः । कीदृशे । वन-  
दूरदून्वे । [मधुना तु न अवजितः वनवजितः चासी न्यन्ता द्रोणो व-  
न्यस्तहेतिश्च तस्यानवजितन्यस्तहेतेः पितुः उत्तमाङ्गे स्पर्श स्मृत्या वने-  
१. अल्पाग्निः द्रुपदमुतस्य धृष्टद्युम्नस्य यस्मरः नाजगरः । वृष-

( नेपथ्य मे )

बरे शास्त्री को खींचने वाली भुजाओं वाले अर्जुन, ओ अर्जुन, अब वहाँ  
गया है ?

कर्म के प्रति बोध के कारण मैंने अपना यह तुमको जीतने वाला धनुष इन  
में छोड़ दिया था, (इसलिये इन दिनों) बीरों में शून्य इस रण मे इन के  
गन तुम्हारा महान् पराक्रम होता रहा । (अब) कभी पराजित न हुए तथा  
अस्वाभ विधे हुए पिता के सिर पर किये गये स्वर्ग की याद करके पाण्डवों  
लिये प्रलपति के मन्त्रान और दुपद के पुत्र की सेनाओं का भक्षक मैं शीघ्र  
पुत्र (अश्वत्थामा) आ पहुँचा हूँ ॥३७॥

पत्तराह—(तुनवर हथ के साथ) बल दुर्योधन, शीघ्र ॥ वध के अपमान  
प्रकाश बोधकपी अतिशयता, पिता से भी अधिक बलवान्, सुशिक्षित और  
गुप्त यह अश्वत्थामा आया है । इसलिए आए अब उठकर कर इसका  
कार करो ।

गान्धारी—पुत्र, इस महानुभाव का उठकर सम्कार करो ।

दुर्योधन—पिता जी, माता जी, भङ्गराज (वर्ध) के वध की कामना  
। वाले तथा धर्म ही धीवन, शास्त्र और बल के मार की धारण करने वाले  
(अश्वत्थामा) से क्या लाभ ?

पत्तराह—पुत्र, इस समय ऐसे पराक्रमी बीरों की बाढ़ी-मात्र से भी  
प्र करना उचित नहीं है ।

( प्रवेश करके )

अश्वत्थामा—कीरवों के अधीश्वर की वध हो ।

दुर्योधन—(उठकर) भाषार्थ—पुत्र, इधर बैठिये (यह कहकर बैठाता है) ।

अश्वत्थामा—राजा दुर्योधन,

५ इति पक्षेः कमरच् । शीघ्रिः अस्मि ।] शीघ्रिः शीघ्रपत्यम् । अत इय  
यः । कि कृत्या । अतुस्तमाङ्गे स्वर्ग स्मृता । अह कीदृशः । अनध्वजितो  
नापि जितः । हेतिरस्त्रम् । कल्पः प्रलयः । अस्मरो नायकः ॥३७॥

[समाध्यतां संभाव्यताम् ।] इत आरब्धतामिहोपविशतु ॥

कर्णेन कर्णं सुभवं बहु यत्तदुक्ता

यन्तद्गरेषु विहितं विदितं द्रव्या तत् ।

द्रोणिमध्यधिज्यघनुगगतितोऽभ्यमित्र-

मेपोऽगुना त्यज नृप प्रतिकारचिन्ताम् ॥३८॥

बुधोऽगुनः (गाम्भिर्यम्) माभ्यर्गुय,

अयसानेऽग्निराजस्य योद्धव्यं भवता किल ।

ममाप्यन्तं प्रतीक्षस्य कः कर्णः कः सुयोधनः ॥३९॥

अभ्यर्थात्— (गाम्भिर्यम्) कथमद्यापि त एव कर्मरक्षणान्, आत्मानं च

परिभयः । (प्रकाशम्) राजन्कोत्सेधर, एवं भवतु । (इति निश्चालः)

उत्तराहः— यत्त, क एव ते व्यामोहो यस्मिन्प्रति काने एवंविधस्य

भागस्याभ्यर्थात् नो बाध्यालक्ष्येणापराधमुपस्थापयति ।

बुधोऽगुनः— किमस्यात्रिपमृतं च मयोक्तम् । किं वा तेनं ज्ञोयस्या

पश्य—

अकलितमहिमानं क्षत्रियैरात्तचापैः

. समरशिरसि युष्मद्भ्याम्यक्षोपाद्विपन्नम् ।

परिवदति समक्षं मित्रमङ्गाधिराजं

मम खलु कथयास्मिन्को विशेषोऽर्जुने वा ॥४०॥

उत्तराहः— यत्त, तद्यापि कोऽत्र दोषः । अवसानमिदानीं भरतकुलस्य । तं

किमिदानीं करोमि मन्दभाग्यः (विपिन्त्य) मयस्त्वेवं तावत् । संख्य, सङ्ख्या

कर्णेनेति । [कर्णेन यत् कर्णयोः सुभवं तद् बहु उपस्था सगरेषु यतिं

तत्त्वया विदितम् । हे नृप एष द्रोणिः । अधिरुद्धा ज्या यस्य तदधिज्यं घनुः

सः अधिज्यघनुः । समासान्तविधेरनित्यवत्तात् अन्तर् । अनुना अन्धमित्रं अनिष्ट

एवमभिमुखम् । लक्षणेनाभिप्रेतौ इत्यव्ययीभावः ।] अस्ति तदयं कृत्वा

आगतः । अनो हे नृप प्रतिकारचिन्ता त्यज । मयैव सर्वं प्रतीतं

इति भावः ॥३८॥

कर्म ने जानों को अच्छी लगने वाली बहुत-सी (घत्तत्) बातें कहकर मुझ  
को कुछ किया है, वह आपकी विदित है। मेरी चढ़ी हुई पशुप घाला, यह  
मेरा (अवस्थापना) राज्य के सम्मुख आ गया है। हे राजा, अब प्रतिकार  
लाना छोड़ दो ॥३८॥

पौषन—(चिढ़कर) आचार्य-पुत्र,

तुम्हारे तो कर्म के सपात हो जाने पर ही मुझ करना है, (अब) मेरी जो  
प्रतीक्षा कर तो। कर्म क्या? सुपौषन क्या? ॥३९॥

आचार्य—(धन में) क्या? आज भी वही कर्म के प्रति वसवात और  
निःतिरस्कार। (प्रकट में) कौरवों के अधिपति राजा, ऐसा ही सही।  
(दूर बाहर जाता है)।

एतद्—पुत्र, यह तेरा कैसा मति-विभ्रम है कि इस समय भी ऐसे  
अवस्थापना में जानों की कठोरता से विराग उत्पन्न कर रहे हो?

धन—मैंने इससे कबु और असाव क्या कहा है? अथवा क्या यह भीष  
नहीं है? देखिये—

मैंने अश्विनी की जिसकी महिमा न जान सके; जो तुम्हारे भाग्य के  
में भर गया, अङ्गदेय के अधिपति (उत्त) मित्र की (मेरे) सामने  
ग है; तब अतलाइये, मेरे लिए इसमें क्या अर्थन ॥ क्या भेद  
।

६—अस, इसमें तेरा भी क्या रोग है? अब भारत-कुल का अवन  
)। संजय, इस समय मैं अज्ञात क्या कहूँ? (सोचकर) अच्छा,

न इति। किल निश्चये। कः कर्म इति। तथा च बलमुपौषनदीन  
भावः ॥३९॥

तेति। [आतः चारः ईस्ते आसपापास्तैः सविर्वैः अवहितः न  
गतं महिमा यस्य तं मुष्मद्भाग्यदोषान् न तु अतामर्ष्यादौत-  
सिद्धिनि विषमं नष्टं मृनमित्यर्थः। अथ मित्रमङ्गाधिराजं कर्म  
परिचरति निन्दति। अतः] अस्मिन्नवस्थापनन्दर्पुने वा मम पशु  
हे तान् तं विरोधं कथय। अमु निश्चयेन। तयोः इत्या न भेद

ब्रूहि भारद्वाजमन्त्रस्थामानम् ।

स्मरति न भवान्पीतं स्तन्यं विभज्य सहामुना

मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः ।

अनुजनिधनस्फीताच्छ्लोकादतिप्रणयाच्च य-

द्वचनविकृतिष्वस्य क्रोधो मुधा क्रियते त्वया ॥४१॥

संज्ञयः—यदाज्ञापयति तातः । (इत्युत्तिष्ठति)

धृतराष्ट्रः—अपि चेदमग्न्यस्त्वया वक्तव्यम् ।

यन्मोचितस्तव पिता वितथेन शस्त्रं

यत्तादृशः परिभवः स तथाविधोऽभूत् ।

एतद्विचिन्त्य बलमात्मनि पौरुषं च

दुर्योधनोक्तमपहाय विधास्यसीति ॥४२॥

संज्ञयः—यदाज्ञापयति तातः । (इति निष्क्रान्तः)

दुर्योधनः—सुत, साह्प्रामिषं मे रथमुपकल्पय ।

सुतः—यदाज्ञापयत्यमुष्मान् । (इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः—गान्धारी, इतो वर्यं यद्वाविवर्ततेः शस्त्रस्य शिबिरमेव यत्  
वास, त्वमप्येषं कुरु ।

( इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे )

❀ इति पञ्चमोऽङ्कः ❀

स्मरतीति [भवानमुना दुर्योधनेन सह विभज्य पीतं स्तनयोर्धनं  
गान्धार्याः स्तनयः । धृतीराज्यवाच इति यन् । तथा च बाल्ये त्वद-  
ङ्गविवर्तनैः] त्वदङ्गविवर्तनैस्त्वच्छरीरपरिवर्तनैः । मृदितं [मृदितं] मम  
पट्टरथं न स्मरति किम् । यदस्य दुर्योधनस्य [अनुजानो यथेन स्तन्यं  
पिताम् । गान्धारी वृद्धो इत्यतः शत्रुः स्त्री निष्ठायाविति स्त्रीभावः ।] इति  
धृतीराज्यं शोचानिप्रमपाननिप्रमवाच मनुजननिहृतिषु संजीवु त्वया कुतः  
कोपः क्रियते । न कर्तुंमर्हसीत्यर्थः ॥४१॥

। यहें । संजय, मेरी ओर से अरुद्राज-कुलोत्पन्न अरवाणाय से कहो—  
 मा मातरो ह्य (दुर्योधन) के साथ बाँट कर पिया गया (इसकी माता  
 तुम ओर शल्यावर्णा में अपने अङ्गों की तोट-बोट से दुखता हुआ मेरा  
 एक पाद नहीं है, जो तुम छोटे माइयों की मृत्यु से बड़े हुए शोक और  
 [हे इति] अत्यधिक श्रेय के कारण बड़े गये इसके अनुचित वचनों पर  
 ही श्रेय कर रहे हो ॥४१॥

संजय—साल, जो माता हैं । (यह कहकर उठता है) ।

अरुद्र—और तुम यह ओर कहना—

मे अस्तव द्वारा तुम्हारे पिता से शस्त्र छुड़वा दिया था और जो तुम्हारे  
 में वह उस प्रकार का इनाम बड़ा अपमान हुआ था, इसका तथा अपने  
 [र पराक्रम का विचार करके आज दुर्योधन के बड़े की उद्देश्य करके अचरम  
 ४) करते हैं ।

संजय—पिता की अंशो आशा हो । (यह कहकर बाहर जाता है) ।

विनय—सूत, हमारा युद्ध का रथ तैयार करो ।

।—आपुष्पाम्बु जो माता हैं । (यह कहकर निकल जाता है) ।

अरुद्र—गान्धारी, हम यहीं से मगध देश के स्वामी शल्य के शिबिर में  
 । हैं । पुत्र, तुम भी ऐसा ही करो ।

( इस प्रकार घूमकर सब निवस जाते हैं )

### ॐ पञ्चम अङ्क समाप्त ॐ

ति । [यत् सत्र पिता पाण्डवैः वितथेन असत्येन । गजे मृते त्व मृत  
 एतेन शस्त्र मोचितस्त्वामितः । यत् च साहयः तथास्थितस्य तथाविधः  
 अमृत एतद् विचिन्त्य आत्मनि बल पौरुषं च विभिन्य । यज्ञा  
 प्रसिद्धः । तथाविधस्तत्प्रकारकः । एतद्विचिन्त्यारमनि बल सामर्थ्यं  
 विधास्यसीति वक्तव्यमित्यन्वयः । किं कृत्वा । दुर्योधनोक्तं उपस्था ।  
 वेयास्यसीत्यत्र प्रतीकारमिति शेष इत्युक्तं ॥४२॥

अमृतं यं रत्नधरो गुणोच्चो नानागुणाढ्या दमयन्तिकामि ।  
 भगदरं तस्य कृतौ प्रयाती वन्दे मनोहारिणि पञ्चमोऽङ्कः ॥

## पष्ठोऽङ्कः

( ततः प्रविशन्नायामनग्नो युधिष्ठिरो द्रोणदी चेटी पुरुषश्च )

युधिष्ठिरः—(विचिन्त्य निःश्वास्य च)

तीर्थं भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निवृत्तं  
कर्णाशीविषभोगिनि प्रक्षमिते द्रक्ष्ये च याते दिवम् ।  
भीमेन प्रियसाहसेन रमसात्स्वल्पावशेषे जये  
सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः ॥१॥

द्रोणदी—(मवाप्स्यम्) महाराज, पात्रालयेति किं न भणितम् ।

[महाराज पञ्चानिष्टं त्वि किं एव भणितम् ।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, मनु मया । (पुरुषमवलोक्य) बुधक,

पुरुषः—देव, आतापय ।

युधिष्ठिरः—उच्यतां सहदेवः—कृद्भयं कुकोवरस्यापर्वदित्वाकृणां प्रति  
मुपलभ्य प्रनष्टस्य भागिनः कौरवराजस्य पदवीनन्वेष्टुमितिनिपुणमतपस्तेषु  
स्थानेषु परमार्थाभिज्ञाकराः सुसंविदाश्च भक्तिमन्तः सन्पुण्ड्रहरव्यासयोश्च

तीर्थं इति । [भीष्म एव महोदधिस्तस्मिन् कथमपि मृता प्रयाये  
तीर्थेऽतिप्रान्ते । द्रोण एव अनलस्तस्मिन् निवृत्ति उपरान्ते । कर्ण एव अत्र  
सर्पदंष्ट्रा तत्र विषं यस्य तादृशो यो भीमी सर्पस्तस्मिन् । कर्णाशीविषद्विर्दोष  
इति शब्दभेदः । भोगः मुक्ते स्थादिभृतावहेश्च फणकाययोः । इति विधाः  
यद्यप्यत्रैकपादेनैवापरं गतार्थं तथापि विधोस्त्वणविषधरजायनार्थं तदुक्तम् । यत्र  
आशयां विष यत्र भीमे शरीरे सोऽग्रयास्तीत्याशीविषभोगी विषधरः ।  
त्युत्पत्तिः । न चात्रापि गतार्थता । विशिष्टनाम्नो विवक्षाया अपर्यनुयोज्यतादि  
देक् । दिव्यं स्वर्गम् । स्वल्पावशेषेऽपि जये सति [प्रियं साहसं यस्य ॥ प्रियं  
साहसस्तेन] भीमेनामी सर्वे वयं रमसान् वाचा प्रतिज्ञारूपया जीवितसंशयं

## पष्ठ अङ्क

( सत्यवान् आसन पर बैठा हुआ युधिष्ठिर, द्रौपदी, बेटी और पुरण प्रवेश करता है । )

युधिष्ठिर—( नीबकर और सम्भा साँस लेकर ) ।

किसी प्रकार भीष्म-कपी महामागर को धार कर लेने पर, द्रोणकपी अग्नि के शान्त हो जाने पर, कर्णकपी कर्ण के शपथ कर दिये जाने पर और अश्व के स्वर्ग चले जाने पर विजय के स्वतन्त्र ही शेष रह जाने पर साहस-प्रिय नीम ने आदेश के कारण अपने वचन से यह हम सबके प्राण संशय में डाल दिये हैं ॥१॥

द्रौपदी—( मीनूजो के साथ ) महाराज, पाञ्चाली ने ( संशय में डाला है ), हम क्यों नहीं कहा ?

युधिष्ठिर—कृष्णा, निश्चय से मैने ही ( संशय में डाला है ) । ( पुरण को पहर ) बुधक ।

पुरण—महाराज, आता कीजिये ।

युधिष्ठिर—सहदेव से कहो—बुध हुए भीम की आज्ञा ही पूर्ण होने वाली यदुर प्रतिज्ञा जो जानकर छिपे हुए अग्निमानो वीरवाधिविपति के भारों का ता लगाने के लिए तीव्र बुद्धि वाले तथा भिन्न-भिन्न स्वभावों की वस्तुस्थिति । जानने वाले, ( हमारे प्रति ) अस्ति रहने वाले, तीव्र बुद्धि के शत्रु से लड़ा करने वाले, सुधीषन की गति-विधि को जानने वाले और धन एवं शरीरविना इत्यन्वयः ॥१॥

अर्धुविता ज्ञान्यदिनयाविनीम् । अजहरम भुतम्भ । वदुपटह्योचताः निगुर्ण  
रु वादयन्तः । [ वदुः यः वदुहस्य दुःखुविधोयस्य स्वस्तेन व्यन्ता घोषणा  
गं मे तथोताः । ] प्रतिधुता देयस्तेन प्रतिज्ञाणा छनेन पुत्रया च प्रतुगविता  
गं ते । यदा धन पुत्रा बहुमानस्य प्रतुगविता च देता ते तथोताः ।  
कनपञ्चदं दुरोचानुचर्त्ता देयमेतः ।





सम्मान द्वारा प्रत्युत्पादन का बंधन दिये गये गुप्तचर और योग्य मन्त्री सम्मिलित में चारों ओर घूमें ।

और भी—

बीच में या बाग़ के सह पर-छिये हुए मार्ग को जानने वाले घोवर जायें; कुत्तों की सततारों के समूह से परिचित ग्वाले कुत्तों में जायें; अपने मीठ ब्राह्मण-विद्वानों को जानने वाले व्याख (शिकारी), जो कान्हराओं को भी पकड़-बाँधते हों, व्याखों से व्याख सरणों में घूम और जिन गुरुवरों ने निश्चय का देव बताया हुआ हो, वे अत्येक तपोवन में जायें ॥२॥

प्रश्न—महाराज कैसी आशा हैं ।

**पुनिहरि—**ठहरो : ओर सहदेव से यह कहना—

एकान्त में शय्यासहित बात-चीत करते हुए, सोवे हुए, रोग से पीड़ित और  
 कष्ट के कष्ट में हुए (मोर्गों) की छान-बीन करनी चाहिये। जहाँ वस्तु भयभीत  
 हो रहे हों, जहाँ वस्तुओं का कोलाहल हो और जहाँ राजा के लक्ष्मियों से युक्त  
 वस्तुओं के विप्लव हों, (उन स्थानों की भी) छान-बीन करनी चाहिये ॥३॥

सुर्य—महाराज को जाता है । (यह बहुराज बाहर जाकर फिर प्रवेश करके द्वार के साथ) महाराज, पाठशाला आया है ।

मुषिहिर—हीम्र भग्दर लामो ।

पुरष—(बाहर आकर वाक्छालक के साथ प्रवेश करते) यह महाराज है।  
वाक्छालक तभीय जाये।

तिष्ठत्यभ्रमाः तिष्ठदुःखचिह्नकम् । अरा एव आरा । अराविदाभरायोऽयं  
 उवाच य एव दे निगुणात्मक ते वक्ष्यन्तिवदि आच. ॥३॥

शेषा इति । एह एकाग्रो यत्किंचिद्व्यवहारमात्रमस्तीति ज्ञेयाः । एव  
 मृता शेषा । [ एता आता शेषा-वदितया विवेका दान्ता ] वदितविवेका मृता ।  
 य शेषाः । [ एव वदितम् एतामे मृताणां ज्ञानः योनिः । एतामे मृता एवम् ।  
 एव वदितं विदितं । वास्तविकेताम् । य य वास्तव वदितम् मृताम्, वदित-  
 निवेगोपपत्तिः शेषम् । ] मृताणां वास्तविकं वास्तविकं एव वास्तविकताम् एवम्  
 एव एति एतामेति शेषा-वदितम् । एव वदितम् एतामे य इति विदितं  
 वदितम् इति इति । मृताम्

मुयोद्यनतं चारवेदिनः प्रतिभृतयनपूजाप्रत्युपस्थिताभरन्तु समन्तात्प्रयत्नपञ्चन  
अपि च ।

पङ्क्ते वा सैकने वा मुनिभृतपदवीवेदिनो यान्तु दाशाः  
कुञ्जेषु द्युष्णवीरद्विचयपरिचया बह्वक्वाः संवरन्तु ।  
व्याघ्रा व्याघ्राटवीपु स्वपरपदविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञा  
ये सिद्धव्यञ्जना वा प्रतिमुनिनित्यं ते च चाराभरन्तु ॥२॥

पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः ।

मुषिष्ठिरः—तिष्ठ । एवं च वस्तव्यः सहदेवः ।

ज्ञेया रहः शङ्कितमालपन्तः सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः  
श्रामो मृगाणां वयसां विरावो नृपाङ्गुपादप्रतिमाश्च यव  
पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य सर्वत्र)

पाञ्चालकः प्राप्तः ।

मुषिष्ठिरः—स्वर्ति प्रवेशय ।

पुरुषः—(निष्क्रम्य पाञ्चालकेन सह प्रविश्य) एव देवः । इति

पाञ्चालकः ।

पङ्क्तु इति । पङ्क्ते कर्मणे [पङ्क्तुमयदेशे इत्यर्थः] । सैकने वापुःपञ्चन  
वा । निकताशर्कराभ्यामित्यण् मरत्यर्थे । मुनिभृतापनिभृता वापी द  
विदन्तीति वेदिनः दाशाः शीवराः यान्तु दुर्योधनाग्नेयगुप्तादेनि केन । ई  
दाशशीवरी इत्यमरः । कुञ्जेषु सनादिपिहिनेषु स्थानेषु कुण्डः वन ।  
वीरद्विचयो सनासपस्तस्य परिचयो ज्ञानं येषां ते । बह्वक्वा गोत्रा वरपु  
[ये व्याघ्राः स्वेना वरेषां च पदानि विदन्ति इति स्वपरपरिचयः] । व्याघ्रा  
गुहादिविषये अभिज्ञाः ते । व्याघ्रप्रचुरा वरव्यः व्याघ्राटम्यानाम् । दाशा  
दिवस्त्रमासः । वरन्तु । ये वा ये च चाराः निद्रायां बोधितां जातान् देवः  
तथा । मुनिनित्यं मुनिनित्यं प्रतिमुनिनित्यं वरन्तु । वरन्तु । वरन्तु  
अटव्यो वनानि । तान्मु अन्वपुर्गः  
निद्रावन्तपवाधनेकाः

म्यान द्वारा प्रत्युपकार का वचन दिये गये गुप्तचर और योग्य मन्त्री समस्त-  
ज्वक में घारों ओर घूमें ।

और भी—

कोच में या बालु के तट पर-छिये हुए मार्ग को जानने वाले धीवर जायें;  
वही हुई सत्ताओं के समूह से परिचित ग्वाले कुञ्जों में जायें; अपने और  
जिसे पर-चिह्नों को जानने वाले व्याघ्र (शिकारी), जो कन्दराओं की भी  
भी-भांति जानते हों, व्याघ्रों से व्याघ्र मरणों में घूमें और जिन गुप्तघरों में  
झों का रेष बनाया हुआ हो, वे प्रत्येक तपोवन में जायें ॥२॥

पुरुष—महाराज जैसी आज्ञा है ।

पुधिहिर—अहो ! और सहदेव से यह कहना—

एकाग्र में शङ्खालहित बाल-बोत करते हुए, सोये हुए, रोग से पीड़ित और  
। के वश में हुए (भोगों) की छान-बीन करनी चाहिये । जहाँ वशु भ्रमभीत  
ए हों, जहाँ पत्थियों का कोलाहल हो और जहाँ राजा के लक्षणों से युक्त  
। के बिलों हों, (उन स्थानों की भी) छान-बीन करनी चाहिये ॥३॥

पुरुष—महाराज जो आज्ञा है । (यह कहकर बाहर जाकर फिर प्रवेस  
के द्वार के साथ) महाराज, वाञ्छालोक आया है ।

पुधिहिर—हीन अन्दर लामो ।

पुरुष—(बाहर जाकर वाञ्छालोक के साथ प्रवेस करके) यह महाराज हैं ।  
स्वागत समीप जायें ।

इत्यञ्जनाः तिस्रपुष्पचिह्नवन्तः । चरा एव चराः । प्रजाशित्वात्स्वार्थेऽङ्ग  
। न च यत्र ये निपुणस्तत्र ते गच्छन्तिवति भावः ॥२॥

जैया इति । यह एकान्ते शङ्खितं शक्यस्वदमाधनन्ती जना जैयाः । एव  
। जैया [ज्या आतां जैयाः मदिराया विषेया दासाः] मदिराविषेया मत्ताः ।  
जैयाः । [यत्र मस्मिन् स्थाने मृगालां जातः भूति । तत्तदाः चेष्टा इत्यर्थः ।  
। वयसो विराजः । मानुषप्रवेशान् । न च मानुषः कदाचिद् कुमोऽनः इत्यादि-  
हेतोस्तदपि जैयम् ।] कृपांको राजचिह्नं मत्स्यादि यत्र पादप्रतिमायां ताव  
। तानि स्थानानि जैयानीत्यन्वयः । जयः पतिरिति वाक्ये च इति  
तेषां प्रतिदृष्टिः ॥३॥



यान द्वारा प्रत्युपकार का वचन दिये गये गुप्तचर और योग्य मन्त्री सम्मन्त-  
वत् में चारों ओर घूमें ।

और भी—

गोचर में या शत्रु के तट पर-छिये हुए मार्ग को जानने वाले घीवर जायें;  
भी हुई सत्ताओं के समुह से परिचित ग्वाले कुञ्जों में जायें; अपने और  
ते पर-चिह्नों को जानने वाले व्याघ्र (शिकारी), जो कन्दराओं की भी  
भेद-गति जानते हों, ग्वाघ्रों से व्याघ्र अरन्धों में घूमें और जिन गुप्तचरों ने  
ही का श्रेय बनाया हुआ हो, वे प्रत्येक तपोवन में जायें ॥२॥

पुरव—महाराज जैसी आज्ञा हैं ।

पुषिहिर—ठहरो । और सहदेव से यह कहना—

एकाल में शङ्कासहित बात-चीत करते हुए, सोये हुए, रोग से पीड़ित और  
के वरा में हुए (लोभों) की छान-बीन करनी चाहिये । जहाँ पशु सम्पन्न  
हैं ही, जहाँ पक्षियों का कोलाहल हो और जहाँ राजा के लसनों से गुप्त  
के बिल्लों हों, (उन रवाओं को भी) छान-बीन करनी चाहिये ॥३॥

पुरव—महाराज जो आज्ञा हैं । (यह कहकर बाहर जाकर फिर प्रवेश  
। हर्ष के साथ) महाराज, वाञ्छनालक आया है ।

पुषिहिर—सीधे अन्दर लाओ ।

पुरव—(बाहर जाकर वाञ्छनालक के साथ प्रवेश करके) यह महाराज है ।  
बालक समीप आये ।

मधुप्रभाः मित्रपुरवविह्वलः । अरा एव वाराः । अजातिवात्सर्वाः नृ  
य दय मे निगुलात्मनः के वचनन्तिनि वाच. ॥२॥

मेधा इति । यह एकान्ते अहिर्नृप वरासपदवात्सल्यो बना मेधाः । एव  
मेधा [रजा जार्ज मेधाः मरिराया विधेया वाचा] मरिराविधेया मत्ताः ।

विदाः । [एव मरिमन् रवाने धृमाली वाचः लोनि । एहजाः वेदु इत्यर्थः ।

वयसो विरावः । मादुवद्वेत्ता ॥ ५

विह्वलः विह्वलः ।

विह्वलः विह्वलः ।

विह्वलः विह्वलः ।

विह्वलः विह्वलः ।



पाञ्चालक—जय हो, महाराज की जय हो ! महाराज और महारानी को जय समाचार सुनाता हूँ ।

पुष्पिहिर—भद्र पाञ्चालक, क्या उस दुष्टात्मा नीच कौरव का पद-मार्ग ल गया है ?

पाञ्चालक—महाराज, केवल उसका पद-मार्ग ही नहीं, प्रत्युत महारानी के भी और बरजों के हर एक भी महापातक का मुख्य हेतु वह दुष्टात्मा ही मिल रहा है ।

पुष्पिहिर—शाबाश ! भद्र, तुमने प्रिय समाचार बतलाया । तो क्या लाई भी दिया ?

पाञ्चालक—महाराज, युद्ध में आये हुये को पुछिये ।

द्रौपदी—(भयपूर्वक) क्यों ? मेरे स्वामी युद्ध में उतरे हुए हैं ?

पुष्पिहिर—(आश्चर्य के साथ) क्या सचमुच मेरा बल युद्ध कर रहा है ?

पाञ्चालक—सचमुच । क्या महाराज से असत्य निवेदन किया जायेगा ?

पुष्पिहिर—

महाम् पराक्रम वाले (युद्ध) का भी बिना कारण ही भयभीत बिल केवल-मान्य को प्राप्त हो जाता है । मैं युद्ध में उठी हुई नवा वाले भीम की शक्तों के बल को जानता हूँ, (लेकिन फिर भी) आश्चर्यित हूँ ॥१४॥

(द्रौपदी को देखकर) मरने और अत्रिष्ट, हे प्रिया, पहले राज-सभा में युद्धजनों, वधुओं और सहस्रों राजाओं के मिले हमारा जो यह अपमान हुआ था, सम्भवतः आज या तो हमारे प्राणों का नाश या वधु-पुत्र्य कौरव-प्रति के प्राणों का नाश दोनों ही बल (अपमान) पर पहुँचा देंगे ॥१५॥

श्री । अनुविनायि विजयापुष्पिकमस्तव इति पाठे मम पत्नी विवेकपतिम्बर-

स्नेहान्मम । धनुषा यद्यपि मम प्राणा न ॥१५॥

हे

वित्तयेव कर्म पारं यमपति ।

प्रापविनायः पुष्पपिपयोः प्राणः





गण की स्वेच्छाचारिता को दोष देने पर कुमार भीमसेन का परिचित कोई  
 पुत्र, जिसने मांस-राशि एक ओर रख दी और जिसके चरण तया वस्त्र लाजे  
 गये हुये हरिण (के दधिर) हैं ताल मे, जल्दी करता हुआ समीप आकर कड़ोर  
 लाल में धुब जाने के कारण अब-मुने वर्षों से जाने गये वर्षों वाली बाणी से  
 कहा—'महाराज कुमार, इस महान् जलाशय के किनारे पर दो पद-पद्धतियों के  
 चित्र पड़े हुए हैं। उनमें से एक भूमि पर दधिरस मौंट कर आई है, दूसरी  
 नहीं। भागे कुमार का अविचार है।' इसके परचाव हम सब उसे ही भागे  
 करते चल पड़े। तालाब के किनारे जाकर सुयोधन के पद-चिह्न (के रूप में)  
 वाली गई पद-पद्धति को पाकर मगधान् वासुदेव ने कहा—'हे घोर वृकोदर,  
 सुयोधन जल-स्नानमयी बिछा जा जाता है। इसलिये अवश्य ही वह तेरे भय से  
 इस महान् जलाशय में लेटा हुआ होगा। यलराम के छोटे भाई (हरिण) के  
 से वचन को सुनकर, जलाशय के जल का (इस प्रकार) आलोडन करके और  
 मजदूर गर्जन करके कि (जल में) सब रिशामों के गह्वरों को भर दिया और  
 फिर भी अधिक था; जल-अन्तुओं और पक्षियों के समूह घबरा गये और भय  
 के कारण धड़ियाल और मगरमच्छ भागने लगे, कुमार वृकोदर ने कहा—अरे  
 ओ, व्यर्थ प्रकट किये गये भूटें वीर्य पर अभिमान करने वाले, पाञ्चाल  
 राजकुमारी के केश और वस्त्र को छींचने का महाधतक करने वाले, दतराह  
 के बीच पुत्र,

हे नरपशु, तू चण्ड के निर्मल कुल में अपना जन्म जतलाता है, तू अब भी  
 मेरा धारण कर रहा है; तू दुःशासन के गरम दधिर कभी मछ से मत हुए मुग  
 (भीम) को अपना शत्रु समझता है; वर्ष से अग्रा तू मधु और कंदम के शत्रु  
 वृष्ण के प्रति भी उच्छृङ्खल देहा करता है; लेकिन अब मेरे डर में मुड़-भेज  
 ने छोड़कर कीचड़ में छिपा है ॥३॥

अनेति [व्यपदिशति वचयति । दुःशासनस्य कोष्थं निचिदुत्तु लोहितमेव  
 पु तेन तत्पानेन क्षीर्वं मत्तम् । कोष्णमित्यत्र ईषदर्थे इति कोः वारेशः ।]  
 क्षीरं मत्तम् । [दर्पनालो विवेकशून्यः । मधुकंदमद्विनि तन्नामकंदेश्वरी ।  
 इतमचिनयेन भागते ।] मृष्यो अनाथव । इह क्षिणामावमयसंक्षिः । दराह—  
 पिशोपोक्तिः क्षतिर्यता इति ॥३॥

अथ च । भो मानाञ्च,

पाञ्चात्या मन्युबह्विः स्फुटमुपगमितप्राय एव प्रमह  
व्यागर्कः केशपाशैर्हतपतिषु मया कीरवान्तःपुरेषु ।

धातुर्दुःसागनस्य स्रवदभृगुरसः पीयमानं निरीक्ष्य  
क्रोधान्कि भीमसेने विहितमममये यस्यदास्तोऽभिमानः ।

श्रीपरी - नाथ, अपनीतो मे मन्युबंदि पुनरपि मुनर्ष इमानं परिष्यति ।

[आह अपनीतो मे मन्यु उद पुनो वि मुनर्ष इत्यु पविस्ति ।]

पुषिष्ठिरः—इप्से, नामदुत्तानि ध्याहर्तुमर्हस्यस्मिन्वाये । भद्र, तत्त्वतः ।

पाञ्चात्यकः—देव, तत्त्वत्वं मायमानेन युकोदरेणावनीर्षं क्रोपोद्वयभक्ति

भीषणगदापाणिना सहसंकोसहिततोरमुत्तन्नतिभोजनमपविष्टपुष्टि

भ्रान्तमत्स्यशुभ्रगतिभरवारवभ्रमितदारिसंचयमापतमपि तत्परः ॥

श्रितम् ।

पुषिष्ठिरः—भद्र, तथापि किं नोत्थितः ।

पाञ्चात्यकः—देव, कथं नोत्थितः ।

त्यक्त्वोत्थितः सरभसं सरसः स सूल-

मुदभूतकोपदहनोप्रविपस्फुलिङ्गः ।

पाञ्चात्या इति । कीरवान्तःपुरेषु मया [प्रमह बलाद् हठाः क  
तेषु] हतपतिषु सत्सु तदीयकेशपाशैर्ग्यासकतैः संबद्धैः [व्यत्यस्तैः]  
मन्युबह्विरुपगमितप्राय एवेत्यन्वयः । दुःशासनवत्सलः सद्रुतं मया पं  
मालोक्य त्वया मयि भीमसेने किं विहितं यदसमयेऽजाने [प्रतिकारोपि  
सत्यपीत्यर्थः ।] एव मानोऽस्तस्यक्तस्त्वया । इदानीं स वर्तुमर्हतीति भाव

अपनीतो नाथेन मम मन्युबंदि पुनरपि मुनर्ष इमानं स भवि  
[श्रीपेनोद्वतमुद्रुट यथा तथा भ्रमिता या भीषणा यदा सा पाशो दस्य ।

नलिनीवनं यस्मिन् । अपविष्टा विलिप्ता अत एव मूषि

! ओ, अरे इयं के अन्धे,

हारा कौरवों के अन्तःपुर के पतियों के अत्युत्तम मार दिये जाने पर  
हे इयं केतो ने इयं के ओयकपी अन्त को समस्त शान्त कर दिया है,  
न) एव (हे); अपने भाई दुःशासन के मक्ष सम से बहते हुए द्वापर को  
ले जाया देखकर ओय के कारण तुने भीमसेन के प्रति क्या कर दिया है कि  
तुने अत्यन्त में ही अभिमान रवाना दिया है ॥८॥

श्रीश्री—माय, मेरा जोर दूर ही जाय यदि फिर (दुष्कार) अर्थात् अत्यन्त  
जाये ।

दुषिद्धि—इत्या, इस समय अत्यन्त बचन कहना उचित नहीं है । अतः,  
के बाद ?

वाक्यान्तक—महाराज, तब इस प्रकार कहते हुए भीमसेन ने, जिसके हाथ  
ओय के कारण खोर से घुमाई गई भयङ्कर गया थी, उतरकर उस विशाल  
तट को भी पारों ओर इस प्रकार खोर से मच जाता कि उसका तट (पानी  
1) लाय दिया गया; कर्मनिधियों का समूह बह हो गया; बाह्य बाह्य केक  
गये तथा धुँधिल हो गये, अन्तरी और कभी घबरा गये और अन्त-समूह  
विषय भयङ्कर तट के साथ बहुर जाने लगा ।

दुषिद्धि—अतः, क्या (बहु) फिर भी नहीं उठा ?

वाक्यान्तक—महाराज, उठा नहीं ।

अतः मने हुए ओर-सागर से बालकृत के समान, ओय की चोटी गई बुद्धिभी  
अन्तरात्मा के अन्तर्गत में बहु (दुष्कृत), जिसमें से ओयान्तिकी भयङ्कर

वदुः । द्वापर-अन्तःपुरः । द्वापर-अन्तःपुरः । द्वापर-अन्तःपुरः । द्वापर-अन्तःपुरः ।  
द्विष्यन्ति-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः ।  
अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः ।

अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः ।  
अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः । अन्तःपुर-अन्तःपुरः ।

आयस्तभीमभुजमन्दरवेङ्गनाभिः

क्षीरोदधेः सुमथितादिव कालकूटः ॥६॥

सुविष्टिरः—साधु, सुसन्निध, साधु ।

द्रोणवी—प्रतिपन्नः समरो न वा । [पट्टिवण्णो समरो एव वा ।]

पाञ्चजातकः—उत्थाय च तस्मात्सलिलाशवारकरपुगमोत्तन्निहतनोरपोऽ

भीमगदः कथयति स्म—‘अरे रे मास्ते, किं भवेन प्रसीनं बुयोधनं मयते मया  
मूढ, अनिहतपाण्डुपुत्रः प्रकाशं सज्जमानो विश्वमितुमध्यवसितवानस्मि यज्ञानम्  
एवं चोभते वासुदेवकिरीटिभ्यां द्वावप्यन्तःसलिलं निविद्धसमरसमारम्भो र्वेन  
मुत्तारितो भीमभुयोधनो । आसीनश्च कीरवराजः सलिलले परां निक्षिप्य  
विशीर्णरपसहस्रं निहतकुक्षतगजवाजिनरसहस्रकलेवरसंमर्षसंपतद्गुणकङ्कडम्  
कमुत्सन्नमुरोपमस्मद्वीरपुत्तसिहनाखमपमित्रबाण्यवमकीरवं एतस्यानमवतीतवान्  
तमुष्णं च निःश्वसितवान् । ततश्च कुक्षोदरेणाभिहितम्— अवि भोः कीरवाजे,  
दुर्तं बभूवुनाशदर्शनमाप्नुवाम । मर्षं विधातुं कृपाः पर्याप्ताः पाण्डवाः समस्तपाण्ड-  
वसहाय इति ।

पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन ।

दंशितस्यात्तदास्त्वस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥१०॥

इत्थं च भूरधाम्नायिनी हृदि कुमारयोनिशिष्योत्तवाग्यार्तराजः ।

म तथा । आयस्त. शिस्तः [आयस्ती विजितो भीमस्य युगावेव म-  
वेङ्गनाभिः] वेङ्गना चाननम् ॥६॥

अथ प्रतिपन्नो मानः [अङ्गीकृतः] । [करबुधनेन] उत्तन्निहतो  
एव मोरपमदरी इना मया येन म तथा । [विशीर्णानि मयानि विर-  
वा रथाना महयाणि मयिन् । निहृतं मारुदवनं तस्य एतवाजिनरवः  
च कलेवराणि तेन समदर्शनस्मिन् पनम्नो मुध्याश्च २० वरिष्व ॥  
मरीचम् । अङ्गुलः शृणानः । [आपन्ना विपानि बाण्यवाश्च वरणाः ।  
आपन्नाः [मयर्षाः] ।

पञ्चजातिनि १ अस्माक मय्ये । [सुयोधं सुभेन योधनीयम् ।] ॥६॥

त के सुनिह (चिनयारी, कम) निकल रहे थे, तासाव को तलहटी छोड़कर लेते बढा ॥१॥

पुर्णितर—धन्य, और शत्रिय, धन्य ।

श्रीराम—(उसने) पुत्र (भी) किया अपका नहीं ?

पातालक—और उत तासाव से उठकर (निकलकर) दोनों हाथों से लाई हुई और तोरण बनाई हुई भयङ्कर मरा वाला वह बहने लगा—‘अरे भी मन-पुत्र, क्या आप पुष्योषन को भय के कारण छिपा हुआ समझते हैं ? सूर्य, जग के पुत्रों को बिना मारे प्रकट में लजित होते हुए मैंने पाताल में बिधाय ले का निरक्षय किया था ।’ इस प्रकार कहने पर बामुदेव और अर्जुन, भीम और पुष्योषन दोनों को ही, जल के अन्दर जिनके बुद्ध कर्म को रोक दिया था, जो पर ले भाये । तब मरा को भूमि पर खेंककर बैठते हुए कीरव-राज ने दोनों से शून्य रण-भूमि को देखकर, जिसमें सहजों रच दूटे पड़े थे; जिसमें परे गये सैकड़ों कीरवों और हजारों हाथी-घोड़ों के शरीरों के ढेरों पर गिद्ध, हिर और सियारों के झुण्ड एक साथ मिलकर शवट रहे थे; जिसमें भीर घोंडा हो गये थे; जिसमें हमारे सैनिक सिंहमद कर रहे थे और जहाँ से (उसके) नेर और बाणधवा जा चुके थे, सम्झा और गरम साँस लिया । इसके परचातु मोर ने कहा—‘अरे हे कीरव-राज, वधुओं के नाश का दुःख न कर । इस पार गलति न करो कि पाण्डव तो बहुत-से हैं और मैं युद्ध में सहाय-जि हूँ ।’

हे पुष्योषन, हम दोनों में से जिसको युद्ध के लिये आसान समझो, कवच लिये हुए और शस्त्र-धारण किये हुए तेरा उसके साथ (हो) युद्धरूपी उत्सव है काय ॥१०॥

ऐसा सुनकर दोनों कुमारों पर रोष-भरी दृष्टि डालकर पतराट्ट के पुत्र ने कहा—

इत्सवप्रादृश्य । तेन सह तव रणोत्सवोऽस्तिवति संबन्धः । तेनेति सहायं दृष्टीया ॥१०॥

कुमारयोर्मामार्जुनयोः ।

करांदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम ।

अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥११॥

इत्थुत्थाय परस्परक्रोधाधिलेपपश्यवाङ्मलहप्रस्ताविनयोरसद्ग्रामो विवि-  
विभ्रमभ्रमितगवापरिमासुरभुजदण्डो मण्डलं विचरितुमारब्धो श्रीमदुपोधनौ ।  
च देवेन चक्रपाणिना देवसम्प्राप्तमनुप्रेषितः । आह च देवो देवभीमव-  
अपयुषितप्रतिज्ञे च मास्ती प्रनष्टे कौरवराजे महानासीधो विदारः । संज-  
पुनर्भोमसेनेनासारिते सुयोधने निष्कण्टकीभूतं भुवनतलं परिकल्पतु मया  
अम्बुदपोषिताश्चानवरतं प्रवर्त्यन्तां मङ्गलसमारम्भाः । कृतं संदेहेन ।

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते

कृष्णात्यन्तचिरोज्झिते च कवरीबन्धे करोतु क्षणम् ।

रामे शताकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि

क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजो कुतः संशयः ॥१२॥

द्रौपदी—(सवाण्यम्) यदेवस्त्रिभुवननाथो भजति तत्कथंमंग्यया भविष्य  
[अं देवो तिद्मअण्णाहो भजादि तं बहू मण्णहा भविस्सि]

पाञ्चालकः—न केवलमियमासीः । असुरनिपूजनस्यारदेशोऽपि ।

शुषिष्ठिरः—को हि नाम मगवता संविष्टं विवक्षयति । कः कोऽत्र प्रो-

कर्णेति । हे श्रीम त्वमेव योद्धुं प्रियः कीदृशः अमित्रं साहसी च ॥११॥

[परस्परस्य यः लोभेनाधिलेपो निन्द्या तत्र या परपशार् तथा वनहा-

प्रस्तावितो घोरसंघामो माभ्याम् । विविधो विविधो यो विभ्रमस्तेन प्रवि-

ददा तथा परिमासुरो भुजदण्डो ययोस्ती ।] विभ्रमो विदारः । वन-

करणविशेषः । [अपयुषिता प्रतिज्ञा यस्य तादृशे । प्रतिज्ञाया अपयुषिता

दिययंः ।] प्रनष्टेऽहृष्टे । समारम्भा मङ्गलादिक्रियाः ।

पूर्यन्तामिति । [रत्नसचिन्ताः वसना रत्नकलशाः । सलिलेन तीर्थजलेन

तत्सर्वं तपोरयोगित्वाद्] कवरी वनबन्धः । लज्जो मुहूर्तोत्पन्नयोः इति वाक्यं

कवरीबन्ध इति निमित्तवस्तुमी । रामे परशुरामे । [कालः तेजितः । पाञ्चाल-

जिन और दुःशासन के बध के कारण तुम दोनों मेरे लिये समान ही हो।  
(पर जो) अग्रिम होने पर भी साहस-प्रिय होने से तुम ही मुझे युद्ध में डक  
ते ॥५१॥

एक कहकर (और) उठकर भीम और दुर्योधन, जिन्होंने परस्पर क्रोध के प्रेम निन्दा के कठोर वचनों के कलह से भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया था और बिनाको दण्ड-सदृश धुजाये अनेकदिवस सुन्दर चेष्टाओं के साथ घुमाई गई राशियों से चमक रही थी, मण्डल बनाकर घूमने लगे; और सुभे जगद्वान् कृष्ण (हथ में बल धारित) ने महाराज के पास भेज दिया। भगवान् देवकी-पुत्र ने कहा है—'भीमसेन के मरते दिन न जाने वाली प्रतिज्ञा कर लेने पर और गौतम-राज के भाग जाने पर हमें बड़ा दुःख था। लेकिन अब भीम के दुर्योधन के पास लेने पर आप दुर्योधन को कष्टक-हीन हुआ समझें। और अम्बुद्वय के पुत्र मङ्गल-कर्म का अक्षय्य प्रवर्तन कर दें। (अब) संदेह न करें।

हुन्हारे राज्याभिषेक के लिये रत्न-जडित कसबा जल से भरे जायें; डोंबरी मिर्चीय कास से छोड़े गये केज-बाज के बग्यान का उरलख लगाये; क्षत्रिय-गति-बन्धी कुर्सी की कटने वाले तथा तीव्र कुठार से चमकते हुए हाथों वाले पुरान और शीघ से जाये हुए वृक्षोदर के मुद्द-धुनि में जाने पर संशय कहाँ (हो सकता है) ॥१२॥

श्रीवरी—(भांगुओं के साथ) त्रिलोकीनाथ भगवान् ओ कहेंगे, वह भूतनाथ  
वे होगा ?

पाञ्चालक—यह केवल आशीर्वाद नहीं है। अनुर-रिपु का आदेश भी है।

बुद्धिहर—मगवान् के संदेश में कौन लक्ष-निर्लक्ष कर सकता है ? उसे  
यहाँ कोई है ?

तीक्ष्णधारः कृत इत्यर्थः । निजितमुष्णजानि तेजिते । दशमरः कुडारस्तेन  
 धामुरः करः यस्य तस्मिन् ।] शार्तं निजितम् । परिपतति यच्छति तति ॥१२॥

आत्मा निदेशः । [विषयस्यति अनुष्ठेय नवाधनुष्ठेयविति विचारयति । न  
 वेदनीत्यर्थः ।] सविद्याता [समारम्भविद्यानी] पुरोहितादिः । [प्रधानमनत्रिभजन]  
 पञ्चाग्र्यान् प्रधानपुरुषानुक्रमेण । अस्तवेरिषयान् अन्तःपुरप्रतिष्ठा । [अन्तर्-



मात्रीमुनयोरेकपरेण सह सहस्रामरतेन प्रापितो भवेत्ततोऽप्याहर्त्तुं भवेत् ।

[महासाय निगमिण उवाच साहस्रीमयेणोऽसौ दुराचारो वणिगो-यत्र  
वि भद्राण्य मग्ने जेन दे गोप्रदि तेण सह दे मंगामो होतुं नि । उदं महीनुम  
एकपरेण सह मंगामो तेण पत्तिरो भवे ततो अस्माहिदं भवे] ।

पुनर्विष्टरः—इत्थे, एवं मग्ने जरातं वपापी । इतस्तस्मिन्मुद्राङ्गुलीरानु-  
राजापानु इवतुतवर्माभ्यामपेयासवेकाशस्वकोहिणीप्यकान्यकः शरीरमात्रं  
भवः कदाचिदुत्पृष्टमिमांमिवानो धार्तंगदः परिपयैकापुर्ब तपोवर्न वा वीर्यनि-  
वा पितृमुलेन पापेत् । एवं सति मुद्रुरमतिक्रान्तः प्रतिज्ञामारो मवेत्तकतानि  
अपश्येति । समरं प्रतिपत्तुं पञ्चानामपि पाण्डवानामेकरवापि नैव क्षम-  
सुयोधनः । शङ्के चाहं गदापुङ्गं वृकोदरसर्वधानेन । अपि सुसन्निधे, परम-

क्रोधोद्गूर्णंगदस्य नास्ति सहस्रः सत्यं रणे मास्तेः

कौरव्ये कृतहस्तता पुनरियं देवे यथा सीरिणि ।

स्वस्त्यस्तूद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय यत्साय मे .

शङ्के तस्य सुयोधनेन समरं नैवेतरेषामहम् ॥१३॥

( नेपथ्ये )

नृपितोऽस्मि भोऽनृपितोऽस्मि । संभावयतु कश्चित्सतिसच्छायातं प्रदानेन मां

पुनर्विष्टरः—(आकर्ष्य) कः कीदृश भोः ।

[हताः सकलाः सुहृदन्कुभीराः अनुजा राजन्याः सत्रियाश्च यामु तथाभूता  
शरीरमेव शरीरमात्रं विभक्तो यस्य स तथा । सकलान् रिपून् जेष्याम ।  
प्रतिज्ञाया भारः मुद्रुरमत्यन्तमतिक्रान्तो निर्वाहयितुमशक्यो भवेत् । एतस्मिन्  
पाण्डवस्य एकेनापि पाण्डवेनेत्यर्थः । समरं प्रतिपत्तुं सुयोधनः न क्षमो न स्वयं  
वृकोदरस्य पाण्डवेषु वलिष्ठस्य [एव वनेन सुयोधनेन गदापुङ्गं शङ्के ।]

क्रोधेति । क्रोधेन उद्गूर्णं उच्चमिता गदा देन स तथा तस्य । उद्गूर्णं

१ । [कृतः शस्त्रनियेषणे धम्मस्तः हस्तः यस्य स कृतहस्तः । तस्य वा  
कृतहस्तता ।] सीरिणि वलभद्रे । [उद्धतः भारते-उद्देशोऽप्येतदुक्तं श्री

हि होगा।' यदि उसने माट्टी के बोनो पुत्रों में से किसी एक के साथ युद्ध की स्वीकृति होली, तो अनर्थ हो जाता।

बुबिहिर—हीरवी, जरासन्ध के राज्य (भीमसेन) का ऐसा विचार होगा—  
 'यह अश्विनी सेनाओं में, जिनमें सब मिथ, वसु, धीर, अनुज और क्षत्रिय  
 रहे हैं, केवल मात्र कृप, कृतवर्मा और द्रुपदव्यासा के शेष रह जाने पर  
 शेष-हीन धृतराष्ट्र-पुत्र, जिसका केवल शरीर ही शेष शेष रह गया है, कभी  
 मेरे अभिमान को स्थागकर आशुष का परिष्कार कर दे, (और) लघोचन को  
 मेरा शत्रु बना पिता के मुख से सन्धि की प्रार्थना करने लगे। ऐसा होने पर  
 'समृद्धों की जीने की प्रतिज्ञा का निर्वाह बहुत दूर चला जाएगा।' सुयोधन  
 को राज्यों में से किसी के भी साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं है। और मुझे  
 कि साथ भीमसेन के ही महायुद्ध की आशङ्का है। अरी धीर क्षत्रिया,  
 ते—

सबमुख क्रोध से गदा उठाये हुए वायु-पुत्र (भीम) का युद्ध में कोई जोड़  
 है। लेकिन कौरव (द्रुपद) में भगवान् बलराम जैसी प्रवीणता है।  
 न कौरव-रूपी कमलिनियों के लिये गज समान, मेरे बल (भीम) का  
 बान हो। मैं सुयोधन के साथ उसके ही संग्राम की आशङ्का करता हूँ,  
 मैं के (संग्राम) की नहीं ॥११॥

( नेपथ्य में )

मैं व्याता हूँ, अरे, मैं व्याता हूँ। कोई बल और छाया डेकर मुझे अनु-  
 त करे।

बुबिहिर—(गुनकर) अरे, वहाँ कीन है ?

वत्सलः । कृत्वा धनपरम्परेण चार्त्तराष्ट्रो वृषोदरात् ॥ महा० १८.१. । उद्धृता  
 चार्त्तराष्ट्रा एव नलिम्बः कमलिम्बत्पत्न्यामा विदमने भागी हन्ती । यथा  
 ना चार्त्तराष्ट्रा एव नलिम्बो येन स भागी नायः तस्य यद्गमं ब्रह्मण्य  
 त् । यतः तस्य भीमस्य सुयोधनेन समरं महायुद्धं सङ्घट्टे । भीमः तेन मह  
 युद्धे विजयी भवेत्प्रवेति सङ्घट्टे इत्यर्थः । हीरवी तु महायुद्धं न चरणीय  
 ॥ एव ते सुयोधनं त्रेमुमिति तेषां समरं न सङ्घट्टे इति भावः ॥११॥

( प्रविश्य )

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

पुषिष्ठिरः—आपतां किमेतत् ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्त्य पुनः प्रविश्य) देव क्षुब्ध

नतिविरूपस्थितः ।

पुषिष्ठिरः—शौघं प्रवेशय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्त्य)

(ततः प्रविशति मुनिवेषधारी चार्वाको नाम राक्षसः)

राक्षसः—(आत्मगतम्) एषोऽस्मि चार्वाको नाम राक्षसः सुषोषनाय दिव्यं  
 पाण्डवाग्रभित्तुं भवामि । (प्रकाशम्) नृबल्लोऽस्मि । संभावयतु नो कबिर-  
 तच्छायाप्रदानेन । (इति राक्षः समीपमुपगच्छति)

( सर्वे उत्तिष्ठन्ति )

पुषिष्ठिरः—मुने, अभिवाचये ।

राक्षसः—अकालोऽयं समुवाचारस्य । अतःप्रदानेन संभावयतु माय ।

पुषिष्ठिरः—मुने, इदमासनम् । उपधिरयताम् ।

राक्षसः—(उपविश्य) ननु भवतापि विद्यतामासनपरिग्रहः ।

पुषिष्ठिरः—(उपविश्य) कः कोऽयं भोः । सतितमुपनय ।

( प्रविश्य वृक्षीयसूतारः )

कञ्चुकी—(उपगृह्य) महाराज, सितिरगुरुभिमनिलसंगुणोऽयं वृक्ष-  
 मानमात्रं वेदम् ।

पुषिष्ठिरः—मुने, निर्गन्धमापुदग्भाप्रतिहारः ।

राक्षसः—(पातो प्रधातुवोरगृह्णन्विचिन्त्य) भोः, सत्रिप्रसवमिति वन्दे ।

पुषिष्ठिरः—सम्पाद्येहो भवाम् । सत्रिय एवास्मि ।

[सुम्नान् वृक्षीयः । महाराजे तु अथ राक्षसः पुत्रकलापनस्य  
 महाराजपुषिष्ठिरं राक्षसानि प्रविष्टे परिग्रहकवन्देन वाक्पुण्यं ननु प्रवेष्टि ।  
 तदुक्तं सतितवर्षिणि इव वेदप्रदाने—वाक्पुण्यः कञ्चु—एव सुषोषनवनापातो  
 महाराजः । वृक्षीयसूतारकर्मण्यं दिवं नन्द्य विचोर्वेत् ॥ इति । महाराज वृक्षी-

( प्रवेश करके )

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा कीजिये ।

मुषिष्ठिर—मस्तूम करो यह क्या है ?

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा हो । (यह कहकर बाहर जाकर पुनः प्रवेश करके) महाराज, (कोई) भुखा भतिथि आया है ।

मुषिष्ठिर—शीघ्र अन्दर निवा लाओ ।

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा । (यह कहकर बाहर जाता गया) ।

( सत्यवात् मुनि का वेप धारण किये चार्वाक नाम का राजस प्रवेश करता है । )

राजस—(यन में) यह मैं सुयोधन का मित्र चार्वाक नाम का राजस हूँ; पाण्डवों को मोक्ष देने के लिये यून रहा हूँ । (अन्त में) मैं व्यास हूँ । मैं भुम्हे जल और छाया देकर अन्तुगृहीत करे । (यह कहकर राजा के समीप जाता है) ।

( सब उठ खड़े होते हैं । )

मुषिष्ठिर—मुनि, मैं अभिवादन करता हूँ ।

राजस—यह शिष्टाचार का समय नहीं है । भुम्हे जल देकर अन्तुगृहीत कीजिये ।

मुषिष्ठिर—मुनि, यह आज्ञा (है) । बैठिये ।

राजस—(बैठकर) अब आप भी तो आज्ञा ग्रहण कीजिये ।

मुषिष्ठिर—(बैठकर) यहाँ कोई है ? जल लाओ ।

( मुराही निचे हुए प्रवेश करके )

कञ्चुकी—(समीप जाकर) महाराज, यह शीतल और सुगन्धित जल ले मैं मुराही है और यह पीने के लिये पात्र है ।

मुषिष्ठिर—मुनि, प्यास का प्रतिकार कीजिये ।

राजस—(पैर धोकर आचमन करते हुए सोचकर) अरे, मैं समझता हूँ कि मुम क्षत्रिय हो ।

मुषिष्ठिर—आप ठीक समझ रहे हैं । मैं क्षत्रिय ही हूँ ।

राजः । समुदाचारस्य शिष्टाचारस्य ।] भृङ्गारः कनदायुषा इत्यमरः ॥

राक्षसः—मुलमथ स्वजनविनाशः सङ्घामेषु प्रतिदिनमती नदीयं मवङ्ग  
जलादिकम् । भवतु । छामयंवानया सरस्वतीशिशिरस्तरङ्गस्रष्टुणा मरता वा  
विगतह्रमो भविष्यामि ।

द्रौपदी—बुद्धिमतिके, बीजय महविमनेन तालवृन्तेन ।

[बुद्धिमदिए बीएहि महेनि इमिणा तालविन्तेन ।]

( चेटी तथा करोति )

राक्षसः—मथति, मनुषितोऽयमस्मानु समुदाचारः ।

पुष्पिष्ठिरः—मुने, कथय कथमेवं मवान्परिध्यान्तः ।

राक्षसः—मुनिजनमुत्तमेन कौतूहलेन तत्रभवता महाभक्तिगता इन्द्र  
मवलोकयितुं पर्यटामि समन्तपञ्चकम् । मद्य तु बलवत्तया शरवातपस्यान्तरे  
भावलोचय गदापुटमर्जुनमुपोधनयोरपतोऽस्मि ।

( सर्वे विषाधं नाटयन्ति )

कञ्चुकी—मुने, न खल्वेवम् । भीममुपोधनयोरिति कथय ।

राक्षसः—आः अविरितवृत्तान्त एव कथं मामाक्षिपसि ।

पुष्पिष्ठिरः—महर्षे, कथय कथय ।

राक्षसः—क्षणमात्रं विभ्रम्य सर्वं कथयामि भवतो न पुनरस्य वृद्धस्य

पुष्पिष्ठिरः—कथय किमर्जुनमुपोधनयोरिति ।

राक्षसः—मनु पूर्वमेव कथितं मया प्रवृत्तं गदापुटमिति । -

पुष्पिष्ठिरः—न भीममुपोधनयोरिति ।

राक्षसः—वृत्तं तत् ।

( पुष्पिष्ठिरो द्रौपदी च मोहपुण्यतो )

कञ्चुकी—(सतिलेनासिच्य) समाश्रितु देवो देवी च ।

चेटी—समाश्रितु समाश्रितु देवी । [समस्तसदु समस्तसदु देवी ।]

तु विपासा वृद्ध इत्यमरः । [स्वजनविनाशः अतोऽशौचसम्प्राप्तयेति च  
सरस्वत्याः शिशिरांस्तरङ्गान्स्पृशतीति तेन ।] सरस्वती नदीभेदः । हञ्जे  
मतिके बीजयं न महविमेतेन तालवृन्तकेन । व्यजनं तालवृन्तकम् इत्ययं  
इन्द्रपुटमिति आश्रयवचनम् । शरवातपस्य शरस्युर्वापस्य । अथर्वविदः

नस—प्रतिदिन पुष्ट में कन्धु-मरण सुखम है, इसलिये आप से ग्रहण नहीं करना चाहिये । अच्छा । इस छाया से और सराही शीतल तरङ्गों को छूने वाले इस वायु से ही चकान दूर

नी—बुद्धिमत्तिका, इस पंखे से महवि की हवा करो ।

( चेटी बेंसा हो करती है )

न—आवरणोप, हमारे प्रति यह सिखाचार उचित नहीं है ।

उर—मुनि महाराज, बतलाइये, आप इस प्रकार कैसे चक गये ?

—मुनि जन सुलभ उत्सुकता के कारण मैं आवरणोप महान् शक्ति देष्टने के लिये समातपम्बक से घूम रहा हूँ । आज तो खरद आने के कारण अर्जुन और सुषोषन के गला-पुष्ट को सपूरा हुआ है ।

( सब दुःख का अभिनय करने हैं )

—मुनि, ऐसा नहीं है । 'भीम और सुषोषन का (गला-पुष्ट) ऐसा'

आह ! बिना जान जाने ही गुम वर आलोप कैसे कर रहे हो ?

—महवि, कहिये, कहिये ।

मन-मर विधाय करके सब कुछ आपसे कह चुका,

—कहिये, अर्जुन और सुषोषन का क्या (हृमा) ?

ने पहले ही बतला तो दिया कि 'गला-पुष्ट हृमा' ।

—भीम और सुषोषन का नहीं ?

हृमा का ।

( बुद्धिहित और झीररी बुद्धिज हो जाने हैं )

(जल छिन्नकर) महाराज और महाराजी बंभ रक्खे  
रखिये, महाराजी बंभ रक्खिये ।



( दोनों बैठना प्राप्त करते हैं )

मुषिष्ठिर—मुनि, क्या करते हो कि भीम और सुयोधन का महा-युद्ध हो चुका ।

श्रीपदी—भगवान्, बतलाइये, बतलाइये क्या हुआ ?

राक्षस—कञ्चुकी, मे दोनों हैं कीम ?

कञ्चुकी—बहान्, यह भगवान् मुषिष्ठिर हैं, और यह पाण्डवात्त की राजकुमारी ।

राक्षस—आह ! मुझ निरर्थ ने बहुत बात आरम्भ कर दी ।

श्रीपदी—हाय ! नाय भोमसेन ! (मुचिष्ठ हो जाती है) ।

कञ्चुकी—आपने क्या कहा ?

बेही—अर्थ रखिये, महाराजो अर्थ रखिये ।

मुषिष्ठिर—(आसू भरकर) बहान्,

(बुलाव) इस संक्षिप्त घर के कारण ही मुषिष्ठिर दुःखी है । बात के विषय में यथाथ के मिश्रित हो जाने पर यह प्राण त्याग देने से सुखी (हो जायेगा) ॥१७॥

राक्षस—(आनन्द के साथ मन में) इसके लिये ही मेरा प्रयत्न है । (प्रष्ट में) यदि तो अवश्य कहना ही पड़ेगा तब संक्षेप से कह देता हूँ । (बर्णिक) बाण्य की विपत्ति को विस्तार से कहना ठीक नहीं है ।

मुषिष्ठिर—(आसू बहाते हुए) ।

है बाह्यण, संक्षेप से या विस्तार से किसी भी प्रकार कह आलिये । मैंने बात के सम्बन्ध में कोई भी (अपङ्गस) सुनने के लिये यह भण दे दिया है ॥१८॥

राक्षस—मुनिये—

सुयोधन और भीम का यह भारी गदाओं की समझूट ध्वनि वाला युद्ध होने पर—

सर्वमेति । किमपीत्यनेनामङ्गल्यं निवारयति । लघोऽपसरः । सर्वथा शोच्यमासीदर्थः ॥१९॥

तस्मिन्निति । घोरं भयानकं [गुर्व्योर्गदयो. गदाप्रहारस्यमिति





द्रौपदी—(वेग से उठकर) इसके बाद ? इसके बाद ?

राक्षस—(मत में) फिर इन दोनों की चेतना कैसे हुई ?

तब हलधारी (कसराम) जल्दी से वहाँ जा गया; उसके सामने देर तक बड़ा होता रहा; लेकिन हलधारी ने शिष्य (दुर्योधन) के प्रति पक्षपात का साधन लेकर चुपके-से संकेत कर दिया, जिस (सकेत) को पाकर दुर्योधन थोड़ा से दुःशासन के शत्रु से प्रतिशोध वा लिया ॥१६॥

मुधिष्ठिर—हाय, वरत भीम ! (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है) ।

द्रौपदी—हाय, नाय भीमसेन ! हाय मेरे अपमान का बदला लेने में प्राण त्याग करने वाले ! अटामुर, बक, हिमिन्ध किर्बोर, कीचल और अरासम्भ को मारने वाले, कमल साकर प्रसन्न करने वाले, मुझे चतर बीजिये । (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है) ।

कञ्चुकी—(माँसु भरकर) हाय, कुमार भीमसेन, कीरक-मुल-कपी कमलिनी के लिये हिम-वर्षा-सदृश ! (पवराहट के साथ) महाराज, सर्व पात्र बीजिये । भद्र, स्वामिनी की सर्व सेवाइये । महर्षि, आप भी महाराज का सामना देखें ।

राक्षस—(मत में) प्राण त्याग कराने के लिये सर्व बीजाता है । (प्रसन्न हो) हे भीम के बड़े भाई, क्षण-भर सर्व रक्षिये । (अभी कुछ) कहाणी सोच है ।

मुधिष्ठिर—(संभलकर) महर्षि, क्या कहाणी सोच है ?

द्रौपदी—(हीन से जाकर) भयवश, कहिये क्या कहाणी सोच है ?

कञ्चुकी—कहिये, कहिये ।

राक्षस—तब उस घोर अत्रिय के घारे जाने और कीर-मुल-कपी की वीरता पर भाई के वध के शोक से उत्पन्न, पुर्णरूप से कहते हुए भागुओं की चोखला

हा नाथ मदीयपरिमब—हा अटामुर—हा मीनन्धिकादरणात्मकादुकार  
 बाणि : अत्र अटामुरो दैत्यभेदः । बको दैत्यभेदः । मीनन्धिकं कमलम् ।  
 पद्मायाः मुक्ताकमलाहरणाद्यद् दोग्धा आराधनं तत्र चादुकारः प्रेम दायः ।  
 [पद्मा तेन चादुकारः । धर्तराष्ट्रानां कुलं तदेव कमलिनी सदा प्राप्तेयवर्षं  
 दिवसं । तद्व्यापारः । हिमवृष्ट्या कमलानि विनन्दन्तीति प्रविष्टिः ।]  
 पण्डितम् । [समर्थं यथा तथा संवतिषम् । प्रत्यक्षं मूलं दारुणम् रत्न

डोपडी—(सहस्रोत्थाय) ततस्ततः । [तदो तदो ।]

राक्षसः—(स्वगतम्) कथं पुनरनयोर्लब्धसंज्ञतामपनयामि ।

सीरी सत्त्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रतः सङ्गरः ।

आलम्ब्य प्रियशिष्यतां तु हलिना संज्ञा रहस्याहिता

यामासाद्य कुरुत्तमः प्रतिकृतिं दुःशासनारौ गतः ॥१६॥

पुष्पिष्ठिरः—हा वत्स यूकोवर । (इति मोहमुपगतः)

डोपडी—हा नाथ भीमसेन, हा मम परिम्वप्रतीकारपरित्यक्तजीवित, वत्स

सुरवकहिदिम्बकिमोरकीचकजरासंधनिवृद्धम, सोमन्धिकाहरणबाहुकार, देहि

प्रतिवचनम् । (इति मोहमुपगता) [हा एगह भीमसेन हा मह परिम्वप्रतीकार

परित्यक्तजीवित्र जडासुरवज्रहिदिम्बकिमोरकीचकजरासंधनिवृद्धम सोमन्धिका

हरणबाहुकार देहि मे पडिवज्रणम् ।]

कञ्जुकी—(सासम्) हा कुमार भीमसेन, घातं राहुतकमलिनीप्रातेनसं ।

(ससंभ्रमम्) समाश्वसितु महाराजः । भद्रे, समाश्वसय स्वामिनीम् । नारा

त्वमपि तावदाश्वासय महाराजम् ।

राक्षसः—(स्वगतम्) आश्वासयामि प्राणान्परित्याजयितुम् । (प्रकाशम्)

भो भीमापज, क्षणमेकमापीयतां समाश्वसतः । कथाशेषोऽस्ति ।

पुष्पिष्ठिरः—(समाश्वस्य) महर्षे, किमस्ति कथाशेषः ।

डोपडी—(प्रतिबुध्य) ममवन्, कथय कीदृशः कथाशेष इति ।

[भयम् न देहि कीदृशो कथाशेषो ति ।]

कञ्जुकी—कथय कथय ।

राक्षसः—ततश्च हते तस्मिन्नुत्तमिने चीरमुत्तमां पतिमुपगते तमवन्

भानूवपशोरजं बाष्पं प्रमृज्य भानूवपशोकाश्वाय वागीशं शयनभारम्

घोरः ध्वनिर्यस्मिन् । सीरी वनभट्टः ।] श्रियः शिष्यो यस्वेति श्रियः ।

भावः श्रियशिष्यतां ताम् । [संज्ञा हस्तबासनेन प्रहारस्वानुवृत्तम् ।] इति

प्रतीकारम् । अर्थाद् दुःशासनवधस्य । दुःशासनारौ भीमे । तथा च घोर

हन् इति भावः ॥१६॥

श्रीपरी—(वेग से उठकर) इसके बाद ? इसके बाद ?

राक्षस—(मन में) फिर इन दोनों की चेतना कैसे हुई ?

तब हलधारी (अलराम) जल्दी से वहाँ आ गया; उसके सामने डेर पड़ा होता रहा; लेकिन हलधारी ने निम्न (दुर्घोषन) के प्रति पक्षपात न रखकर चुपके-से संकेत कर दिया, जिस (संकेत) को पाकर बुद्धिमान ने बुद्धिमान के शत्रु से प्रतिशोध वा लिया ॥१६॥

पुष्पिहिर—हाय, बात भीषण ! (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है) ।

श्रीपरी—हाय, नाथ भीमसेन ! हाथ मेरे अण्मात्र का बदला लेने में प्राण देने वाले ! जटामुर, बक, हिडिम्ब किर्पूर, कीचक और जरासन्ध मारने वाले, कमल साकर प्रसन्न करने वाले, बुद्धे उत्तर दीजिये । (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है) ।

कञ्चुकी—(अभी भरकर) हाय, कुमार भीमसेन, कीचक-बुल-बुली कमल के लिये हिम-वर्षा-सदृश ! (चवराहट के साथ) महाराज, धर्म धारण दीजिये । भद्र, स्वाभिनी को धर्म बँपाइये । महर्षि, आप भी महाराज का उत्पत्ता दीजें ।

राक्षस—(मन में) प्राण त्याग कराने के लिये धर्म बँपाता हूँ । (चवट में भीम के बड़े भाई, अण-भर धर्म रखिये । (अभी कुछ) कहानी सोच है ।

पुष्पिहिर—(संभवकर) महर्षि, क्या कहानी सोच है ?

श्रीपरी—(होश में आकर) भगवन्, कहिये क्या कहना सोच है ?

कञ्चुकी—कहिये, कहिये ।

राक्षस—तब उस घोर अत्रिष के नारे आने और भीर-मुलभ प्रति वा लेने के भाई के वय के लोक से उत्पन्न, पुनर्कष से चले हुए आधुनों की चोटक

हा नाथ अदीपपरिभव—हा जटामुर—हा भीमनिधिरहरणारामबाहुकार । नाथ । अण जटामुरो दैत्यभेद । अणो दैत्यभेद । सीपनिधिर बदनम् । ज्ञायाः सुवर्णरमणाद्वराच्छद् दीग्दा जाराधन तत्र बाहुकारः प्रेम परम् । विरा तेन बाहुकार । धार्तराष्ट्राणां कुल तदेव बभूविवी तादाः प्राप्तेऽवर्षे । तद्वप्रासकर । हिमवृष्ट्या बभूविवी विनन्दन्तीति प्रसिद्धिः । । अणुवप्रासम् । [समस्तं यथा तथा संगलितम् । अणुवप्रासं नृपत दास्यमर्च रत्न ।



माई के वध के शोक के कारण माण्डवीय को छोड़कर, और ताजे शविर के समूह ने जिस उस हो गया को माई के हाथ से लेकर, सन्धि की इच्छा वाले वामुदेव के द्वारा रोके जाने पर भी, शुभाई गई गया की शङ्कर से बड़ी हुई गम्भीर वक्तों की स्वनि वाले कौरव-राज द्वारा हँसी के साथ 'आओ, आओ' इस प्रकार सलकार गया तीसरा (पाण्डव), आपका छोटा भाई, किरीट (मुकुट) धारण करने वाला (अर्जुन) युद्ध करने लगा। (गदा में) अनभ्यस्त उस (अर्जुन) की गदा के प्रहार से मृत्यु की संभावना करता हुआ धनराम अर्जुन के पक्षपाती देवकी-पुत्र को बड़े प्रयत्न से अपने रथ में बँटाकर डारका ले गया। पुषिष्ठिर - ठीक, अर्जुन, तुने माण्डवीय को त्यागकर शुरुक्त भीम का मार्ग अपना लिया। लेकिन मैं किस उपाय द्वारा प्राण-त्याग के महोत्सव की मनि-गाथा कहूँ ?

प्रोपधी—हाय, नाथ भीमसेन, अब तुम्हें क्या (-युद्ध) में अनभ्यस्त, कूर यु के संमुख जाते हुए छोटे माई की उपेक्षा करनी उचित नहीं थी। (मृन्दिग जाती है)।

राक्षस—और इसके बाद मैं—

पुषिष्ठिर—मुनि, रहने बीजिये, इसके आगे सुनकर क्या (होगा) ? हाय ! भीमसेन, वनवासकपी विपत्ति के माण्डव; हाय ! मेरे शरीर की स्थिति से कातर, लाभाग्रह की विपत्ति कपी समुद्र को पार करने में नीरा-हाय ! किमौर, हिडिम्ब, अटामुर और जरासम्य को जीने में अद्वितीय हाय ! कीवक और सुषोवन के छोटे भाइयों कपी कमतिनियों के निवे सभान; हाय ! जूए मे (मेरी) शर्त को स्वीकार कर लेने वाले; हाय ! भाजा ■ पालन करने वाले; हाय ! कौरव-कपी वन के वनालि,

हे वरत, घूत के ध्यस्तनी मुझ निर्लज्ज की भक्ति के कारण वन तार्य मन-हाथियों के बल वाले तुमने तब वह दासता स्वीकार की थी; मैंने उससे निपतिजीवनम् । [तस्य विन्देदारातर ।] यानपात्र गु पोट. इत्यमर ।

तो दंत्यभेदः । [०नुवा एव कमतिग्यस्ताया कुञ्जर उम्मुनक्तिः ।

संसज्जवेति । हे वरत । कुरोवदं घूतम् । परो घूतं कुरोदरम् २५५

मनिः आसक्तिमत्तः मे पदरत्ना । समदाला द्विपानामधुनं तान्देव

किं नामानृतं मयाऽधिकमतस्त्वय्यस्य यद्व्यने  
 त्वय्याज्जायमान्यं मयादि मां प्रीतिः कृतं माञ्जुना ॥

श्रीपरी—(मन्त्रापुराणोत्प. प. ५) ब्रह्मात्र, त्विमेवार्थः ।  
 [ब्रह्मात्र, हि एव ब्रह्म ।]

पुनरिदं—इत्थे, त्विमेव ।

म कोधकनिगूदनो बह्निद्विम्यकिर्मीरहा  
 मदान्धमगधाधिपद्विरदमन्धिभेदाननिः ।

गदापरिषदोभिना मुजयुगंन तेनान्वितः

प्रियस्तव ममानुजोऽर्जुनगुरुमंतोऽस्तं किल ॥१८॥

श्रीपरी—नाय भीमतेन, त्वया किल मे केशः संबन्धितः । न ।  
 वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिषिमवितुम् । तत्प्रतिपालय मां यावदुपपत्तिः  
 (पुनर्मोक्षप्राप्तता) [एताद् भीमतेन, तु ए किल मे केशः संबन्धितः । न ।  
 वीरसा खतिव्रतम पश्चिन्नाद मिद्विनेदुम् । ता पश्चिन्नामेहि म याव त्ववस्था

पुनरिदं—(आचार्ये) अम्ब इये, भूतोऽयं तव पुत्रस्य स्तुत्यात्  
 मामेकमनायं विलप्यतमुत्सृज्य क्वापि गतः । तात जरासंधशात्रो, हि मां वीर  
 त्वमेतावता कालेनात्मापुनित्वयि समाप्तोक्तिं जनेन । अथवा मयैव ब्रह्मपत्न्या

दत्त्वा मे करदीकृताखिलनृपां यन्मेदिनीं लज्जसे

द्युते यच्च परीकृतोऽपि हि मया न क्रुध्यसि प्रीयसे ।

मस्य तेन । दशसहस्रमगदहस्तिप्राणसारेखोरार्थः ।] त्वया तदा ता इति  
 दामताङ्गीकृतासीत् । [सीदतेति पाठे क्लेशमनुभवता त्वया ।] हि नाथेपि  
 अतोऽधिकं त्वयि मयाद्य किमपकृतं तत्प्रकाशयेत्यर्थः ॥१७॥

किं नामैतद्वर्तते ।

त इति । मगधाधिपो जरासंधः । [मदान्धो दपोऽतो मगधाधिप एव द्विरतो  
 अज्ञनिर्वच्य इव । यदा परिषद् इव तेन शोभते तादृशेन ।

यदापरिषः पाणी यत्र तादृशेन । पाणिः वरः । मुजयुगंनेति

नरिक्त तुम्हारा घात्र क्या अपकार कर दिया कि जो मुझ अनाथ और बाग्यव-  
न को छोड़कर जल्दी से चले जा रहे हो ? अब तुम्हारा वह प्रेम कहाँ (चला  
या) ॥१५॥

द्वौषधी—(चेतना प्राप्त करके और उठकर) महाराज, यह क्या है ?  
पुविहिर—द्वौषधी, और क्या—

कोवक को मारने वाला, बक, हिडिम्ब और किम्वोर का हनन करने वाला,  
मरु से आये मणव-रेश के राजा (जरासन्ध) कपो हाथी की सन्धि छिन्न करने  
के बख के समान, परिण सट्टा क्या से शोभित मुज-मुगल से युक्त, तेरा प्रिय,  
मेरा छोटा भाई और अर्जुन का बड़ा (भाई) वह मरत को प्राप्त हो गया  
है ॥१६॥

द्वौषधी—नाथ भीमसेन, आपको तो मेरे केश बाँधने थे । और अग्निव की  
गिता किये हुये कार्य को छोड़ना उचित नहीं है । इसलिये मेरी प्रतीक्षा  
कीजिये, मैं अभी जाती हूँ । (फिर मूर्च्छित हो जाती है) ।

पुविहिर—(आकाश की ओर देखकर) माता दृषा, आपने अपने पुत्र का  
शिष्टाचार सुना—पुत्र मकेले, अनाथ, वितार करते हुये को छोड़कर कहीं  
जा गया । प्रिय जरासन्ध-रिपु, अब तक लोगों ने पुत्र मरुत आयु वाले के  
मैं क्या विरह (आयु-विरोधी) बात देखी थी ? अपना मैं ही बहुत  
देख लिया था ।

ओ वृ पुम्हे दृम्बी, जिसके समस्त राजा (पुम्हे) कर देने वाले बना किये थे,  
सजित होता रहा; ओ मेरे द्वारा मूर में बाजी पर रखी जाने पर वृ  
पुतीया । किल प्रसिद्धी ॥१८॥

हर्ष नाथ न युक्तमिदानीं मवती वीरस्य [न तु निर्वलस्य] यां शलमात्रं...  
नामनुगच्छामि । पूये वृषानामधेय । तात मान्य । जरासन्धस्यो भीष ।  
त्पापुःसूचकम् ।

देवाह—वस्येति । करदो राजभाषदाता । [न वरदा अकरदाः । अकरदाः  
समाधमानाः कृताः करदोहृता अविता नृपा वसता तां । सत्रये इति  
निर्भरस्य ते विज्ञमित्यर्थः । बहुगुणस्य तीव्रं दिनपरत्वाद् । १९



महाराज, आदीनय मे चिताम् । त्वमपि क्षत्रधर्ममनुवर्तमान एव नायस्य जीवि  
हरस्यामिमुखो भव । अथवा यत्ते रोचते ।

[बन्धेदु एताहो दुःखोहणरुधिलादेण हत्येण दुस्सासणविमुखं मे केप्रहृत्यम्  
हृदये बुद्धिमदिए तव पञ्चवस्वं एव्व भादेण पडिष्णादम् । अज्ज, किं सदिट्ठं मे  
मे देवेण देवकीनन्दणेण पुण्यो वि केसरवणा आरम्भीअदु त्ति । ता उवणेहि  
पुण्फदामाहं । विरएहि दाव ववरीम् । करेहि मअवडो एआरअणस्स वज्जणम्  
ज वल्लु सो अलीअं सदिस्सदि । अहवा किं मए संतत्ताए मल्लिदम् । अविरेण  
अज्जउत्तं अणुगमिस्सम् । महाराज, आदीनय मे चिदाम् । तुमं वि सणअण  
अणुवट्ठन्तो एव्व भाहस्स जीविदहरस्स अहिमुहो होहि । अहवा जं दे गोत्रदि ।]

पुधिष्ठिरः—युक्तमाह पाञ्चाली । कञ्चुकिन्, क्रियतामियं तपस्विनी विना-  
संविभागेन सह्यवेदना । ममापि सञ्जं यनुस्फनय । अतमयवा यनुवा ।

तस्यैव देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गी-

मादाय संयति गदामपविध्य चापम् ।

भ्रातृप्रियेण कृतमद्य यदर्जुनेन

श्रेयो ममापि हि तदेव कृतं जयेन ॥२१॥

राजतः—राजन्, रिपुत्रयविमुखं ते यदि चेतस्तदा यत्र तत्र वा प्राणप्राप्तं  
कुरु । युया तत्र गमनम् ।

कञ्चुकी - पिद् मुने, राजसत्तहृग्ं हृदयं भवतः ।

राजतः—(एवमयं स्वगतम्) किं ज्ञातोऽहमनेन । (प्रकाशम् । श्रीः कञ्चुकिन्,  
श्रीर्गणेशाय नमः पुत्रं प्रयुक्तमर्जुनदुर्योधनयोः । जानाति च तयोर्गणेशो भुजगारम् ।  
विनायक पुनरस्य राजपौरपरमनिष्ठधर्मं परिहरन्त्येवं कथोक्ति ।

पुधिष्ठिरः—(बाण विमृशन्) तापु, महर्षे, तापु । मुनिनाथपरिहितम् ।

कञ्चुकी—महाराज, किं नाम शोकस्थानया देवेन देवकस्येनावि प्राप्तेनेन  
राजने क्षात्रधर्मः ।

विनायकस्य शरीरविमुखो भव । [तपस्विनी वराही । संविभागेन

विनाशिरचनेनेन यावन् । सञ्जमिति पाठे उवाच श्रीश्री सद्गुरुः ।]

## पट्टीऽङ्कः

दुग्धमन बर्हणी । (युधिष्ठिर के समीप आकर) महाराज, मेरी चिता प्र-  
रीतिसे । आप भी सत्रिय के धर्म का पालन करते हुए स्वामी के प्रा-  
प्त करने वाले का सामना कीजिये । अथवा जो आपको अच्छा लगे ।

युधिष्ठिर—पाञ्चाल की राजकुमारी मे (विष्णुल) ठीक कह-  
कचुकी, इस बेघारी को चिता देकर बेचना सहने योग्य कर दो । मेरे  
पनुय तैयार करके लाओ । अथवा धनुष रहने दो—

नाई से प्रेम करने वाले अर्जुन ने धनुष को छोड़कर जतके ही ता-  
रधिर से सित और (दुर्लभिये) लाल अङ्गों वाली गदा को लेकर जो  
मे किया है, मेरे लिए भी वही ध्येयकर है । जप से जत करना चाहिये

राक्षस—राक्षस, यदि आपका चिता धनुष को जीतने से पराङ्मुख  
कहीं भी प्राप्त त्याग दीजिये । वहाँ जाना स्वर्ग है ।

कचुकी—मुनि, आपको धिक्कार है । आपका हृदय तो राक्ष-  
समान है ।

राक्षस—(धनुषपूर्वक आरम्भ) क्या इसने मुझे यहचान लिया है ?  
मे) हे कचुकी, अर्जुन और दुर्धौतन ने गदा-पुष्ट प्रारम्भ हुआ था । मे  
उन दोनों के भुज-बल को जानता हूँ । इस कुन्धी राजपति को लज्ज अनेक  
से बचाते हुए ही मैंने ऐसा कहा है ।

युधिष्ठिर—(ज मू बहाते हुए) डीक है, महर्षि, डीक है । आपने  
कहा कही है ।

कचुकी—महाराज, शोक से अन्ध होने के कारण आप देव-मुख्य  
भी सामान्य पुरुषों की चर्चा क्षात्र-धर्म का परिचायक क्यों कर रहे हैं ?

तस्येति । तस्यैव भीमस्यैव । [देहर्षिरेण उचितं सितमत्त एव धा-  
नार्जुनेनाद्य संयति युद्धं । पाटलं रक्तमङ्गं यस्याः सा ताम् ।] अपविष्य र-  
[पुं कृत् तद् गदाभादाय युद्धा जीवितस्याय । इत्यर्थः । तन्मयापि  
स्येन वृत्तमसम् ॥२१॥

मुनमारुमिष्यत्सुं कचुकिने कथनम् [गदायां गदायुद्ध इति यावत् । मु-  
नामि । तथाहि अर्जुनस्य हीनबलत्वात्तदयो निमित्त इत्यर्थः ।]  
हितम् । देवस्येन देवतुल्येन ।

पुनिष्ठिरः—आर्य अर्चयत.

दादयामि नो परिषपीवरबाहुदण्डो

विनेशनकपुग्दणितवीर्यगारी ।

भोमार्जुनो क्षितितले प्रविचेष्टमानो

द्रष्टु तयोश्च निघनेन रिपुं कृतायम् ॥२२॥

अपि पाश्चात्तराजतनये, मरुतुनंययातलोच्यते, कथा तंरीष्यते पादरत्न  
सहितायेव वन्द्युत्तमं तंभावयाचः ।

श्रीपदी—आर्य, कुछ दादसंचयम् । दण्डान्धतां चिता । त्वरते मे हारं नार  
प्रेक्षितुम् । (मर्त्यनोऽवलोचय) कथं न कोऽपि महाराजस्य वचनं करोति । हा नार  
भीमसेन, तदेवेवं राजकुलं त्वया विरहितं परिजनोऽपि संपन्नं परिहरति ।

[अज, करेहि दादमचमम् । पञ्चमीशु चिता । तुवरदि मे हिमत्रं लाप  
देवितुम् । नहं ए को वि महाराजस्य वचनं करेदि । हा एगह भीमसेन, तं  
एव्य एवं राजउल तुए विरहिदं पट्टिमणो वि संपदं परिहरदि ।]

पुनिष्ठिरः—महर्षे, न कश्चित्तुषोति तावदावधोर्वचनम् । तद्विघ्नप्रदानेन  
प्रसादः प्रियताम् ।

राक्षसः—मुनिजनविच्छिदमिदम् । (स्वगतम्) पुनो मे मनोरथः । पावतु  
सक्षितः समिधयामि बलिम् । (प्रकाशम्) राजम्, न शक्तुनो बयमिह स्वातुप  
(इति निष्क्रान्तः)

पुनिष्ठिरः—कृष्णे, न कश्चिदस्मद्वचनं करोति । भवतु । स्वयमेवाहं वा  
संचयं कृत्वा वितामादीपयामि ।

श्रीपदी—त्वरतां त्वरतां महाराजः । [तुवरदु तुवग्दु महाराजो ।]

( नेपथ्ये नलकतः )

शक्षयामोति । [परिषदगता इव पीवरी बाहु दण्डाविव शत्रुस्यो  
मयोस्तौ । वितेशः कुवेरः शक्रश्च तयोः पुरयोः वक्षितं वीर्यसारे याम्ना तौ ।  
कुवेरपुरे सोपानिकाहरणकाले भीमेन, अस्वाधिगमार्यं पाङ्कतुरी गतेन वक्रतना  
... २ नाम देस्यान् हनवामार्जुनेन च ।] [क्षितितले प्रविचेष्टमानौ

पुषिष्ठिर—आर्य जयन्धर,  
 मैं अर्गला के समान स्थूल भुज-वण्डों वाले और कुबेर तथा इन्द्र के तगरों  
 तल-पराक्रम दिखता चुके हुए भीम और अर्जुन को भूतल पर छटपटाते और  
 को उनकी मृत्यु से चरितार्थ हुआ नहीं देख सकूँगा ॥२२॥  
 अरी मेरी दुर्नीति से जोचनीय अवस्था को प्राप्त पाञ्चाल राजकुमारी,  
 हो यह अग्नि प्रज्वलित हो, तब हम दोनों एक साथ ही वायुओं का  
 अनुगमन द्वारा) सम्मान करेंगे ।

श्रीपत्नी—आर्य सकृद्विषा एकत्र कीजिये । बिना प्रज्वलित की जाय, मेरा  
 हृदय स्वामी को देखने के लिये उतावला है । (चारों ओर देनकर) कैसे ? कोई  
 भी महाराज की आत्मा का पालन नहीं कर रहा है । हाय स्वामी भीमसेन,  
 जैसे बिहीन उस ही इस राजकुल को अब सेवक भी छोड़ रहे हैं ।  
 पुषिष्ठिर—महर्षि, कोई भी हम दोनों की बात नहीं सुन रहा है । इतलिय  
 आप ही ईधन लेकर अनुग्रहीत करें ।

राजा—यह पुनि लोगों के प्रतिभूल है । (आपगत) मेरी नामना पूर्ण  
 । अब छिपकर अग्नि प्रज्वलित करेगा । (प्रवृत्त वे) राजन्, हम यहाँ न  
 सकेंगे । (यह कहकर बाहर चला गया) ।

पुषिष्ठिर—श्रीपत्नी, कोई हमारी बात नहीं मान रहा है । अच्छा । मैं  
 ही सकृद्विषा इकट्ठा करके बिना प्रज्वलित करता हूँ ।

श्रीपत्नी—अरु कीजिये, महाराज अरु कीजिये ।

( नेपथ्य में कलकल ध्वनि होती है )

अथवाधुनी भूम्या सुटन्ती ।) श्रीपार्श्वनी त्रिषु च इगार्थ इगहाय इष्टु न  
 नि । एध्यानि ती इति वाडे ती इष्टु एध्यानि [इति वाधुना] न  
 श्रीपार्श्वः ॥२३॥

अथ दुर्नयः] अर्जुनवर्तनेन प्रज्ञा कोश्या राजा वा तत्पादुते । सहितानेव  
 केनेपथः ।] महाराज महाराज आचार्यनी लाहुराजवद । सङ्गराजवद  
 एवेर राजकुलविहानी स्वया विरहितम् । एरिहरीर्य महाराज वः ।  
 तमिन्ध्यानि दीन्यानि । [एतं वरन मयाग अरु इति । वनेन

श्रीरसी - ( ममदमाकर्ष ) महाराज, कस्यादेन वनवर्तिनाय मि  
सद्गुणिर्गोच भूयते । अपरमप्यत्रिंशं ध्योनुमतिनि निर्बन्धानां निमग्नये ।

[ महाराज, करन नि एमो वनवर्तिनाय विषयो मद्गुणियोगो गुणि  
अपरं वि अतिश्रं गुणित्वा अतिनि तुम्वन्धो तरो विनम्बीप्रदि । ]

पुष्टिद्वारः—म सन्तु विनम्नये । उतित्थ ।

( इति सर्वे गरिजामिति )

पुष्टिद्वारः—अवि पाञ्चाल, अम्बायाः तपस्वीव्रताय च त्रिविधं  
निवर्तय परिजनम् ।

श्रीरसी - महाराज, अम्बाय एव सदेव्यामि—यः स ब्रह्महिम्बस्मिन्मोरम  
गुरजरासंघविजयमल्लस्ते मध्यमपुत्रः ॥ मम हताश्रयाः पशपातेन वानोर्ध्व  
इति । [ महाराज, अम्बाए एव सदेव्यामि— यो सो ब्रह्महिम्बस्मिन्मोरम  
जरासंघविजयमल्लो दे मध्यमपुत्रो सो मम हताश्रय पशपातेन वानो  
गदो ति । ]

पुष्टिद्वारः—भद्रे बुद्धिमतिवे, उच्यतामस्मद्वचनाम्बा ।

येनासि तत्र जतुवेशमनि दीप्यमाने

निर्वाहिता सह सुतैर्भुजयोर्वलेन ।

तस्य प्रियस्य वलिनस्तनयस्य पाप-

माह्वयामि तेऽस्य कथयेत्कथमीदृगन्यः ॥२३॥

आर्यं जयधर, स्वयापि सहदेवसकारं गस्तम्यम् । वक्तव्यं तत्रमवान्ताय  
कुलवृहस्पतिर्माद्वेयः कनीयानस्माकं सकलकुलकुलकमलाकरवावावलो यूपि  
परेलोकमभिप्रस्थितः प्रियानुजमप्रतिकूलं सततमाशंसनीयमसंभुजं स्वतन्त्रेऽम्बु  
एतिमन्तं भवन्तमविरत्तमालिङ्ग्य शिरसि चाग्रायेवं प्रार्थयते -

दपितः बलदपितस्तस्य । विषमः कर्णकठोरः । निर्धोषः सन्तः । वि  
आग्रहः । हृदाभिलाष इत्यर्थः । ततो विलम्ब्यते इति प्रत्यकाहुः । विप्रः ।

विजयमल्लः । ] एतत्संक्षेपम्—योऽसौ मल्लो मध्यमपुत्रस्ते स मम... ।

येनेति । तत्र वारणावते । तथा च भारतम्—योमतेनस्तु रादेव जीवं

द्वीपवी—(मुनकर भयपूर्वक) महाराज, यह किसी बल के गर्वीले की भय-  
शङ्काम्बुनि मुनाई दे रही है। (आपको) अग्य भी अग्रिष्ठ मुनने की अभि-  
है, इसलिये (यह) विलम्ब किया जा रहा है।  
पुथिष्ठिर—नहीं, (अब कोई) विलम्ब नहीं है। उठी।  
(सब जाते हैं)

पुथिष्ठिर—अरी पाऊँवाली, अम्मा और सपत्नियों को कुछ संदेश देकर  
बच्चों को भोटा हो।

द्वीपवी—महाराज, अम्मा को इस प्रकार संदेश दूँगी—ओ बक, हिडिम्ब,  
कर्मोर, जटासुर और जरासन्ध को जीतने वाला मन्त्र, (आपका) भैंसला पुत्र  
म, वह पुत्र मूर्ख के प्रति प्रेम के कारण परलोक चला गया।

पुथिष्ठिर—भद्र बुद्धिमत्तिका, मेरी ओर से अम्मा से कहना—  
है अम्मा, जिसने वहाँ (धारणावत में) सासा-गृह के चलने पर तुम्हें पुत्रों  
हिल भाने भुजबल से निकाला था, (तुम्हारे) चल बसवान् प्रिय पुत्र के  
मन्त्र के विषय में कह रहा हूँ। अग्य ऐसा कैसे कह सकता है ॥२३॥

आर्य अयन्धर, आप भी सहदेव के पास जायें और पान्दु-वंश के वृहस्पति,  
की के पुत्र, हमारे छोटे भाई से कहें कि—सम्पूर्ण कुरुकुलरूपी कमलाकर में  
मल्लि सहस्र, परलोक की प्रस्थान करने वाला पुथिष्ठिर सर्वथा अनुहल रहने  
प्रयाणा के योग्य, विपत्ति में विमूढ़ न होने वाले और अभ्युदय में क्षमा-  
आय प्रिय अनुज का गाढ़ आनिर्जन करके और तिर सूँघकर यह याचना  
है—

पः । जयाम आतुनाशाय सर्वान्मातरमेव च ॥ आ. अ. १४८ श्लो. २० ]  
हेता रक्षिताः । ते आहवामि तुभ्यं वक्ष्यामि । अन्यो मत्त इति रोषः ।  
क ईदृशं दुःखं वक्ष्येद् । किं तु न कोऽपीत्यर्थः ॥२३॥  
सर्वान् कुरुकुलमेव वमलाकरस्तस्य दावानतः । अनेन आत्मनोऽप्यमीड्य-  
कूरता चोक्ता । न ह्यमुडचेता वमलानि दावानसे प्रक्षिपेदिति भावः ।  
नावनुमश्चेति विग्रहः । बहुच्यनियमः इति विदित्येव पूर्वनिपातः ।  
हृदेवम् । अप्रतिफलमायत्तम् । आशंसनीयं प्रत्यानार्हम् । विपत्तावपूह-  
म् । [अभ्युदये प्रतिमन्तं क्षमायानम् ।] आश्राय परिभुम्भ ।

मम हि ययमा दूरेतान्म. मृनेन ममो भवा-

माहजकृतया युद्धया जेहो मनीषिणा मुहः ।

मिर्मि मुकुनी पानी कृत्वा भवन्तमनोऽर्थये

ममि विरगता नेमः स्नेहः निगुमंम वारिहः ॥२४॥

अति च । बाण्ये संवितः स विद्याभिमानिवेष्ट्याम (सहस्रगारम्भा  
ननुमाय ममात्मया कचमे स्वानन्दम् । तनुम्यता ननुमः । नानुगम्यादास्वपार  
स्वया हि वात,

विस्मृत्यास्मान्भ्रुतिविजयया प्रशया सानुजेन

पिण्डान्पाण्डोददकपृथस्तान्भुगर्मान्प्रदातुम् ।

दायादानामपि तु भयने यादवानां कृते वा

कान्तारे वा कृतवसतिना रक्षणीयं शरीरम् ॥२५॥

गण्ड अर्धवर, अस्मच्छरीरस्फुटिकया प्राणिनेन भवनाऽकातहीनविस्मयस  
माचवेणीयम् ।

हीपदी—हता बुद्धिमतिके, भय मम कचमेन प्रियतमो मुमराप्—प्रा  
यस्ताया उत्तरायाश्चतुर्थो मातः प्रतिपन्नस्य मर्त्यस्य । स्वमेवैतं कुलप्रतिष्ठाया  
सावधानं रक्ष । कदापीतः परतोऽगदस्य समुत्तुलस्यस्माकमपि सतिस्वित्तु  
भविष्यति' इति ।

[हता बुद्धिमदिए, अस्माहि मह ब्रह्मणेण विमसही मुमराप्—वज्र ब्रह्मा  
उत्तराए चतुर्थो मातो पडिवण्णसस मम्मसस । तुमं एव कुलपडिदु  
सावहाणं रक्ष । कदा वि इदो परतोऽगदसस समुत्तुलसस अह्माणं वि सति  
विन्दुदो भविस्सदि ति ।]

बुद्धिच्छिरः—(सात्त्व) भोः कष्टम् ।

ममेति । दूरेणाधिकेन [अल्पः कनिष्ठः ।] धृतेनाध्ययनेन । सह  
स्वामाविकी [कृता संस्कारेण वधिता । ०कृपयेति पाठे] कृपा दया यस्यां त्व  
धीरो मनीषी सः प्राज्ञः इत्यमरः । अतः मुकुनी पानी कृत्वाऽऽति वद॥

आप मुझसे अवस्था में बहुत छोटे, ज्ञान में बराबर, सहज और अजित  
दि में बड़े और विद्वत्ता में गुप्त हैं। इसलिये मैं सिर पर दोनों हाथों को मुकुल  
ताकर (=दोनों हाथ जोड़कर) आपसे याचना करता हूँ कि आप मेरे प्रति  
रहे कम कर दें और बिता को जल देने वाले होंगे ॥२४॥  
और भी, मेरी याचना है...

और भी, मेरी यात्रा से, बाटपावस्था में पाले गये, सर्वदा अधिमान करने वाले और हमारे समान हृदय के सार वाले भी नकुल के बचन का पालन करना। इसलिये नकुल से कहना—यह हमारे पथ का अनुगमन न करे। हे वरत आपको—

अनुज सहित ज्ञान से निर्मल बुद्धि द्वारा हमें भुलाकर पापों की विषय और अधु-मिश्रित जल-विन्दु देने के लिये सम्बन्धियों के भवन में अथवा पार्श्वों के कुल में अथवा वन में वास करके (अपने) शरीर की रक्षा करनी है ॥२५॥ जयधर, जाओ । हमारे शरीर को छूकर सोचने लिये हुए आप अविलम्ब अवसर ही कहें ।

ब्रौपदी—सच्ची बुद्धिमत्तिका, मेरी ओर से प्रिय सच्ची सुमित्रा से कहो—  
‘आज बेटो उत्तरा को गर्भ धारण किये चौथा मास है। तू ही इस कुल के  
प्रतिष्ठापक की सावधानी से रक्षा करना। शायद (यही) यहाँ से परलोक गये  
रवधुर-कुल को और हमे जलाञ्जलि देने वाला होगा।’

पुषिडर--(अमुत्र के साथ) ओह ! (बड़ा) बड़ है ।

मयस्तमर्थं इदं याचे । मयि स्नेहे चित्ततां कृपात्वं नेयः । अस्मदर्थं प्राणान्मा  
मयैत्यर्थः । वासिष्ठः निदापोदकस्य दाता ॥२४॥

विस्मृत्येति । सानुजेन स्वयाश्रमान्प्रज्ञया विस्मृत्य पाण्डोः सदनपूयतान्प्रदातु  
रीरं रक्षणीयमित्यन्वयः । पृथगिति विन्दुपृथताः पुमांस । इत्यमरः । श्रुतिर-  
त्यनम् । वसतिर्वसिः ॥२३॥

[सृष्टिका स्पर्शः ।] शक्तिरेव मदङ्गशयवता । अकासहीनं वायुः शोण-  
यस्तेन हीनं यथा न भवेत्तथा । कदाप्येतेनापि परलोकयत्स्यात्मा  
तस्योद्विन्दुर्भविष्यति । अथापन्नसात्त्वा गर्भवती । नाभिकुलं  
तक्षिपति निषापयिष्यति । अत्रस्थस्य विनाशसम्भवात् ।]



शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले मण्डिताशे

पीनस्कन्धे सुसदृशमहामूलपर्यन्तवन्धे ।

दग्धे दैवात्सुमहति तरो तस्य सूक्ष्माङ्कुरेऽस्मि-

न्नाशावन्धं कमपि कुरुते छायायार्थी जनोऽयम् ॥२६॥

साधु । इवान्नीमध्यवसितं करणीयम् । (कञ्चुकिनमवतोऽयं) जयन्धर, स्वशरीरेण शापितोऽस्ति तथापि न गम्यते ।

कञ्चुकी—(साक्रन्दम्) हा देव पाण्डो, तव सुतानामज्ञातशत्रुभीमार्यं नकुलसहदेवानामर्थं दारुणः परिणामः । हा देवि कुम्भित, सोजराजभवनपताने,

ध्रातुस्ते तनयेन शौरिगुरुणा श्यालेन गाण्डीविन-

स्तस्यैवाखिलघातं राष्ट्रनलिनीव्यासोलने दन्तिनः ।

आचार्येण वृकोदरस्य हलिनोन्मत्तेन मत्तेन वा

दग्धं त्वत्सुतकाननं ननु मही यस्याथयाच्छीतला ॥२७॥

( इति ददशित्वान्तः )

पुषिष्ठिरः - जयन्धर, जयन्धर ।

( प्रविश्य )

कञ्चुकी—आज्ञापयन्तु देवः ।

पुषिष्ठिरः—वस्तुमिति खवीमि । न पुनरेतावन्ति आगयेयानि नः । वा

कदाचिद्विजयो स्याद्भ्रातृभ्योऽर्जुनस्तद्वस्तुभ्योऽस्मद्वचनाङ्कुरता,

शाखेति । रोधोऽन्वरोधः । आधिक्यमिति यावत् [शाखारोधेन निरामर  
प्रदशायाविस्तारेण स्थगितमाच्छादित वसुधामण्डलं येन तस्मिन् । मण्डित  
मूलकृता आया दिशो येन । पीनः स्कन्धः प्रकाण्डः यस्य तस्मिन् । पुनरा  
तरोरनुस्यः मरुपूलस्य पर्यन्तः परितो बन्धो यस्य तस्मिन् । ईदृशि पुनरपि  
दग्धे मति तस्य सूक्ष्माङ्कुरे अस्मिन् । छायाया अपी छायाविच्छादितार्थः ।

जनः कमपि कुरुते वियर्थः । आशावन्धं दैवात् कुरुते । आशावन्धं  
नया मर्कटवाक्ये । इति विषयः । छायायार्थी छायाप्रार्थक ।

## पष्ठोऽङ्कः

छाया की कायना करने वाला यह जन (दीपदी) छायाओं के वि-  
श्वो-दण्डन को जाच्छादित करने वाले, विराओं को भूषित करने वा-  
ले वाले और सुषोण्य बड़ी बड़ के चारों ओर बंधान (बबुलरे) वाले,  
[त के माग्य से अल जाने पर उसके इस सुषम भङ्कुर पर विचित्र अ-  
हा है ॥२६॥

दीक है ! अब निश्चित कर्त्तव्य करना चाहिये (बङ्कुरी को देखकर  
जगन्धर, अपने शरीर की सौम्य दिखाई है, फिर भी नहीं जा रहे हो ।

कङ्कपुत्री—(नित्य करते हुए) हाय महाराज पाण्डु, तुम्हारे पुत्र  
रीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का यह क्रूर अन्त ! हाय भोजराज के  
ती पताका देखो कुम्भो,

तेरे भाई के पुत्र, कृष्ण के बड़े, गाण्डीवधारी के साले, और सङ्गुर्न  
के पुत्र कपी कमलिनो के दलन में नल-नप उस कुलीहर के ही आचार्य, ह-  
(बलराम) ने पापल अथवा मर-मत्त होकर तेरे पुत्रकपी बन की, या  
जिसके अवलम्बन से शीतल की, बला दिया है ॥२७॥

( इस प्रकार रोता हुआ बाहर चला गया )

पुधिष्ठिर—जगन्धर, जगन्धर ।

( प्रवेश करके )

कङ्कपुत्री—महाराज माता हैं ।

पुधिष्ठिर—कहना चाहिये, इसलिये बह रहा हूँ । हमारे ऐसे माग्य  
हैं । यदि कहीं वस्तु अर्जुन विश्वी हो जाय तो माय हमारी ओर से (ब-  
रहें—

[कालाण्डुर्वंशाङ्कुरेऽस्मिन् मलिनविन्द्यादिसामादेर्य ॥२८॥

आदुरिति । ते आनुर्वेमुदेवर्य । शौरिगुरणा {शोरेः इच्छर्य  
म्यापसा आना । अर्जुनस्य दयानेन मुमदाया प्रागृत्वा । अशिला प-  
एव मलिनः कमलिनः ताया } म्यालोत्तमं व्यापट्ना । तत्र दलिनः  
पीमस्य आचार्येण गुरणा । हलिनः बलेनाथ च हनवाहकेन ।  
म्यार्यता अथवा मत्तेन शोवेण । ननु यस्याधवासाभय व्याप्य मही  
गन्तिमती आनीतान् स्वात्तुतामनं दण्डम् ॥२९॥



(यह) सब (है) कि मेरे घात (भीम) की मृत्यु का कारण हलधारी (गराम) है, फिर भी यह तुम्हारे सहज मित्र मधु-सूदन (कृष्ण) का भाई है । तब (उस पर) क्रोध नहीं करना चाहिये । यदि जीवित रह जाओ तो वन चले जाना, लेकिन कठोर साज-सज्जा पर न घबराना ॥२८॥

कञ्जुषी—महाराज जैसी आज्ञा है । (बाहर चला गया) ।

मुचिष्ठिर—(अग्नि को देनकर हथ के साथ) ऊपर उठी हुई ज्वाला कपी : से हम जैसे विपत्ति में पड़े हुए लोगों को निमग्नित करने वाला भगवान् जैव प्रकलित हो गया है । (अब) इसमें स्वयं को ईष्य बनाता हूँ ।

श्रीपरी—कृपा कीजिये, महाराज मेरी यह अस्थिम प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये । मैं पहले प्रवेश करूँगी ।

मुचिष्ठिर—यदि ऐसा है, तो फिर हम दोनों साथ-साथ ही, अमृत्यु का भोग करेंगे ।

सेटी—हाथ भगवान् लोकपालों, रक्षा करो, रक्षा करो । यह पाण्डवों के शत्रु, पाण्डवों से अग्नि को दूत करने वाले, सायव-वन से अगल हो दूत करने वाले अर्जुन के बड़े भाई, दानवमरणीय नाम वाले, महाराज विष्टिर हैं । और यह पाण्डवों की राजकुमारी, राजपरी के बीच में उत्पन्न, राजा श्रीपरी हैं । दोनों ही क्रूर अग्नि में प्रवेश करने (उत्तरे) ईष्य हो रहे । इसलिये, हे आर्य लोगों, बचाओ, बचाओ । कैसे ? कोई भी नहीं बचा रहा । (उन दोनों के आगे पड़कर) महारानी और महाराज के क्या भोग ?

अथ [पाण्डवगणः] पुनर्वा वा न विपश्यति । वा वा इति बाह्वीये वावा मुह । न बाह्वीये इत्यतो निषेधः ॥२८॥

[विष्टिर एव हतः विनाहृतः । उद्धता ये विष्टिराहृतारते, बाह्वीये विष्टिः अस्तिनिजः येन स तबोत्त ।] अथ परिचयेन उपदेय वादेन वा ।

अथ परिचयो यस्मात्तदं वरयेतेत्यर्थः ।] अथवाः प्रीतिर वाह्वीये ।

८ । [राजा सोमः मृपने अथ इति राजभूतः । तेन सम्पत्तिः हृदयार्थ देव दुर्गोप शतः स्मृतं वापदेन दत्तं स तबोत्तः । अथवा—उ गुरुतेऽप्या

पुनिष्ठिरः—अपि बुद्धिमतिके, यत्नमेव शिवायुजेन विना मह्यं  
वैतिष्ठोतिष्ठ, भर्तु, उदकमुपनय ।

वेरी—एतेव आशापयनि (इति निष्प्रभ्य पुनः प्रविश्य च) कन्तु  
महाराजः । [यं देवो माजवेदि । जेदु जेदु महाराजो ।]

पुनिष्ठिरः—पाचानि, स्वमपि तावत्तत्तापयानि नो कुकोरस्य विस्तार  
ह्योदकक्रियां कुरु ।

श्रीपदी—महाराज एव करोतु । अहं पुनर्गर्वतर्न प्रवेष्टामि ।

[महाराजो एव करोतु । अहं उरु जनतुं परिमिस्त्वम् ।]

पुनिष्ठिरः—अनतिष्ठमभीवं लोचकृतम् । भर्तु, उदकमुपनय ।

(वेरी तथा करोति)

पुनिष्ठिरः—(पादो प्रधात्योऽस्तृण्य च) एव तावत्तत्तापयानि नो कुकोरस्य विस्तार  
भीष्माय गुरवे । अयं प्रपितामहाय शान्तनवे । अयमपि पितामहाय विपि  
भीर्षाय । (सालम्) तातस्यापुनावसरः । अयमपि तत्रभवते सुगुहोत्तमायै त  
पाण्डवे,

अद्यप्रभृति वारीदमस्मत्तो दुर्लभं पुनः ।

तात माद्रघम्बया सार्धं मया दत्तं निपीयताम् ॥२॥

एतज्जलं जलजनीलविलोचनाय

भीमाय तस्य मम चाप्यविभक्तमस्तु ।

एकं क्षणं विरम वत्स पिपासितोऽपि

पातुं त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि ॥३॥

अथवा मुशत्रियाणां नतिमुपगतं वत्समहमुपगतोऽप्यहो इदम् ।  
भीमसेन,

स्याद्यः प्रातः स्मर्यते बुधैः ।] साण्डवचनादीपनजननस्य किरीटिनो.. इव

। माङ्गेषाय भीष्माय । शान्तनवे शान्तनुनाम्ने ।

। तात मया दत्तमेतज्जलं माद्रघम्बया सह निपीयताम् ॥२॥

पुष्पिष्ठर—भरो बुद्धिमत्तिका, जो प्रेम करने वाले, प्रिय अनुज के बिना  
रहित है, वही (सोचा हुआ है) । हे कल्याणी उठो, उठो; जल से लाओ ।

बेटी—ओ महाराज आज्ञा दें । (यह कहकर बाहर जाकर और फिर प्रवेश  
करके) जय हो, महाराज की जय हो ।

पुष्पिष्ठर—पाञ्चाल-पुत्री, जब तुम भी अपने वल-वाली भीम और प्रिय  
रत्न को जलाञ्जलि दे सो ।

पुष्पिष्ठर—महाराज ही (जलाञ्जलि) देंगे । मैं तो अग्नि में प्रवेश  
करूँगी ।

पुष्पिष्ठर—लोकाचार का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता है । हे भद्रे,  
जल लाओ ।

( बेटी वंसा ही करती है )

पुष्पिष्ठर—(पीर शोकर और आचमन करके) यह जलाञ्जलि पाद्मा-पुत्र  
एव भीष्म के लिये है । यह प्रपितामह शान्तनु के लिये है और यह पितामह  
पुष्पिष्ठर-पुत्र के लिये है । (आमुजों के साथ अब पिला का बार है । यह  
(जलाञ्जलि) आश्वमेध-प्रातःस्मरणीय पिला पाण्डु के लिये है ।

आज के बाद फिर यह जल हमसे मिलना कठिन है, इसलिये, हे तात, मेरे  
पिता दिये गये (जल) की माता माद्री के साथ (मिलकर) पीजिये ॥२६॥

कमल के समान नेत्र वाले भीम के लिये (दिपा हुआ) यह जल उत्तका  
और मेरा सम्मिलित रहे । हे वरस, प्यासे होते हुए भी तुम क्षण-भर छूने  
नो । (इसे) तुम्हारे साथ पीने के लिये मैं यह वेणुपूर्वक आ रहा हूँ ॥२७॥

अथवा समीप जाने पर भी मैं और सत्रियों की गति को प्राप्त हुए वल की  
गति में असमर्थ रहूँगा । वरस भीमसेन,

एतद्विति । [जलजं कुवलयमिव नीले विलोचने यस्य सूर्यं] जलजस्य  
नीला विलासो यत्र सत् । भीमप्रियस्य प्रीतिविषयभीमस्य । भविष्यत्  
शदारणम् । हे वरस भीम । [पिपासितः संवाततृप्छोऽग्नि एकं पाण] विरम  
श प्रतिपालय । अयमहं एतज्जलं स्वया सह पातु  
वर्तमानमापीष्ये भविष्यति नट] ॥२८॥

गति स्वर्गम् । [अकृती अक्षयर्षः ।]

युधिष्ठिरः—अयि युद्धिमतिके, यद्दत्तस्तेन प्रियानुजेन विना सह्यं  
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, भद्रे, उदकमुपनय ।

चेटी—यद्देव आज्ञापयति (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य च) अयु  
महाराजः । [जं देवो आणवेदि । जेदु जेदु महाराजो ।]

युधिष्ठिरः—पाञ्चासि, त्वमपि तावत्सकपक्षपातिनो वृकोदराय प्रियस्व  
स्योदकक्रियां कुरु ।

द्रौपदी—महाराज एव करोतु । अहं पुनर्ज्वलनं प्रवेक्ष्यामि ।

[महाराजो एव करोतु । अहं उवा जलस्य पवित्रिस्त्वम् ।]

युधिष्ठिरः—अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम् । भद्रे, उदकमुपनय ।

(चेटी तथा करोति)

युधिष्ठिरः—(पादौ प्रक्षाल्योत्सृज्य च) एव तावत्सकपक्षपातिनो वृको  
भीष्माय गुरवे । अयं प्रवितामहाय शास्तनवे । अयमपि विनामहाय विधि  
धीर्याय । (सालम्) तावत्स्यापुनावसरः । अयमपि तत्रभवतो दुर्गुणोक्तान्ते नि  
पाण्डवे,

अद्यप्रभृति वारीदमस्मत्तो दुर्लभं पुनः ।

तात माद्रघम्यया सार्धं मया दत्तं निपीयताम् ॥२॥

एतन्नमं जलजनीलविलोचनाय

भीमाय तस्य मम चाप्यविभक्तमस्तु ।

एकं क्षणं विरम वत्स पिपासितोऽपि

पातुं त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि ॥३॥

अथवा गुजजिपातो वनिमुपगमं कन्तवह्नुगणतोऽप्यहो गुरु ।

भीममेव,

स्वायः प्रातः स्वर्गते कुप्यः ।] शास्त्रद्वयवासीनवननगर किंतिनी . ५१

... । उपरतूरपाचम्य । माह्वयाय भीष्मान् । शास्तनवे शास्तनवे ।

अथेति । हे तात मया दत्तमेवन्नमं माद्रघम्यया सह निपीयताम् ॥२॥

पुष्पिष्ठिर—अरी बुद्धिमत्तिका, जो प्रेम करने वाले, प्रिय अनुज के वि-  
वित है, वही (सोचा हुआ है) । हे कस्याणी उठो, उठो; जल से लाओ ।

चेटी—जो महाराम आता है । (यह कहकर बाहर जाकर और फिर प्रवे-  
शके) जय हो, महाराम की जय हो ।

पुष्पिष्ठिर—पाञ्चाल-पुत्री, जब तुम भी अपने पक्ष-पाती भीम और प्रिय  
जून को जलाञ्जलि दे लो ।

श्रीपत्नी—महाराम ही (जलाञ्जलि) दें लें । मैं तो अग्नि में प्रवेश  
हूँगी ।

पुष्पिष्ठिर—लोकाचार का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता है । हे नट,  
त लाओ ।

( चेटी वृत्ता ही करती है )

पुष्पिष्ठिर—(पैर छोकर और आचमन करके) यह जलाञ्जलि गङ्गा-पुत्र  
त भीष्म के लिये है । यह प्रियतामह शान्तनु के लिये है और यह पितामह  
शचिप्रवीर्य के लिये है । (जातुओं के साथ अक्ष पिता का चार है । यह  
जलाञ्जलि) आरक्षणीय प्रातःस्मरणीय पिता वाण्डु के लिये है ।

आज के बाद फिर यह जल हमसे मिलना कठिन है, इसलिये, हे तात, मेरे  
परा दिये गये (जल) को माता माझी के साथ (मिलकर) पीजिये ॥२६॥

कमल के समान मेघ वाले भीम के लिये (दिया हुआ) यह जल उसका  
शेर मेरा सम्मिलित रहे । हे वरत, ध्यासे होते हुए भी तुम क्षण-भर छहरे  
हो । (इसे) तुम्हारे साथ पीने के लिये मैं यह बेगपूर्वक आ रहा हूँ ॥३०॥

अथवा समीप जाने पर भी मैं और क्षत्रियों की वृत्ति को प्राप्त हुए वत्स को  
पाने में जतनर्ष रहूँगा । वरत भीमसेन,

एतद्विति । [जलार्थं कुलसमयिव नीले विलोचने यस्य तस्मै] जलजस्य  
पिता विलासो मम तद् । भीमप्रियस्य प्रीतिविषयभीमस्य । अविप्रक्षलं  
विशारदम् । हे वरत भीम । [विप्रासितः सवातृपुत्रोऽपि एक शशु] विरम  
या प्रतिपालय । अयमहं एतज्जलं स्वयां सह पातु अवादेपादापतोऽस्मि  
स्वमानमाभीष्ये भविष्यति सट् ॥३०॥

वति स्वर्गम् । [अहूतो जलमर्षः ।]



मया पीतं पीतं तदनु भवताम्वास्तनयुगं  
मदुच्छिष्टं वृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया ।

वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू-  
निवापाम्भः पूर्वं पिबसि कथमेवं त्वमधुना ॥३१॥

हृष्णे, त्यमरि देहि तमित्ताञ्जलिम् ।

श्रीपरी—हृष्णे बुद्धिमतिके, उपनय मे तमितम् ।

[हृष्णे बुद्धिमदिए उवल्लोहि मे तमिनम् ।]

( चेटी तथा करोति )

श्रीपरी—(उपमृत्य जलाञ्जलिं पूरयित्वा) महाराज, कस्मै सत्तिलं दद्यामि  
[महाराज कस्मै सत्तिलं देहि ।]

युधिष्ठिरः—

तस्मै देहि जलं कृष्णे सहसा गच्छते दिवम् ।

अम्बापि येन गान्धार्या रुदितेन सखी कृता ॥३२॥

श्रीपरी—नाथ भीमसेन, परिजनोपनीतमुदकं स्वर्गगतस्य ते पादोदकं ।

[नाह भीमसेन, परिजलोवणीदं उदकं सम्यगदत्त दे पादोदकं मे]

युधिष्ठिरः काल्पनाग्रज,

असमाप्तप्रतिज्ञेऽस्तं याते त्वयि महाभुजे ।

मुक्तकेरयैव दत्तस्ते प्रियया सलिलाञ्जलिः ॥३३॥

श्रीपरी—उत्तिष्ठ महाराज, दूरं गच्छति ते भर्ता ।

[उत्तुं हि महाराज दूरं गच्छदि दे भाता ।]

मयेति । [मया अम्बास्तनयुगं लक्षणाया स्तनयुगजं पंचः पीतं तदनु मया  
पीतम् । वत्सलतया भयि स्नेहात् मदुच्छिष्टं रसैः रसवद्भिः भोग्यविशेषैः कृ-  
जनयसि । वितानेषु यज्ञेष्वपि सोमे सोमपाने एवं तव मम च विधिरभू-  
अधुना तु त्वं निवापाम्भः एवं पूर्वं कथं पिबसि । तदनु उत्तरत्वात् । रसैर्वत्स-  
वृत्तिं वर्तनम् । अनुविस्तारयोस्त्वौ वितानम् । इत्यमरः । साम्यो विधिः क-

जाने माता के दोनों स्तनों की मेरे पी चुकने के बाद दिया था । तुम :  
के कारण मेरे बच्चे हुए रसीले भोजन से आहार करते थे । यज्ञों में भी सोम  
विषय में मेरा और तुम्हारा यही द्वंद्व था । (फिर) तू अब तर्पण के जल को इस  
प्रकार पहले क्यों पी रहा है ? ॥३१॥

कृष्णा, तुम भी जलाञ्जलि दो ।

द्वीपदी—सखी जुद्धिमतिषा, मेरे पास जल साओ ।

( बेटी बंसा करती है )

द्वीपदी—(मभीन जाकर और जलाञ्जलि भरकर) महाराज, कितने  
जल है ?

धूमिष्ठिर—

हे कृष्णा, अकस्मात् स्वर्ग को चले जाने वाले उस (भीम) की जल हो,  
जिसने रोवन द्वारा माता जी की भी नाग्यारी की सखी बतल दिया है ॥३२॥

द्वीपदी—नाथ भीमसेन, सेनक द्वारा लाया हुआ (यह) जल स्वर्ग में गये  
ए आपके लिये अरणीदक होने ।

धूमिष्ठिर—हे अर्जुन के बड़े भाई,

प्रतिष्ठा बिना पूर्ण किये (हूँ) तुम महाबाहु के निषेध को प्राप्त हो जाने  
: खुने हुए केशों वाली ही तेरी प्रिया मे (तुम्हें) जलाञ्जलि दी है ॥३३॥

द्वीपदी—महाराज, उठिये । आपके भाई दूर चले जा रहे हैं ।

गरः । साम्य इति चातुर्वर्ण्यदित्वात्स्वार्थे व्यञ्ज । साम्ये विधिः इति पाठे  
साम्ये तुल्यत्वे विधिरित्यर्थः । साम्ये विधिः इति पाठे सोमलताद्वयपानेज्यं प्रकार  
इत्यर्थः । निषादः पितृदण्डम् ॥३४॥

तस्मा इति । सहसा शीघ्रं जलं देहीत्यन्वयः । येन [इदितेन हेतुना  
तस्यापि नाग्यार्थः सखी कृष्णा । पाठान्तरे] नाग्यारीइदितेनाभ्यापि सखीकृष्णा  
देवदत्तो कृतेत्यर्थः ॥३५॥

काल्पुनोऽर्जुनः ।

असमाप्तेति । [प्रतिज्ञेऽपि पाठे इति पाठे याते दिवमिति दोषः  
वदाः केषां यस्यास्तथा ।] ॥३६॥

पुधिष्ठिरः— (दक्षिणाश्लिष्टपन्दनं सूचयित्वा) पान्नाति, निमित्तानि  
कथयन्ति संभावयिष्यन्ति मुक्तोदरमिति ।

डोपदी—महाराज, सुनिमित्तं भवतु । [महाराज सुनिमित्तं भोदु ।]

( नेपथ्ये कतकसः )

( प्रविश्य संभ्रान्तः )

कञ्जुकी—परिचायतां परिचायतां महाराजः । एष खलु दुरात्मा कीर  
पसदः कतकाभिषेकपाटलिताम्बराशरीरः समुत्थितदिग्धभीषणगदापाणिद्वय-  
कालदण्ड इव कृतान्तोऽप्रभवती पान्नालराजतनयामितरततः परिमार्जयाम्  
एवामिवर्तते ।

पुधिष्ठिरः—हा बंब, ते निर्भयो जातः । हा वाग्भीषणम्बन्,

( इति मुह्यति )

डोपदी—हा आर्यपुत्र, हा मम स्वयंवरस्वयंवाहकुलंति, त्रिं भातरपुत्र-  
तीति, नपुत्रमहाराजमिमं वातजनं च । (इति मोहमुपगता)

[हा अत्रवत् हा मम मयंवरसत्रगाहकुलतिद त्रिं भातुं नपुत्रो-  
त्त उल्ल महाराज इमं दातव्यं च ।]

पुधिष्ठिरः—हा वरत सज्जतादिन्, हा विलोचनाङ्गनिलेखन, हा नि  
कचभोद्धरनिलपटकीकृतामरलोक, हा वरप्राप्तमपुमिद्विनीयतापत, हा श्री  
चारुंशिविष्टम्, हा अत्यशिक्षावपारितोषिणगाङ्गेय, हा राधेयकुलकनि

महाराज वलिष्ठोनिष्ठ । मे भर्ता । संभावयिष्यन्ति प्राप्स्यन्ति । [कीर-  
पसदः कीरवागमद । क्षणाज्वापने इति] कतकं रत्नं [तेन पाटलिने रत्नी  
अम्बराशरीरे वस्य] अम्बरं वाम । [नपुंश्रुता वा शिवा रत्नविता श्रीका-  
मरा वा वली वस्य ।] वशमन्तिः अतिरक्तवेदसगद्देवर्षः । हा मम वरा  
वसवः हनुमन्ति भानृतिव परमोत्तमनुवर्त्तन्ति । [स्वयंवरः वः स्वयंवरः वः  
वर्त्तन्ति वस्य न एव दुर्ननिर्णयव । वरपटले कृतनिषेधवर्षः । वरं व-  
रपटले वल्लवदुर्निर्णय इति वरनिर्णय ।]

सध्येन वापदरेण सध्ये वलिष्ठहनुमेदेव वावायु वरं मे भर्ता वल्लव-  
[ ] सध्येन वलिष्ठहनुमेदेव । [विलोचनाङ्गनिलेखन विदुषोवर्त्तन्ति वल्लव-

पुषिष्ठिर—(दाहिनी ओल का चढ़कना सूचित करके) पान्चाल-पुत्री, जि  
अबुन बतता रहे हैं कि तुम कुशेदर को प्राप्त करोगी ।

श्रीपदी—महाराज, (आपका) शकुन सत्य होवे ।

( नेपथ्य में कलकल ध्वनि होती है )

( प्रवेश करके धनराया हुआ )

कञ्जुकी—बचाइये, महाराज बचाइये । वह कुछ अथम कीरव, ध्विर में  
नान से ताल वस्त्र और दाहीर बाला, हाथ में उठाई हुई और ध्विर से)  
तल भीषण गदा बाला, यानो कालकण्ठ उठाये धनराज, आचरणीय पान्चाल  
अकुमारो को इधर-उधर खोजता हुआ, इधर ही आ रहा है ।

पुषिष्ठिर—हाथ बँध, तेरा निर्णय हो गया । हाथ, गान्धीव-धनुर्धारिन्  
(यह कहकर सूचित हो जाता है)

श्रीपदी—हाथ, आर्यपुत्र ! मेरे स्वयंवर में स्वयं ग्रहण करने के पुराग्रही  
मर्जून), आपने (भी) प्रिय भाई का अनुगमन किया; लेकिन महाराज और  
म दासजन का (विचार) नहीं (किया) । (यह कहकर सूचित हो जाती है) ।

पुषिष्ठिर—हाथ बल मर्जून, हाथ त्रिनेत्र शम्भु के अङ्गों पर मर्दन करने  
ले मझ, हाथ निषातकवच नामक देवों का नाश करके देवलोह को  
लकष्टक करने वाले, हाथ अदरिकायम के मुनियों (नर-नारायण) में से कुसदे  
पक्षी, हाथ शोणाचार्य के प्रिय शिष्य, हाथ अस्त्र शिला के बल ॥ गङ्गापुत्र  
तामह भीष्म को सन्तुष्ट कर देने वाले, हाथ राधा-पुत्र (कर्ज) के कुलक्षपी

एवे मर्दने मझ ।] निवातेति । निवातकवचनामर्दयेहनेन नि.उपबृत्त-  
रलोक इत्यर्थः । [निवाचकवचा नाम दानवा मम सत्रक । समुद्रकृतिमाधित्य  
र्षे प्रतिवसन्त्युत । तिस्रः ऋषयः समाख्यातास्तुष्यकरवत्प्रभा । इत्यादि वचा  
रते वनपर्वणि द्रष्टव्या । न. ६८-७१, ७३] । अर्दयाधमो वदिकायम ।

उत्र यो मुनी नरनारायणौ तयोः द्वितीयः तापसः । नारायणस्य  
मुन्योरिति निर्धारणे सप्तमी । [तदुक्तं महाभारते—नरस्त्वं पूर्वदेहे वै  
सहायवान् । ददयां तप्तवानुर्ध्वं तपो वर्षाशुक्लान् बहून् ॥ इति] ।

वमसिनी तस्याः प्रातेववर्षे हिमपातः । तस्य विनायनेत्यर्थः ।

दुःशासनेन कचकर्पणमिध्रमोलिः

सा द्रोपदी कथयत क पुनः प्रदेशे ॥३५॥

कञ्जुको—हा देवि यज्ञत्रेहिसंमन्त्रे, पुरिमृषमे संप्रयनाया दुरदुनकतङ्क

पुषिष्ठिरः—(सहस्रोत्थाय सावटम्भम्) वाञ्छति, न मेरय्यम् । (समंभ्रम

कः कोऽयं भोः । सनिषङ्गं मे वनुदपनव । दुरात्मन्दुष्योपनहृतक, प्राग्वष्टागव

मपनयामि ते गराकोशससंभृतं भुजवर्षं शिलीमुगतासारेण । अथच रे दुरदुन

झार,

प्रियमनुजमपदयस्तं जरासंधशत्रुं

कुपितहरकिरातायोधिनं तं च वत्सम् ।

त्वमिव कठिनचेताः प्राणितुं नास्मि शक्तो

ननु पुनरपहर्तुं वाणवर्षस्तवासून् ॥३६॥

(ततः प्रविशति गरापाणिः सतशक्तिसर्वाङ्गो भीमसेनः)

भीमसेनः—(उद्धतं परिक्रामन्) भो भोः समस्तपक्षकसंचारिणः तं

कोऽयमावेगः ।

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलसाविताङ्गः प्रकामं

निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि ।

कचाना कर्पणमाकर्षणं । कचः केशः धिरोऽहः । इत्यमरः । तेन ।) भिन्नं  
विदारितधम्मिह्ना । मोलिः किराटे धम्मिल्ले इति विश्वः । [सा द्रोपदी पुन  
कस्मिन् ।] प्रदेशेऽस्तीति शेषः । कथयत लमिति शेषः ॥३५॥

हा देवि अर्थसूचनरूपा धृतिकेयम् । अन्तः पटीप्रविष्टं संक्रियतेऽर्थस्य सूचन  
धृतिकार्यप्रकाशनम् । इति भरतः । इह सादननायावमर्षसंधिः । यदाह  
योगकार्योपगमनं सादनं समुदीरितम् । [सनिषङ्गं सगुणोरम् । संभृतमुपनिनम्

प्रियमिति । कुपितः हर एव किरातः हरकिरातः । किरातरूपी हर इत्यर्थ  
[तेन सहापुष्यते इति] तं वत्समर्जुनम् । प्राणितुं जीविनुम् । त्वमिवेति शक्तिरे

है शीपदी अब किस स्थान पर है ? (मुझे) बतलाओ ॥३५॥

अङ्गुली - हाथ यज्ञवेदी से उत्पन्न देवी, अब तू अनाथ होकर कुक्कुट के शीपुत (कुर्वोष्य) द्वारा अपमानित हो रही है ।

विहिरः - (एकदम उठकर सभलते हुए) पाञ्चाल-पुत्री, इरो मत, इरो (जल्दी से) धरे । यहाँ कोई है ? तुषीर-सहित मेरा अनुप सामो । कुट, योषन, आ, आ । मैं बाणों की वृष्टि से तेरे शवा-नैपुण्य से उत्पन्न बाहु-अभिमान को दूर किये देता हूँ । और भी, भरे कुक्कुट के लिये अज्ञात-

समय के शत्रु उस प्रिय अनुज को और कुपित किरातकपधारी शत्रु-रत्ने बाते उस बास को न देखता हुआ मैं तुम बटोर बिना बाते के बिना रहने में समर्थ नहीं हूँ, लेकिन बाण-वर्षा से तेरे प्राण अपहरण में समर्थ हूँ ही ॥३६॥

तब हाथ में गदा लिये और बधिर से सब आँहों में निज भीममेव प्रवेदा करता है । )

न - (अचङ्कित इधर-उधर घूमते हुए) हे समस्तपञ्चक में घूमने, यह कैसी घबराहट है ?

लोई) रासत हूँ और न (कोई) पुनः । मैं शत्रु के बधिर कभी जग-दुबाये हुए अहमों बाणा और विनाश प्रतिज्ञा कभी ध्वज लागत की हुमा बोधी क्षत्रिय हूँ । मुट कभी अग्नि की स्वाभावों में जजने

एव श्रीविष्णु दातस्तथा नाहुमिदम् । [नमोऽभ्यासकर्म, पुनरप-  
रिच । न चेति पाठे न च नास्ति तान् दानि शोभन् ।] न  
॥३७॥

[अहं रातो न । भूतो न । इषाम स्थो रक्षितेव अम मेव  
सिक्तमज्ञाय तपोनः । निम्नीर्णः अरः दुर्गो अस्ति एव  
गहनं दुर्गो भानो देव । निम्नीर्णः अरः अस्ति एव एव  
ते वा ।] अमनिधिह्वय इत्यत्र दुर्गनिर्णयितेति नान्यदेव

भो भो राजन्यवीराः समरशिखिनिस्त्रादग्धनेपाः कृतं व-  
स्त्रासेनानेन लीनैर्हंतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ॥३७॥

कथमम्बु भवन्तः कस्मिन्नुद्दे पाञ्चाली तिष्ठति ।

द्रौपदी—(सम्पत्तंजा) परित्रायतां परित्रायतां महाराजः ।

[परित्रात्रदु परित्रात्रदु महागम्भो ।]

कञ्जुषी—देवि पाण्डुसुपुत्रे, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । संप्रति प्रदिति विज्ञात्रे  
एव श्रेयान् ।

द्रौपदी—(सहसोत्थाय) कथं न संभावयाम्यद्यापि चितासमीपम् ।

[कहं एव संभावेमि अत्रचि चितासमीपम् ।]

मुषिष्ठिरः—कः कोऽत्र भोः । सन्निपद्गं धनुस्त्वय । कथं न कश्चित्  
जनः । भवतु । बाहुपुद्गेनैव दुरात्मानं पादमातिद्वयं ज्वलनमग्निपात्रजावि  
(परिकरं यज्जाति)

कञ्जुषी—देवि पाण्डुसुपुत्रे, संयम्यन्तामिदानीं नयनोपरोधिनो दुःशाक  
दृष्टा मूर्धजाः । अस्तमिता संप्रति प्रतीकाराशा । चितासमीपमेव दू-  
र्षमावय ।

मुषिष्ठिरः—दृष्टो, न खल्वनिहते तस्मिन्पुरात्मनि दुर्योधने संहर्तव्याः केद-

भीमसेनः—पाञ्चालि, न खलु मयि जीवति संहर्तव्या दुःशाकनविकृति  
वेगिरारमपाणिभ्याम् । तिष्ठतु तिष्ठतु । स्वयमेवाहं संहरामि ।

( द्रौपदी भयादपसंति )

भीमसेनः— तिष्ठ, तिष्ठ । भीम, कायुता गम्यते । (इति वेष्टेपु ईदं  
मिच्छति)

मुषिष्ठिरः—(वेगाद्भीममानिद्वय) दुरात्मन्, भीमार्जुनरात्रो, सुयोधन

आशंगवादनुदिनं जनितापराधो

मत्तो बलेन भुजयोर्हंतराजपुत्रः ।

कोपनः कोपनीनः क्षत्रियः अस्मि । भो भो समरमेव तिनी व

वेपा भवशिष्टाः रात्रन्दवीराः कः अनेन शस्त्रेन कृत

बचे हुए हे क्षत्रिय वीरों, आप लोगों को यह भय नहीं चाहिये, जो (आ  
गे) मरे हुए हार्पियों और घोड़ों की ओट लिये हुये छिपे बंटे हैं ॥३७॥  
आप लोग बतलायें पाञ्चाल-पुत्री किस जगह है ?

द्वीपदी—(चेतना प्राप्त करके) रसा कीजिये, महाराज रसा कीजिये ।

कञ्चुकी—देवी, पाण्डु की पुत्रवधू, उठिये, उठिये । अब सट से चिता से  
हो जाना ही अच्छा है ।

द्वीपदी—(एकदम उठकर) अभी भी चिता के समीप कैसे नहीं जाऊँगी ?

मुनिहिर—अरे ! यहाँ कोई है ? तूभीर-सहित धनुष लाओ । कैसे ? कोई  
रोक नहीं है ! अच्छा, बाहु-बुद्ध द्वारा ही (इस) दुष्ट का पाद आतिथ्य  
आग में गिराये देना हूँ । (यह कहकर कमर कसता है) ।

कञ्चुकी—देवी पाण्डु की पुत्रवधू, आँखों को ढकने वाले, कुशासन द्वारा  
मारे, अपने कैशों को अब बाँध लो । अब प्रतिशोध की आशा नष्ट हो गई  
तुम्हारी से चिता के समीप हो चली ।

मुनिहिर—हे वृष्णा, उस दुष्ट दुर्घोषन के बिना मरे केश न बाँधो ।

भीमसेन—हे पाञ्चाल-पुत्री मेरे जीवित रहते कुशासन द्वारा खोली गई  
तो अपने हाथों से नहीं बाँधोगी ।

( द्वीपदी भय न दूर भागती ? )

भीमसेन—ठहर, ठहर । हे कातर, तू अब कहाँ जा रही है ? (यह कहकर  
कहना चाहता है) ।

मुनिहिर—(वेगपूर्वक भीम से लिपटकर) दुष्ट, भीम और अर्जुन के शत्रु,  
घोषन,

पापी, बारम्बारसे ही प्रतिदिन अपराध करने वाला, बल से मल

ये करिगुर्यास्तैः अस्तहितैः तिरोहितं मतः नीर्नन्यं पतैरिव दुष्पाभिः  
स्वीयते । न तथा स्वातन्त्र्यमिति भावः । पापफलमेवम् ॥३७॥

दिति सत्वरम् । विस्तृता विस्तृतिना । निषङ्गेन तूभीरसहितम्  
पर्यङ्कपरिवारयोः इत्यन्तरः । ॥ धनुर्नैवेत्ययं ।

नीशवाविति । [पाप आत्मशुद्ध्यान्वातप्रभृति अनुदिन दिने दिन

रितारब्ध अपराधा येन स तथा । मुनयोबलेन मतः ॥ ३७ ॥



प्रायाद्य मेऽन्तरमिदं भुजपञ्जरस्य

जीवन्प्रयासि न पदात्पदमद्य पाप ॥३८॥

श्रीमतेनः—अये कथमार्यः सुयोधनशङ्कया जीवात्रिर्वर्षं मामातिङ्गति ।

कञ्चुकी—(निरूप्य महर्षम्) महाराज, वञ्चयते । अर्थं छत्राणुमान्श्रीमतेनः सुयोधनक्षतजावणीकृतसकलशरीराम्बरो दुर्लभाव्यक्तिः । धलमधुना संदेहेन ।

बेटो—(झोरीमानिङ्गय) देवि, निवृत्त्यर्ता निवृत्त्यस्ताम् । एष क्व पुनरिति-  
तिज्ञामारो नापस्ते वेणीसंहारं कर्तुं स्वामेवान्विष्यति ।

[देवी एतद्वीअदु निवृत्तीअदु । एवो क्व पुनरित्यङ्गिणामारो नाहो दे-  
वीसंहारं कादु तुष एव अणोतेदि ।]

श्रीवडी—हज्जे, किं मामलोकवचनराधासयति ।

[हज्जे किं म अलीअवअणेहि आसासेसि ।]

पुधिष्ठिरः—जयंघर, किं कथयसि नायमनुमद्वेणी सुयोधनहृतकः ।

भीमसेनः—देव भजातशत्रो, भीमार्जुनपुरो, कुतोऽद्यापि सुयोधनहृतकः ।

वा हि तस्य दुरात्मनः पाण्डुकुलपरिभाविनः—

[मौ क्षिप्तं शरीरं निहितमिदमसृक्चन्दनाभं निजाङ्गे  
लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरुदधिपयःसीमया सार्धमुर्व्या ।

त्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणानौ

नामैकं यद्ब्रवीषि क्षितिप तदधुना धार्तराष्ट्रस्य शेषम् ॥३९॥

तार्जुनी येन स तथा । स्वमद्य मे भुजी एव पञ्जरं तस्य अन्तरमासाद्य जीवद्  
राक्षसपि न प्रयासि ।, [पाठान्तरे] संकटं भव्यम् । स्व जीवन्सपदात्पदमद्य-  
। न प्रयास्यसि । वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्धा इति भविष्यति'मद् । वद्वा ।  
तलीनक्रियाया वर्तमानत्वाद्वर्तमाने लट् ॥३८॥

[सुयोधनस्य क्षतजेन अक्षणीकृतं रक्तीकृतं सकलं शरीरं अम्बरं च यस्य स  
क्तः । दुर्मेक्षा दुर्ज्ञेया व्यक्तिः स्पष्टाकारो यस्य स तथा ।] वेणीसंहारं  
। दग्धनम् । अलीकवचनः [मिथ्याभाषणः ।] पाण्डुकुलं परिमवतीति पाण्डु-  
परिभावी तस्य ।

भूमाविति । [मया तस्य शरीरं भूमौ क्षितम् । इदं तस्य असृक् चन्दनेन

इसा तु, जिसने राजपुत्रों (भीम और अर्जुन) को मारा है, आज मेरे  
बाहुकपी पञ्जर के मध्य में आकर एक पग से (दूसरा) पग जीवित न जा  
सकेगा ॥३८॥

भीमसेन—अरे कैसे ? आर्य दुर्योधन के भ्रम से जोष के कारण निर्दयता  
से मेरा आसितन कर रहे हैं ।

कञ्चुकी—(ध्यान से देखकर हृष के साथ) महाराज, आप सोचा था र  
[ । यह तो आपुष्मान् भीमसेन हैं, जिनका सम्पूर्ण शरीर और वस्त्र सुयोधन के  
हथियार से लाल हो गये हैं, (और इसलिये) जिनको यह धामना कहिये हो रह  
है । (अब कोई) शङ्का नहीं करनी चाहिये ।

छेटी—(श्रीपदी का आसितन करके) हे देवी, लौट आओ, लौट आओ ।  
यह आपका स्वामी, जिसने प्रतिज्ञा के मार को पूरा कर लिया है, आपकी बेनी  
बाँधने के लिये आपको ही दूँद रहा है ।

श्रीपदी—सखी, क्यों मूठे वचनों से मुझे आश्वासन दे रही हो ?

मुक्षिहिर—जयन्धर, क्या कह रहे हो कि यह मेरे छोटे भाइयों का दश  
भीम दुर्योधन नहीं है ।

भीमसेन—महाराज अज्ञातकानु, भीम तथा अर्जुन के बड़े भाई, अब भी  
दुर्योधन कहाँ से (आया) ? मैंने पाण्डु के कुल का अवमान करने वाले उस  
कुलामा के—

शरीर को पृथ्वी पर फेंक दिया है और अपने शरीर पर (उसका) यह  
बादन-सहस्र रधिर लगाया है । आर्य में पृथ्वी के साथ, चारों समुद्रों का जल  
जिनकी सीमायें हैं, सभी स्थित हो गयी है; सेवक, मित्र और दोस्त—यह  
सम्पूर्ण कुरुकुल पुद्गलिन में जल गया है । हे पृथ्वीपति, धृतराष्ट्र के पुत्र का यह  
एक नाम ही शेष रह गया है, जिसे आज कह रहे हैं ॥३९॥

नरशं यथा तथा चन्दनार्चं निराङ्गं निहिनम् । चतुर्णामुद्धीनां पयस्वरेण  
वीर्यानां यस्याः सा तयोक्तया । उर्या भूम्या सह श्रीं आर्यं त्वयि निपण्णा  
स्थिता । मृत्याः कुरुषामिति शेषः । [मित्रानि योदा अस्मिन् कुलकुल च  
इत्येतदङ्गानां दायम् । हे क्षितिप यद् नाम त्वयोपि तदेवमनुरा दानं राक्षस  
दुर्योधनस्य । शेषमवशिष्टम् ।] शेषमवशिष्टं चमत्कृतं त्वयि दाय-  
वधेयम् ॥३९॥



पुष्पिष्ठिर—(घोरे से छोड़कर भीम को देखता हुआ आसू पोछता है) ।

भीमसेन—(पैरों पर गिरकर) आर्य की वय हो ।

पुष्पिष्ठिर—वत्स, आँसुओं से नेत्रों के आच्छन्न होने के कारण मैं तुम्हारे कभी चन्द को देख नहीं पा रहा हूँ । इसलिए अतलाओ, आप अर्जुन सहित कित तो हूँ ?

भीमसेन—आप राजा के सम्पूर्ण शत्रुपक्ष को मर्द कर देने पर भीम जीर्ण ज्योतिर्लभ हूँ ।

पुष्पिष्ठिर—(फिर ग्राह आलिङ्गन करके) ।

शत्रु के नाश की बात रहने दो । मुझे सँकड़ों बार (=बार-बार) यह साधो कि क्या तुम सबकुछ ही मेरे वह प्रिय भाई हो, जो बक का दास्य है ?

भीमसेन—आर्य, मैं वही हूँ ।

पुष्पिष्ठिर—

(क्या) आप युद्ध में दबिर्-बर्बा कभी जल बाले, जरासाय के बलःस्थल में साक्षात् में मटायात की भीडा करने में सुन्दर (अतीत होने वाले) मकर ? ॥४०॥

भीमसेन—आर्य, मैं बड़ी हूँ । इसलिये आर्य मुझे लण भर के लिये हूँ ।

पुष्पिष्ठिर—और क्या शेष रह गया है ?

भीमसेन—आर्य, बहुत बड़ा (कार्य) शेष रह गया है । अब सुयोधन के घर से भीमे हुए इस हाथ से पाञ्चाली के कुशासन द्वारा खींचे गये उत्तम लों की बाँधूँगा ।

पुष्पिष्ठिर—आप जल्दी से जायें । (वह) बेचारी बेबी बाँधने के आनन्द का भोग करे ।

भीमसेन—(दीपदी के समीप जाकर) हे पाञ्चाल की राजकुमारी देवी, तु-तुन के नाश के लिये आपको बधाई है । इस प्रकार के मुझे देखकर भय बस करो, दस करो ।

राजाओं की समा में जिस भर-रूप में पशु, कुशासन ने मुझे मसीटा पा, स्व मशीउनीपाणि मम करयोः स्थितानि स्थितानि अमृञ्जि रदुः । हे बान्ने

स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करभ्यः पीतशेषाभ्यसृञ्चि ।  
कान्ते राज्ञः कुरुरणामपि सरसमिदं मद्गदाचूर्णितोरो-  
रङ्गेऽङ्गेऽसृङ्निपिक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ॥

बुद्धिमतिके, क ता संप्रति मातुमती योपहरति पाण्डवराज । भव  
यज्ञवेदिसंभवे प्राप्तसेनि ।

द्वीपदी—आज्ञापयतु नाथः । [आणवेदु गाहो ।]

भीमसेनः—स्मरति भवती यन्मयोक्तम् । (बभ्रुवेत्यादि १-२१ पूर्वो  
पठति) ।

द्वीपदी—नाथ, न केवलं स्मरामि । अनुभवामि च नाथस्य प्रसादेन ।

[आह एा केवलं सुमरामि । अनुभवामि च आहस्त प्रसादेण ।]

भीमसेनः—(वेणीमवधूय) भवति, संस्पृशतस्मिन्वानीं घातंराहुकुतहातराणि  
र्षुःशासनवितुलितेवं वेणी ।

द्वीपदी—नाथ, विस्मृताऽस्म्येतं व्यापारम् । नाथस्य प्रसादेन पुनरपि  
शिक्षिष्ये । [आह विसुमरिदक्षि एद वापारम् । आहस्त प्रसादेण पुनो  
तिविक्षत्सम् ।]

भीमः—(वेणी यध्नाति)

( नेपथ्ये )

महासमरानलदग्धशेषाय स्वस्ति भवतु राजगणकुलाय ।

क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि ।

प्रत्याशं मुक्तकेशान्यतुलभुजवलयैः पार्थिवान्तःपुराणि ।

मद्गदा चूर्णितो कुरु यस्य तस्य कुरुराज्ञोऽपि सरसं मम अङ्गे अङ्गे  
निपिक्तम् असृङ् रङ्गे तव परिभवजस्य अनलस्य उपशान्त्यै भवेत् ॥ निर्वहन्मिह  
श्लोके । यदुक्तं तत्रैव—पूर्वं प्रसारितानां तु वीजादीनां समापनम् । निष्कृष्टत्वेन  
क्रियते तन्निर्वहणमोरितम् ॥४१॥

नाथस्य प्रसादेन पुनरनुभवामि । [अवधूय आस्थास्य । घातंराहुकुतहातराणि  
र्षुः प्रलयकरो । विसुमिता अवदृष्टा व्यापारता च । एतं व्यापारं देव-

मेरे दोनों हाथों में धीने से बचे हुए इस गाढ़े खदिर का स्पर्श करो । हे मेरी अपमान से उत्पन्न बहिर् की शान्ति के लिए मेरी गया से पूर्ण हुई आवाले, कुरखों के राजा का भी यह ताज खदिर (मेरे) अङ्ग-अङ्ग पर आ है ॥४१॥

बुद्धिमत्तिका, अब वह भानुमती कहाँ है, जो पाण्डवों की पत्नी का करती थी । हे भीमती यज्ञवेदी से उत्पन्न याज्ञतेजी, -  
दी—स्वामी आता कीजिये ।

मत्सेन—ओ मैने कहा था, वह आपको याद है । (पञ्चद्वज... इत्यादि लोक १।२१ का पाठ करता है) ।

दी—नाथ, केवल याद ही नहीं है, अपितु नाथ की कृपा से (उसका) कर रही हूँ ।

मत्सेन—(वेणी को हिलाकर) भीमती जी, अब धृतराष्ट्र के कुल के लिए स्वकृप, दुःशासन द्वारा खोली गई, इस वेणी को बाँध लीजिये ।

—नाथ, मैं यह काम पूरा गई हूँ । स्वामी की कृपा से फिर - (वेणी बाँधता है) ।

( नेपथ्य में )

की अग्नि में जलने से बचे हुए लज्जित-कुल का कल्याण हो ।  
जलने के कारण जोध से अग्नि हुए, अतुल बाहुबल वाले, पाण्डु के भी को नष्ट करके प्रत्येक दिशा में राजाओं के अन्तःपुरों को जूने कर दिया है, कुछ हुए सम्राज के तहश और कुरखों के लिये प विस्मृताऽयं व्यापारो गया । साप्रत नामस्य ।

रति । [यस्य केशपाशस्य मोक्षान्मोचनात् कोपेनार्थं कोषान्धः  
दैर्घ्यैः शतनरपतिभिः अतुलं भुजयोः बलं येषां तं अतुलमुज्वलैः  
नायाभायायादिति प्रत्यासं प्रतिविश पायिवान्त पुरालि शृषिष्या  
न नृपास्तेषामन्तःपुराणि तद्वर्णया तद्वत्त्वाः स्त्रियः । मुक्ताः  
मुक्तकेनानि कृतानि । भर्तृविनाश्यादेष्वप्यप्यप्यदिति भावः ।

स्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करधोः पीतशेषाप्यसृङ्गि ।  
 कान्ते राज्ञः कुरुक्षामपि सरसमिदं मद्गदानूणितोरो-  
 रङ्गे ऽङ्गे ऽसृङ्गनिषिक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ॥४॥

बुद्धिमतिके, कृता संप्रति भाग्यमती योपहृति पाण्डवरात् । अत्रि  
 यज्ञवेदिसंभवे याज्ञसेनि ।

द्रौपदी—आशापयतु मायः । [भाग्यवेदु पाहो ।]

भीमसेनः—स्मरति भवतो यन्मयोक्तम् । [यद्यसृङ्गेषादि १-२१ पुनो  
 पठति] ।

द्रौपदी—माय, न देवर्षं स्मरामि । भाग्यमादि न मायस्य प्रतापेन ।

[गान्धर्व वेवरा गुमराणि । अलुट्वापि अ लाह्म्य जगामेन ।]

भीमसेनः—(वेणीमनभूय) मरति, संशयतामिश्रितो धार्तराष्ट्रदुश्कायराति  
 दुःशामनश्चिनुमिनेदं देवी ।

द्रौपदी—माय, विरमृषाशब्देन ध्याहारम् । मायस्य प्रतापेन पुनर्  
 तिमिष्ये । [गान्धर्विगुमरादिदिग्दिग् एव मायस्य । लाह्म्य जगामेन पुनो  
 विरमिष्यम् ।]

भीमः—(देवी बध्नापि)

मैंने मेरे दोनों हाथों में पीने से बचे हुए इस गाढ़े रविर का स्पर्श करो । हे  
 देवा, तेरो अपमान से उत्पन्न बल्लि को शान्ति के लिए मेरो गदा से पूर्ण हुई  
 धोखों वाले, कुदर्थों के राजा का भी यह ताजा रविर (मेरे) अङ्ग-अङ्ग पर  
 बिचा हुआ है ॥४१॥

हे बुद्धिमतिवा, अब वह भानुमती कहाँ है, जो पाण्डवों की पत्नी का  
 पहास करती थी । हे भीमजी यज्ञवेदी से उत्पन्न पाण्डसेनी,

श्रीपदी—स्वामी आज्ञा कीजिये ।  
 भीमसेन—जो मैंने कहा था, वह आपकी याद है । (ब्रह्मसूत्र... इत्यादि  
 तिल इलोक १।२१ का पाठ करता है) ।

श्रीपदी—नाथ, केवल याद ही नहीं है, मरिचु नाथ की कृपा से (उत्तका)  
 मर भी कर रही हूँ ।

भीमसेन—(बेणी को हिलाकर) भीमती जी, अब धृतराष्ट्र के कुल के लिए  
 शतरात्रि-स्वरूप, दुःशासन द्वारा खोली गई, इस बेणी को बाँध लीजिये ।

श्रीपदी—नाथ, मैं यह काम मूल गई हूँ । स्वामी की कृपा से फिर  
 जीवूँगी ।

भीम—(बेणी बाँधता है) ।

( नेपथ्य में )

महापुरुष की अग्नि में जलने से बचे हुए अश्वि-कुल का कल्याण हो ।  
 जिसके कुलने के कारण चोख से अन्धे हुए, अनुल बाहुबल वाले, पाण्डु के  
 ने राजाओं को नष्ट करके प्रत्येक दिशा में राजाओं के अन्तःपुरों को चुने  
 केशों वाला कर दिया है, झूठ हुए यमराज के सहस्र और कुदर्थों के लिये  
 नष्ट । । नाथ विस्मृतोऽयं व्यापारो मया । साश्रत नाथस्य ।

क्रोधान्धैरिति । [यस्य केशपाशस्य मोक्षान्धोचनाव् क्रोधान्धैः क्रोधान्धैः  
 मरणयो र्धैरैः शतनरपतिभिः अनुल भुजयो वल मेपा तं अनुलभुजवलेः  
 पुनैः । आशायामाशायामिति प्रत्याशं प्रतिदिश पाषिवान्त पुराणि पृथिव्या  
 षः पाषिवा नृपास्तेषामन्तःपुराणि सशस्त्रा तत्रस्थाः स्त्रियः । मुक्ताः  
 मेवः तानि मुक्तकेशानि कृतानि । भर्तृविनःशार्ङ्गध्वजपण्डादिति भावः ।



कृष्णायाः केशपाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरुणां  
सौम्यं बद्धः प्रजानां विरमतु निघ्नं स्वस्ति राज्ञांकुलेभ्यः ॥४२॥

पुष्पिष्ठिरः—देवि, एष ते वैशीसंहारोऽभिनन्दते नमस्तत्तत्तद्वारिणा रिय  
जनेन ।

( ततः प्रविशतः कृष्णार्जुनौ )

कृष्णः—(पुष्पिष्ठिरमुपगम्य) विजयज्ञं निहतसक्तारातिमण्डलः तानुम  
पाण्डवकुलचन्द्रमा महाराजो पुष्पिष्ठिरः ।

अर्जुनः—जयस्वार्थः ।

पुष्पिष्ठिरः—(विलोक्य) अये मगवान्पुण्डरीकाक्षो वरस्य किरीटी । मगव  
अभिधावये (किरीटिनं प्रति) एहो हि वरस ।

( अर्जुनः प्रणमति )

पुष्पिष्ठिरः—(वागुदेवं प्रति) देव, कुतस्तस्य विजयावन्धस्य मगवान्पुण्ड-  
पुर्यो नारायणः स्वयं मह्यत्तान्पाशास्ते ।

कृतगुरुमहदादिक्लोभसंभूतसूति

गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।

अजममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वाऽपि न त्वां

भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ॥४३॥

सः अयं कुपितस्य दमस्य तन्ना कुपितयमसखः । राजाहःसविम्यष्टम् । कृष्ण  
धूमकेतुः नाशहेतुस्वाय् । कृष्णायाः केशपाशः केशकलापः । बद्धः । प्रजानां  
निघ्नं संश्रामे इति शेषः । विरमतु । राज्ञां कुलेभ्यः स्वस्ति भूषात् । अ-  
पुष्पिष्ठिरं काव्यतिज्ञमलंकारः । उत्तरार्धे जगता रूपकं चेत्येतयोः संवृष्टिः ।  
सविष्योज्ञं दुर्बोधः । तथा च दुर्बोधे हते तदन्तःपुरमार्थः अनिबद्धोक्त-  
इति भावः । [पाठान्तरे] विष्टयेति आनन्दहेतुः ॥४२॥

... ] पुण्डरीकाक्षः कृष्णः । आशास्ते स्वीकरोति ।

देव जगति त्वां चिन्तयित्वाऽपि जगो दुःखी भवति । हि

... । अयं तु न भवतीति भावः । कीदृशम् । इति दुःखो

... देः पर्वतादेर्वां क्लोभेन परिणामेन संभूतः ।

... अदिक्रिया येन तम् । यदा । कृतो दुःखः पर्वतादिर्वेन नः

(सूचक) घूमकेतु स्वरूप, कृष्णा का यह यह केशपाश भँव गया है  
का नाश भन्द हो जाये । राजाओं के कुलों का कल्याण हो ॥४२॥

गहिर—हे देवी, आकाश-तल में विचरण करने वाले सिद्ध लोग तुम्हारे  
अभ्यन्त का अभिनन्दन कर रहे हैं ।

( तत्पश्चात् कृष्ण और अर्जुन प्रवेश करते हैं )

।—(मुष्णिहिर के समीप जाकर) तन्मूर्धं धनु-समूह को गह कर देने  
इव-कृत में धनुस्तुल्य, महाराज मुष्णिहिर अनुओं सहित विजय पायें ।

।—आर्य की वय हो ।

हिर—अरे ! भगवान् विष्णु ( - कर्मतुल्य तैश्वरी वाता ) और वस्तु  
तथम्, मैं प्रणाम करता हूँ, (अर्जुन को तथ्य करके) वस्तु, आओ, आओ ।  
( अर्जुन प्रणाम करता है )

।र—(वासुदेव को तथ्य करके) भगवन्, जिसके लिये शब्द पुरातन-  
तु सारायण मङ्गल की कामना करें, उसकी वय से अतिरिक्त आय  
ती है ?

५५५, किये गये महत्तरण आदि के महान् शोध से उत्पन्न मूर्ति वाले,  
प्रजाओं की उत्पत्ति, विनाश और निवृत्ति के कारणभूत, समुत्पन्न, अनायास, अमर  
और अचिन्त्य भाव (देव) का चिन्तन करके भी संसार से (कोई प्राणी) कुछी  
नहीं रहता है, फिर देखकर तो क्या ? ॥४३॥

तथा । महदादेराजाशारे धोमेन मिलनेन महाभूमममाधिना समुत्पन्ना कृत्तामहादे-  
वृत्तिः सरीरं देन स तथा । पदचाद्रिदोषगममाम । यदा । इत्थं गुरुत्वायै इत्थं  
न तादृशेन महदादिना कालाकाशादिना समुत्पन्ना मिलिता मूर्तिर्वैद्य तत् ।  
तान्त्वकारणेन सह भगवाम्बेदाधिकर्तुं भाव । अत एव पुलिन वेदादिमूर्ति-  
योग्यवत्तादिमन्तम् । यदा । गुणाः सत्त्वरजस्तमोऽप्यस्तत्त्वोदिन लोकमूर्तिना-  
त्थैर्वकारणं च । तथा च सत्त्वरजस्तमोऽप्य गृह्यवत् सहचारि तथामाद्य  
रहिराभ्यन्तर्भवत्तदर्थं भगवान्नायैवयवर्तुं भाव । [स्थानं स्थितिः]  
समवन्तम् । अमरमनायम् । [अमरमिति पाठे अमररहितमचित्कारमित्यर्थः ।]  
अथ च बाह्यमनाशेषम् । तदुक्तम्-यतो वाचो निवर्तन्ते अमन्य मनसा  
। अथ च विरोधामासः । यो हि समुत्पन्नः स वक्ष्यते । सो ह्यचिन्त-  
य कथं चिन्तेति । अविरोधस्तु दक्षिण एव ॥४३॥

(अर्जुनमालिङ्ग्य) वत्स, परिव्रजस्य माम् ।

कृष्णः—महाराज युधिष्ठिर,

व्यासोऽयं भगवानमी च मुनयो वाल्मीकिरामादयो  
धृष्टद्युम्नमुखाश्च सैन्यपतयो माद्रीसुताधिष्ठिताः ।

प्राप्ता मागधमत्स्ययादवकुलैराज्ञाविधेयैः समं

स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशा राज्याभिषेकाय ते ॥४४॥

अहं पुनर्दुरात्मना चार्धकेण विप्रवृत्तं भवन्तमुपसम्भार्यतेन सह स्वरित  
रमायातः ।

युधिष्ठिरः—कथं चार्धकेण रक्षसा वयमेवं विप्रसत्याः ।

भीमसेनः— (सरोपम्) कासी धार्तराष्ट्रसखा पुण्यजनापसरो देवार्थ  
महाश्विसविभ्रमः कृतः ।

कृष्णः—निगृहीतः स दुरात्मा नकुलेन । तत्कथं महाराज, किमस्मात्  
समीहितं संवादयामि ।

युधिष्ठिरः— एवं पुण्डरीकाक्ष, न किञ्चिन्न ददाति भगवान्प्रसन्नः ।  
पुण्यसाधारण्या बुद्ध्या संतुष्यामि । न खल्वतः परममर्थयितुं क्षमः परपुं देवः ।

क्रोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पञ्चाक्षतास्ते वयं

पाञ्चात्प्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकाराणवः ।

त्वं देवः पुरुषोत्तमः मुकृतिनं मामाहतो भापसे

व्यासोऽयमिति । [अयं भगवान् व्यासः । अमी च वाल्मीकिरामादयो  
मुनयः । रामः परशुरामः । माद्रीमुनाभ्यामधिष्ठिताः धृष्टद्युम्नमुखाः धृष्टद्युम्नो  
मुनमाद्यो देवा ते तथा । आज्ञाविधेयैः मागधमत्स्ययादवकुलैः समं सह ।  
स्कन्धेन उत्तम्भिना उन्नीयताः । तीर्थवारि आह्वयोप्रभृतिवर्षं तस्य दनदा  
वैर्ये तपोनाः ते तत्र रात्र्यानिदेष्टव्यं प्राप्ता उपस्थिताः सन्तीति देव]  
[वादान्तरे] आवापिनामा मुनिः ॥४४॥

१ राधकेषु अयमर्थो नीयः ।] इष्टोपनां विपन्त्यदिपनेन कल्प-

(अर्जुन का आतिङ्गन करने) वत्स, मेरा आतिङ्गन करो ।

कृष्ण—महाराज पुषिहित,

यह भगवान् व्यास, ये बाल्मीकि तथा परशुराम आदि मुनि और माद्री के से अर्पित पृथुष्ण आदि सेनापति आज्ञाकारी भागध, मत्स्य और पांडव के साथ तेरे राज्याभिषेक के लिये कर्णों पर तीरों के जलो से भरे कलश । हुए आ रहे हैं ॥४४॥

लेकिन मैं आपको कुछ चार्वाक द्वारा व्याकुलित किया हुआ जानकर अर्जुन साथ जल्दी चला आया हूँ ।

पुषिहित—कैसे ? चार्वाक राक्षस ने हमें इस प्रकार धोखा दिया ।

भीमसेन—(गोपपूर्वक) कहाँ है वह कुर्मोच का मित्र नीच राक्षस, जिसने मैं को महान् बुद्धि-व्यामोह उत्पन्न कर दिया था ।

कृष्ण—उस बुद्ध को मनुज ने पकड़ लिया है । महाराज, इससे प्राये (तक) और क्या अभीष्ट करें ?

पुषिहित—पुण्डरीकाक्ष, भगवान् प्रसन्न होकर क्या कुछ नहीं बोलें हैं ? मैं सामान्य पुरुषों की बुद्धि से ही समुद्र हूँ । इससे अधिक सांगने का सामर्थ्य मैं नहीं हूँ । भगवान् देखिये

कौरव से आये हुए (हम पाण्डवों) ने सम्पूर्ण राज्य-कुल की मार डाला, हम वह हम पाण्डवों बसत रहे । पाण्डवों की राजपुत्री ने मेरी दुर्नीति से मेरा अपमान के सामर की धार कर लिया । आप भगवान् पुरुषोत्तम मुझ गदासी से आदरमुक्त होकर भातें कर रहे हैं । इससे अधिक और क्या है,

परस्परनिर्वहणसिद्धिः । यदाह - वरप्रदान-संप्राप्ति बाध्यसङ्गार उच्यते । विप्र न ददाति । किं तु ददात्ययः । इति निरर्थो प्रह्वनमयं वमयत । [पुरुषेणु भारणी पुरुषसाधारणी] तथा ।

भीषणवेरिति । भीषणवेरित्यस्य सङ्गवरेण । [ते वय] यत्र पाण्डवा नि इत्यन्वयः । पाण्डवा निष्कारिणिभ्युः [परिध्वजवायर] मय कुर्वन्तेन परिपणनादिना] विहितस्तीर्णः । पुरुषोत्तम इति । पुरुषेभ्य उत्तम इति तः । न तु पुरुषोत्तम इति । न निर्धारणे इति निवेद्यान् । न चानेन विमासनिवेद्यो न तु सप्तमीसप्तमसन्निवेश इति वाच्यम् । तथा सति यद्यो-

किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे प्रसन्नादहम् ॥४५॥

तथापि श्रीनररवेङ्कणवास्तास्मिन् ।

अकृपणमरुक्श्रान्तं जीव्यज्ञानः पुरुषायुषं

भयतु भगवन्भक्तिद्वैतं विना पुरुषोत्तमे ।

दयितभुवनो विद्वद्वन्धुर्गुणेषु विशेषवि-

त्सततमुकृतो भूयाद् भूषः प्रसाधितमण्डलः ॥४६॥

अपि च

अवनिमयनिपालाः पान्तु वृष्टिं विधत्तां

जगति जलधरालो दस्यपूर्णास्तु भूमिः ।

त्वयि मुरनरकारौ भक्तिरद्वैतयोगा-

द्भवतु मम सुदीर्घं हव्यमश्नन्तु देवाः ॥४७॥

कृष्णः—एवमस्तु ।

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

✽ इति पष्ठोऽङ्कः ✽

समाप्तमिदं वेणीसंहारं नाम नाटकम् ।

समाप्तस्याप्राप्तेरेव निवेद्यात्सर्वत्र सप्तमीसमाप्तेर्नैव प्रयोगसिद्धेः । ॥ समाप्तमिदं

समाप्त एवायमिर्यक्षोपः । सुकृतिर्न पुण्यवन्तम् ॥४१॥

अकृपणमिति अकृपणं कार्पण्यरहितमरुक्श्रान्तं च रोषेण परिश्रान्तं च यथा

रेवं [जनः] लोकः पुरुषायुषं जीव्याजीवनम् । पुरुषायुषमिति अचतुर-इत्याशी

५ । हे भगवन् द्वैतं विनाऽद्वैतश्चेष्टेण पुरुषोत्तमे भक्तिर्भवतु । मम

जैसे मैं प्रसन्न हुए भगवान् से भाँवूँ ॥४५॥

फिर भी, यदि भगवान् बहुत ही प्रसन्न हैं, तो यह हो जाये—

हे भगवन्, प्रजापते कार्पण्य रहित तथा नीरोप होकर पुण्य की आपु पर्यन्त  
गये । पुण्योत्तम में हंत रहित भक्ति होवे । राजा प्रजा का अनुरागी, विद्वानों  
का वग्धु, गुणों का विशेष ज्ञाता, सदा पुण्य कार्य करने वाला और अधीन  
पुण्यों की वश में रहने वाला होवे ॥४६॥

और भी—

राजा लोग पृथ्वी का पालन करें; मेघपट्टित भुवन में वृष्टि करें; पृथ्वी  
आप्य से पूर्ण हो, मेरी मुर और नरक के शत्रु माय में अद्वैत सम्बन्ध से भक्ति  
। और दीर्घकाल पर्यन्त देव लोग हवि का भोग करते रहें ॥४७॥

वृष्ण — ऐसा ही होगा ।

( सब निष्पन्न जाते हैं )

ॐ पट्ट अङ्कु समाप्त ॐ

देवीसंहार नाम का नाटक समाप्त हुआ ।

नाना चेति शेषः । पण्डितगुणेषु पण्डितजनो विहितहृदयो दत्तचित्तः सानुरामो  
भवतु । भूतः [दयितं भुवन यस्य तथा त्रियलोकः । विदुषा वग्धुः ।  
विशेषविद्वित्तिष्टगुणम्] सदा पुण्यवान्प्रसाधितरात्रचक्रवर्त भूयान् ॥४६॥

[जलधराती मेघपतिः जगति वृष्टिं विधत्ताम् । भूमिः शस्यैः पूर्णा पाण्या-  
दसमृद्धिमती भवतु । भुरनरकयोस्तथापचदेवयोः एवौ । अद्वैतयोगादव्य-  
यसा भक्तिः भवतु । देवाः हव्यं होमेषु हुतमाज्यादि शुभोर्ध्वं वृष्ट्याल-  
भनन्तु] ॥४७॥

ॐ इति षष्ठोऽध्यायः ॐ

## टिप्पणकृतो जगद्धरस्य वंशादिकीर्तनम्

कतोह नाटकाम्बुधौ स्फुरन्ति नोज्ज्वला रसाः ।

मदीयबुद्धिरल्पिका क वेद तानशेषतः ॥१॥

नानादरं मम कृती नियतं अनुध्व-

मन्नापुनातनतया गुणशेषविज्ञाः ।

प्राह्मं शिशोरपि सुभाषितमित्थमात्म

यूयं ततोऽपि मम टिप्पणमाद्वियध्वम् ॥२॥

सत्त्वं दुर्लभमासनं सुरगणप्राप्तोऽभिप्रायो गुणै-

विद्यावंशविभूषणो अपि युगे छन्दे उभे पारिते ।

येनायं सप्तभूद् द्विजातितिलकश्चण्डेश्वरः पण्डितो

मीमांसैकरहस्यशरयद्दुदयो दातावशाताशयः ॥३॥

भामूतातावद्वितनगरीनागरीगीतरीति

विप्रं सिप्रं गुणदमधिकं वेदपूर्वं धरं तम् ।

कैवर्तानामलमत नृणाञ्छातमं सोऽयमुच्चै-

रागलुब्धं गुणमयगन् रागपूर्वं धराम् ॥४॥

सोऽयं पुत्रामनगरे गदमात्र गुटे

मीमांसको विभवकोनितिविभूतिः ।

गुच । वापरमवाप्त गुल्लरमाध

सताधिकं गुल्लिगलप्रविद्याविमानम् ॥५॥

अमून विद्यापरमेष्ठ धीरं गुल्लेरनूनं गुह्यविद्यासम् ।

त रागपूर्वं धरमात्र गुच सोऽपि प्रविष्ट गुलिना गुलेन ॥६॥

इयन्ननशामय धीरो मेधे गुणधरिदमम् ।

धीरगद्धरकाजानयनर्षगुणपात्रिनम् ॥७॥

गुणच्छत्र पारितुं येन धीवशम् ।

चरति सोऽयं वैराविष्टः कविः ॥८॥

गठि कठोरगौतममत्तं वैशेषिकं सपञ्चनं  
येनाथावि सकोषकाभ्यनिवर्हं तत्पाणिनीय मत्तम् ।  
अङ्गकरणं च शुद्धभरतं येनाध्यगायि स्थिरं  
तेनानेन जगद्धरेण कविना टीका कृतेषु मुदा ॥६॥  
कृतिमुन्दरो रमवती नानागुणाना निधि-  
नानामादविभावनैकचतुरा नानार्थसार्थाधिका ।  
विमनाङ्गनेव रदिता दोषैरशेषैरत-  
स्नामेतामग्निभूययन्तु कृतिनस्तेभ्यो ममः सर्वदा ॥१०॥  
वति मदीयघन्यमच्ये प्रमादः  
कविदपि स महिम्ना सोधनीयो महङ्गिः ।  
गमनकारी प्रायशो नात्र चित्रं  
वति च गुरुहस्तालम्बनोऽपि प्रकारः ॥११॥  
रत्नधरो गुणीशो नानागुणाख्या दमयन्तिकापि ।  
तस्य कृतो ध्वरंतीस्वष्टोऽयमङ्को वरद्विप्लवेऽय ॥१२॥  
महामहोपाध्यायधर्माधिकारिकश्रीजगद्धरकृतौ  
वेणीसंहारटीकायां पष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।  
॥ शुभमस्तु ॥



## वेणीसंहारस्यश्लोकानां वर्णानुक्रममूची

श्लोकारम्भः	अङ्कः	पत्रो.क.	श्लोकारम्भः	अङ्कः श्लो
अकवित्तमहिमानं	१	४०	इन्द्रप्रसवं वृक्षप्रसवं	१
अकृपणमरुत्थागतं	६	४६	इयमस्मदुनाश्रयैव-	२
अक्षतस्य गदापाशोः	४	४	सद्वातकणितविसोल-	२
अश्वैश्च किं न विशसेयं	५	३२	उपेक्षितामा मन्दाना	३
अद्यप्रभृति वारीद	६	२६	ऊरु करेण परिषद्वृतः	६
अद्य मिथ्याप्रतिज्ञो-	३	४२	एकस्य तावत्ताकोऽयं	३
अर्धबाबा रणमुपगतो	४	१५	एकेनापि विनानृजेन	५
अश्वोऽनुभूतघात-	५	१३	एतज्जलं जलजनील	६
अन्योन्यास्फालभिन्न-	१	२७	एतेऽपि तस्य कुपितस्य	३
अपि नाम भवेन्मृत्युः	४	६	एह्यस्मदर्धहृततात	३
अप्रियाणि करोत्येष	५	३१	कथमपि न निषिद्धः	३
अयि कर्णं कर्णमुखदा	५	१४	कर्णं क्रोधेन युष्मद्विजयी	॥
अयं पापो यावन्न	३	४५	कर्णदुःसासनवध्नाद्	६
अवनिमवनिपालाः	६	४७	कर्णानिन्दुस्मरणाद्	५
अवसानेऽङ्गराजस्य	५	३६	कर्णातिङ्गनदायी दा	५
अश्वस्यामा हृत इति	३	११	कर्णेन कर्णमुपग	५
अगमात्प्रतिज्ञेऽस्तं	६	३३	कर्ता घूतच्छलानां	५
अस्त्रधामविधौ कृती	४	१२	कलितमुक्ता मुक्त-	॥
अस्त्रज्वालावलीड-	३	७	कालिन्धाः पुलिनेषु	१
आचार्यस्य त्रिभुवन	६	२०	किं कण्ठे क्षिपिषी	२
आजन्मनो न वित्तं	३	१५	किं नो व्याप्तदिनां	२
आत्मारामा विहित	१	२३	किं भीमादपुनरदक्षिणा	३
। दास्त्रप्रहणादकुण्ट-	२	२	कुह घनोऽपदावि	२
। दास्त्रप्रहणादकुण्ट-	६	३८	कुत्स्या सह युवामघ	॥

वेणीमंहारस्थश्लोकानां वर्णानुक्रमसूची

२६३

श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क.	श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क.
वृन्त्वासा हताना	५	३६	तथाभूता दृष्टा	१	११
मुमुक्षुविरपर इव	१	५	तद्गौरत्वं तव मम पुरः	२	१०
इतमुष्मद्वादित्-	६	४३	तस्मिन्कीरवभीषयो-	६	१६
इतमनुमत दृष्ट वा	३	२४	तस्यै देहि बल कृष्णे	६	३२
दृष्टा केसेषु कृष्णा	५	२६	तस्यैव देहदधिरोक्षित	६	२१
दृष्टा केसेषु भाषां	५	३०	तस्यैव पाण्डुवपशोः	६	८
कोदण्डव्याकिण्णकूटं	२	२६	तातस्त्वव प्रमथयान्	३	३०
कोदण्डवशादावेऽस्मिन्	१	१६	तात तस्त्वग्रहणविमुच	३	२३
मोघातस्तत्कल हत	६	४५	ता तस्त्वलामनभिवाद्य	६	३४
मोघान्धैर्यस्य मोघात्	६	४२	तीर्णं भीष्ममहोदधौ	६	१
मोघोद्गूणंगदस्य नास्ति	६	१३	तेजस्वी रिपुहतबन्धु-	३	२७
गते भीष्मे हते द्रोणे	५	२३	त्यक्तप्राप्तरस्मि-	५	१०
गतो येनाद्य त्व	३	१६	त्यक्तत्वास्थित सरभस	६	६
गुण्या साध्यामहात्म्य-	२	३	प्रस्त विनारि विपयात्	६	४
गुण्या वधूना	६	५	दम्बु विश्व दहन-	३	८
गृहीतं येनास्तीः	२	१६	दत्त्वा द्रोणेन पार्थादि-	४	२
हाणा चरित स्वप्नो	२	१४	दत्त्वाभय सोम्यतिरयो	३	२८
अर्धमुजधामतवण्ड-	१	२१	दत्त्वा मे कर्दीकृता	६	१६
त्वारो वयमृत्विज	१	२५	दायादा न यथोर्वेन	५	५
गिताक्षेपकीरव्य-	५	२८	दिक्षु ध्यूशङ्घिपाङ्ग	२	१८
मेघोरमले कुले	६	७	दिष्टपार्श्वधुनविप्रसम्भ-	२	१२
स्या कामवध्वो-	३	४१	दुःसामनस्य रबिरे	३	४६
वस्तु पाण्डुपुत्रेषु	१	१८	दुःसामनस्य हृदय-	१	२७
भारम्भप्रवितत-	२	७	दृष्टः सप्रेम देव्या	१	३
तिप्रीतिमनसि न	६	२०	देवः सोप्यमराति-	३	३३
रहः शङ्कितं	६	३	दृश्यन्ति न विरात्मजं	५	३४
ततः शोकजम्भा	५	२०	धर्मतिमजं प्रति यमी	२	२६

श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क्र.	श्लोकारम्भः	अङ्कः
धिकमानुजं कुरुष्वति	३	१३	प्रत्यक्षमात्तघनुषां	१
घुनराष्ट्रस्य तनयान्	१	६	प्रत्यक्षं हतबन्धूनां	४
घुतायुधो यावदहं	३	४६	प्रत्यक्षं हनवान्यस्य	५
नाहं रक्षो न धूनी	६	१७	प्रत्यक्षहतानां मातुः	३
निर्लज्जस्य दुरोधर-	६	१७	प्रयत्नपरिवोधिनः	१
निर्वाणवैरदहनाः	१	७	प्रवृद्धं यद्वैरं मम	१
निर्वीर्यं गुरुत्वात्-	३	३५	प्राप्तानेकरथास्त्री	५
निर्वीर्यं वा मवीर्यं वा	३	३६	प्राप्तेपविधनकरस्य	२
नि रागाञ्जलिदानेन	३	१८	त्रियमनुब्रमणस्यस्तं	६
निनिष्ठैस्त्वेषिर्भूमि-	१	१	त्रेवारद्विगमिन-	२
नूनं तेनाद्य वीरेण	६	६	बालस्य ये प्रवृत्ति-	४
मोक्षे- नारदो	२	१	यत्तं भीषेत् भवतो	६
मरणा न घुदुर्गि	२	१६	यत्तं तनयं तार्य	५
महते वा संजने वा	६	२	यत्तेश्भीष्मपशोरा	३
मञ्जना मन्मथोऽप्राक	६	१०	भीष्मे द्रोणे च निहते	५
मये नहिभ्य एवामिभ्य	६	१६	भूमी धाम्नां वारीरं	६
परितोषं देहे रत्न-	३	२२	भूमी निधानवक्रः	५
पर्यन्तेनचिरोदिन-	४	१०	भूयः परिचयभावि-	१
पर्यन्तं हि हतयो	२	१३	भ्रातृभ्यो ननोद	६
पाञ्चाला वगुर्विभु-	६	६	मन्त्रादि कीरवर्ण	१
पराशिरम्वरं यत्	३	४४	मरुतनिपदरेणु-	४
स्तेन देव दुरदस्य	६	२२	मरुतलोचपाणात्	३
स्तेनोऽप्यस्यैव न-	४	२	मन्त्रावर्णनाम्ना-	१
तिदुर्गं नृपः	३	२४	मय आग्राधिपे	५
तेजसा नृपः कुरुक्षेत्रा-	२	१५	मय द्वि वरणा	६
नृपः कुरुक्षेत्रे	६	१३	मया कीदृशी वरणा	५

वेणीसंहारस्थसौजन्यो वर्णानुक्रमगुची

२६५

श्लोकारम्भः	अ.सू. श्लो.क.	श्लोकारम्भः	अ.सू. श्लो.क.
यदि जीवति मत्तातः	३ ३१	कृषसेनो न ते पुत्रो	५ १४
महापतयमाप्त-	३ ४	दास्यामि नो परिष-	६ २२
मातः किमप्यमह्यं	५ ३	दास्यामि व्यपगीय	५ १
भामुद्दिश्य स्वजन्	५ १७	दास्येन यथा दास्येन	५ ११
मत्तद्रुजितमस्तुष्ट	१ १३	दास्यारोयस्यामित	६ २३
मत्सत्यवतमज्जमीद-	१ २४	दोर्कः स्त्रीवन्नयन	५ १३
यदि दास्यमुज्जितं	३ १६	दोर्कामि गोध्यमनि	५ १६
यदि समरमशास्य	१ ६	धवणाञ्जलिपुटपेय	१ ४
यदुद्योग्यनयनपान	३ ३	धृता यथा यम मृषा	३ १२
यद्वैद्युतमिव ज्योतिः	१ १४	सकसरिपुत्रवासा	५ २७
यमोचितस्तत्र विता	५ ४२	त श्रीचकनिपुन्दो	६ १०
यन्निष्ठिरप्रणय	२ ११	सत्पथा मधुरगिर-	१ ६
युक्तो २ वेष्टुमुपयोग-	४ ६	सत्यादप्यनुत धेयो	१ ४८
युष्मच्छासनलक्षणाहसि	१ १२	तः श्रीकः सूर्यो वा	३ ३८
युष्मान्महोपयति	१ १७	सर्वथा कथय सहान्	६ १५
येनामि सन्न जनु-	६ २३	सहभृत्यगण सज्जन्यव	२ ५
यो यः दास्यं विमति	३ ३२	सूतो वा सूतपुत्रो वा	३ ३७
राजनीयेन सत्ततं	४ ७	स्पृष्टा येन शिरोरुहं	१ ४७
राजो मानधनस्य	४ १	स्त्रीणां हि साहचर्यात्	१ २०
राजोरास्ता तत्पद्	६ ४०	स्मरति न भवान्पीत	५ ४१
राजुवीया विमते	२ २१	हृतमानुष	३ १
राधापृष्ठानसविपात्र-	१ ८	हते जरति गाञ्जं ये	२ ४
रुहिलाशयपल्लमसिष्ट	३ ३	हत्वा पार्श्वान्नितं	४ १३
रोसाशुषस्य पवना-	२ २२	हृत्ती हेतुः सत्यं	६ २८
रक्तिर धवलदीर्घा-	२ १५	हस्ताकृष्टविलोत	२ २१
रस्मृत्यास्मान्धुति-	६ २३	होयमानाः कित	५ ६
राजोऽयं भगवानमी	६ ४४		

- १ अदुःखलदर्शनाः स्वप्ना वैद्यतानां प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्ति ।
- २ अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम् ।
- ३ अनुसङ्गनोयः समुदाचारः ।
- ४ अप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुबलानि धूयन्ते ।
- ५ बाण्डाः धनु गुरवः ।
- ६ भहो मुग्धत्वमवलानां ।
- ७ आद्या बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।
- ८ उपक्रियमाणानामपि किमुपकरणं ।
- ९ उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वरक्षतया ।  
अप्राप्तितानां अपायार्थमंधस्येषा विकल्पता ॥
- १० कालानुहर्षं प्रतिविधातव्यम् ।
- ११ कुनस्तस्य विजयाश्च यत्न भगवान् पुराणपुरयो नारायणः स्वयं  
मङ्गलाग्याशास्ते ।
- १२ को हि नाम भगवता संक्षिप्तं विकल्पयति ।
- १३ पुष्पया तासांमहानल्पः स्वयमग्रेण वा कृतः ।  
करोति महती प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ॥
- १४ ग्रहाणां घण्टा स्वप्नो निमित्तान्पुण्याग्निम् ।  
पतन्ति वाक्यतालोपं तेभ्यः प्राप्ता न विभ्यति ॥
- १५ तेजस्वी रिपुदलत्रयपुनःपराद बाहूभ्यां पश्यति धनापुष्पवाग्वापम् ।
- १६ ज्ञानं विनापि विषयादुत्तिष्ठस्य चेतो विवेकपरिमण्डरतां प्रदीपि ।
- १७ बंधायत कुले जन्म भवायतं तु पीरवम् ।
- १८ न विचित्रं वदन्ति भगवान् प्रसन्नः ।
- १९ न यदस्य दूषणानि रश्मिरपि तत्र प्रसेधया ।
- २० न युक्तमनविषादं मुक्तं नान्मुम् ।

पतं पराजयवतां वाङ्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुम् ।		१
स्तं बन्धुस्यसमं विस्तरेणावेदयितुम् ।	२४४	५५
पतं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिबिलयितुम् ।	२५०	५६
पतो हि दुःखभाजो भवति ।	१७२	५७
द्विस्तयजा ।	११६	५८
पेणितं छत्वेतद् । गतं बहुदृष्टप्रविरति ।	६२	५९
सतप साधं संशयः साहसेषु ।	२००	६०
पुण्यः कथममममं वेत्तु देवं पुराणम् ।	३६	६१
मरममास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।		६२
एवमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुखा मलिनं यशः कुक्ष्ये ॥	६८	६३
मृगवननाथो मणति तत्कथमन्यथा भविष्यति ।	२३४	६४
इं तावत्समरविजयिनो जिता हताश्च वीराः ।	२०८	६५
जिति तावदुपदेष्टव्यमूर्तिविजिगीषुः प्रसाधताम् ।	१८६	६६
संसारस्तावत्प्रतिद्वेये लोकायात्रा यत्पुत्रं पितरो लोकद्वये-		६७
दीया इति ।	१०८	६८
रमिवं दुष्करमन्यवसितुम् ।	१२४	६९
नामकर्मणी ब्रह्मदीया पुरवः ।	२०६	७०
नम्यो जगोयः पूष्टः पश्यमपि हितं मणति ।	६२	७१
साहचर्याद् भवन्ति चेतांसि मृतसदृशानि ।		७२
हि भूतंयते विषविटपितमाधिता यज्ञी ॥	२०	७३
किं न क्षतु प्रतपति ।	४८	७४
किल रिपोर्नुवाः संवपते पराद् ।	१८८	७५



